TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180620
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 / S53A Accession No. H. 3341

Author

Title 1960

This book should be returned on or before the date last marked below.

अंधे मोड़

एक उच्चकोटि का सामाजिक उपन्यास

लेखक

राजेन्द्र शर्मा

१९६०

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा—दिल्ली

भारती साहित्य मन्दिर
(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

आसफअली रोड नई दिल्ली
फव्वारा दिल्ली
माईहीरां गेट जालन्धर
लाल बाग लखनऊ

मूल्य ४)

श्यामलाल गुप्ता, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली द्वारा
प्रकाशित एवं प्रेम प्रेस, कटरा, प्रयाग में मुद्रित।

आदरणीय

डॉ० नगेन्द्र

को

सादर भेंट

'अंधे मोड़' का ताना-बाना

कुछ ही मास पूर्व एक समाचार देखने में आया था—"दिल्ली में कुँवारी माताओं के लिए अस्पताल खुलने वाला है।" ऐसे अस्पताल बम्बई और कलकत्ता में खुल चुके हैं। समाचार अपने आप में साधारण प्रतीत होता है, किन्तु यह हमारे देश में बढ़ती अनैतिकता की विभीषिका की ओर एक सबल संकेत करता है। हम यह नहीं मानते कि सरकार की ओर से ऐसे गुप्त अस्पताल खोलकर भ्रष्टाचार को परोक्ष रूप से बढ़ावा दिया जा रहा है। (सरकार ने तो हाल ही में वेश्या-वृत्ति को कानूनन बंद किया है।) तब हमें यह स्वीकारने में संकोच नहीं होना चाहिए कि सरकार की यह योजना समाज में अबाध गति से पनप रहे अनाचार से उत्पन्न भयावह समस्या का विवशता भरा उत्तर मात्र है। वे तरुणियाँ जो अविवाहित अवस्था में ही भूलों का शिकार बनकर आत्म-ग्लानि अथवा सामाजिक अपकीर्ति के भय से आत्म-हत्या कर बैठती थीं, अब ऐसा करने से रुक जायेंगी और भूल का परिमार्जन कर जीवन का एक नया मोड़ देने के लिए उन्हें सोचने-समझने का सुअवसर प्राप्त होगा।

सन् १९५३ की एक संध्या को मैं पत्नी को दिखाने दरियागंज के सरकारी प्रसूतिका केन्द्र में गया था। वहाँ मैंने ऐसे अनेक नवजात शिशुओं को पालनों में सोते या किलकारियाँ मारते देखा जो 'समाज का पाप' कहलाते हैं। वे बेचारे अपने भावी जीवन में समाज की ओर से मिलने वाले लांछन से उतने ही बेखबर थे जितने कि वे अपने माता-पिता के सम्बन्ध में अबोध थे। पूछने पर पता चला कि ऐसे बालकों को लोग बाहर काष्ठ-निर्मित कटघरे में डालकर चुपचाप अंधकार में लीन हो जाते हैं। सुनकर मुझे काठ मार गया। इस निम्नकोटि के चारित्रिक पतन की हमारे देश में पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। बस, यहीं से 'अंधे मोड़' की कहानी का ताना-बाना शक्ल लेने लगा।

मैं सोचता हूँ, सर्वव्यापी चारित्रिक ह्रास का दायित्व अनेक कारणों के

होते हुए भी क्या हमारी शिक्षा-प्रणाली पर नहीं है ? देश के प्रायः सभी गण्यमान्य नेता समय-समय पर वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन की बात जनता के सामने व्यक्त करते रहे। पर उनका मन्तव्य कार्य रूप में परिणत नहीं हो पा रहा है; और यदि हो भी रहा है तो उसकी गति इतनी धीमी है कि नैतिक पतन का बढ़ता हुआ सागर अपनी उत्ताल तरंगों से उसे लील जाता है। चीन, सोवियत रूस आदि देशों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् चहुँमुखी प्रगति के लिए योजनाएँ कार्यान्वित करते हुए भी राष्ट्रीय चरित्र (National character) के विकास पर सर्वाधिक बल दिया। किन्तु, हमारे देश में ऐसा नहीं हो रहा।

जनता का नैतिक चरित्र, राष्ट्रीय हितों को सम्मुख रखते हुए समुचित विकास पाए, इसके लिए शिक्षा के साथ-साथ आज समाचारपत्रों का भी इस आन्दोलन में भाग लेना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। नेहरूजी का कथन है कि आज तमाम विश्व में ही चारित्रिक संकट उपस्थित हो गया है। पर एक ऐसे राष्ट्र में, जहाँ अभी स्वतंत्रता का बाल-सूर्य ही चमक रहा हो, इस चारित्रिक संकट को देश की सीमा पर गरजने वाले किसी शत्रु से भी प्रबल और भयंकर मानना चाहिए। इस दृष्टि से भी आज जनता में नैतिक जागरण लाने के लिए पत्रों और पत्र-सम्पादकों का दायित्व उतना ही विशिष्ट है जितना विशिष्ट कि समाज में उनका स्थान है। पर आज सर्वव्यापी नैतिक ह्रास की काली छाया, शिक्षा-क्षेत्र के अतिरिक्त समाज के इस विशिष्ट अंग पर भी किंचित् फैलने लगी है। पत्र-उद्योग भी अन्य उद्योगों की भाँति पूँजीपतियों के एकाधिकार में आ चुका है और इसकी अन्य बुराइयों के साथ-साथ सम्पादक का गौण होना और नैतिकता को ताक पर रखकर हर संभव उपाय से व्यक्तिगत स्वार्थों को ही सिद्ध करना भी सामने आया है। 'अंधे मोड़' की कुँवारी माता, अमिता की कहानी के प्रसंग में ऐसे भी एक-दो पात्रों का चित्रण हो गया है। उपन्यास के अन्य सभी पात्रों की भाँति ये भी कल्पित ही हैं, तथापि हमारे समाज के एक महत्त्वपूर्ण अंग में प्रविष्ट होती जा रही बीमारी को वे प्रतीक रूप से सामने लाने में सहायक हुए हैं। मेरा विश्वास है, पत्रों को, विशेष रूप से हिन्दी पत्रों को, आज अपने कार्य में वही सेवा की मिशनरी भावना लानी है

जो उनके आरिम्भक काल में अथवा स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में उनमें थी। यही नहीं, इस भावना की मात्रा तब से अब कहीं अधिक होनी चाहिए। तभी हम जनता में नैतिक जागरण और राष्ट्रीय चरित्र का विकास कर सरकार को, उसके अनाचार रोकने के प्रयासों में सहायता दे सकते हैं।

कुँवारी माताओं की समस्या हल करने में अभिभावक उमा बाबू की तरह साहसिक बन जायँ। हमारे युवक कुमार की भाँति दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले हों और रूढ़िग्रस्त माताएँ बिश्नोई की भाँति समझौते का दृष्टिकोण अपनाएँ तो हमारी सरकार को देश के लिए कलंक रूप "कुँवारी माताओं के अस्पताल" खोलने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

१५९४, मदरसा रोड,
कश्मीरी गेट, दिल्ली
विजय दशमी, संवत् २०१७

राजेन्द्र शर्मा

अंधे मोड़

: १ :

ठीक चार बजे अलारम बोल उठा। बाहर अभी अँधेरा था, तारे आँगन में झाँक रहे थे। अमिता के हृदय में भी अभी गहरा अँधेरा था। तारों की ही तरह एक क्षीण आशा की चमक उसके सामने थी, और वह भी कभी-कभी धुँधली पड़ जाती थी। कुमार ने उसके सिर पर प्यार भरा हाथ रखा। फुसफुसाहट के धीमे स्वर में उसने कहा, "अमी, क्या मेरे लिए थोड़ा धैर्य न रख सकोगी? विश्वास रखो, सब ठीक हो जायगा।"

तभी बाहर के सन्नाटे को चीरते हुए दरवाजे पर एक स्कूटर के आने और ठहरने का शब्द हुआ। अमी की सुबकियाँ तेज हो गईं। एक घबराहट उस छोटे से कमरे में मूर्तिमान् हो उठी। कुमार ने फिर कहा, बड़े प्यार से—"अमी, धैर्य तो रखो, मैं अभी आया।" घुटनों के बल बैठकर उसने अमी की बगल में पड़े नवजात शिशु को सँभाल कर छोटे कम्बल में लपेट लिया और उठकर खड़ा हुआ। एक क्षण रुका। उसकी मुद्रा पर कर्तव्य की कठोरता और स्नेह की स्निग्धता, दोनों का एक अद्भुत समन्वय था। अमी ने एक तेज सुबकी और भरी और कुमार अपने गीले कण्ठ से केवल "अमी!" ही कह पाया और द्वार की ओर मुड़ गया।

स्कूटर तेजी से दरियागंज की तरफ दौड़ा जा रहा था। कुमार उसमें डरा हुआ बैठा था। डर बाहर था, लेकिन भीतर वह निश्चिन्त था। सोचता था कि कहीं कोई परिचित नजर न पड़ जाय। जितनी तेजी से स्कूटर दौड़ रहा था, उतनी ही तेजी से उसके सामने अतीत का एक-एक दृश्य सिलसिले से आ रहा था और कभी एक साथ सारे दृश्य आकर उसके मस्तिष्क में मकड़ी के अनेकों जालों की तरह उलझ जाते थे। पर, भीतर ऐसा आत्मबल था कि वह उन जालों में उलझ नहीं पाता था। वे जाले स्वयं उससे टकराकर छिन्न-भिन्न हो जाते थे। उसमें यह

आत्मबल जो आया था, वह चारित्रिक दुर्बलता से आया था। कभी-कभी ऐसा होता है, जीवन के किसी दुर्बल क्षण में मनुष्य का जब किंचित् पतन होता है तो उसमें उससे कई गुना अधिक शक्तिवाला नैतिक बल जन्म लेता है।

कुमार ने जेब से एक कागज और कुछ नोट निकाल कर बच्चे के कम्बल की तह में रख दिये और दिल्ली गेट के निकट आकर उसने स्कूटर छोड़ दिया। तेज कदमों से वह शिशु-केन्द्र और जच्चा अस्पताल की ओर बढ़ रहा था। मस्तिष्क प्रायः चेतनाशून्य हो चला था। पैरों में गति थी, पर प्राणों की संज्ञा जैसे शून्य होती जा रही थी। चारों ओर अंधकार था, सन्नाटा था, और था भय का साम्राज्य। कुमार ने इधर आने से पहले अपनी छाती को बहुत ठोक रखा था। पर, उस शिशु को अस्पताल के बाहर लगे हुए काठ के कटघरे में फेंकते-फेंकते उसके नेत्र गीले हो गए। हृदय डर से काँप उठा। उलटे पैरों दौड़ते-दौड़ते उसने शिशु का चीत्कार सुना। अस्पताल के भीतर बज उठी घण्टी का कलेजा चीर देनेवाला स्वर उसके कानों के परदे फाड़ रहा था और वह पागलों की तरह दौड़ रहा था। दोनों आवाजें पीछे छूट गई थीं, लेकिन लगता था जैसे दोनों ही उसका पीछा कर रही हों। जब वह तीन नम्बर के पास आकर स्कूल के बगल वाली सड़क पर घूम गया, तब उसकी गति में संयम आया और उसने सामान्य स्थिति में आने की चेष्टा की। उसे विश्वास था कि उनकी वाणी उन्हें मिल जायगी। हाँ, इस कठोर, निर्मम कर्तव्य के पीछे भी ममता का अपूर्व सागर हिलोरें मार रहा था। उसके सामने कागज का वह छोटा पुर्जा घूम गया, जिस पर उसने अपने काँपते हाथों से लिखा था—"यह बच्ची नाजायज नहीं है। इसे सँभालकर रखिये। इसका पिता इसे स्वयं आकर ले जायगा।"

मेन रोड पर आते-आते कुमार के सामने रोती हुई अमिता थी, प्रसव की पीड़ा से कुम्हलाई हुई पीली अमिता, समाज के लांछनयुक्त अभिशाप से संत्रस्त अमिता! उसके पैरों में फिर तेजी आ गई और वह फिर किसी स्कूटर को पाने के लिए छट-पटा उठा ताकि दिल्ली की उस दूर बसी एकान्त उपनगरी में पहुँच जाय, जहाँ अभी दूर-दूर पाँच-सात ही पूरे-अधूरे मकान बने हैं और उन्हीं में से एक में अमिता अपने धुँधले स्वप्नों को लिये रो रही है।

बाँस की खपच्चियों से बने बाहर के दरवाजे को आहिस्ता से खोलकर कुमार जब भीतर घुसा तब भी दिन नहीं निकला था। पास के वृक्षों पर चिड़ियाँ चहचहाने लगी थीं। पूर्व में क्षितिज का मटमैला रंग तो चमकने लगा था, पर उसमें अभी अरुणाई नहीं फूटी थी।

नया सवेरा अभी होना था और ऐसे ही एक नये सवेरे की अमिता को प्रतीक्षा थी, कुमार को प्रतीक्षा थी। और इस प्रतीक्षा में भविष्य के अनेक प्रश्न भी सामने खड़े थे। ऐसे प्रश्न जिन्होंने अमिता के नारी-हृदय को शून्य बना दिया था और कुमार के मस्तिष्क को स्फूर्ति दी थी, हल ढूँढ़ने की स्फूर्ति, हल ढूँढ़ ही लेने की दृढ़ता। अमिता भीतर जैसे एक शून्य से घिरी थी, बाहर भी उसके वैसा ही एक शून्य था। जिस दुर्बल क्षण की वह शिकार हुई थी, उसका कोई पछतावा अब उसके मन में नहीं रह गया था। पर जिन लोगों के बीच से वह आ गई थी, उनके सम्मुख जाने का साहस उसमें नहीं रह गया था। "अब क्या होगा?" जैसे कोई सहस्रों मुखों से उसके कानों में बोल रहा था। कुमार का पास होना ही कभी-कभी करुण रस में वीर रस का-सा अनुभव कराता था। लेकिन, कोमल, सुकुमार, चन्द ही घण्टों की आयु उसके समीप बिताकर बिछुड़ जानेवाली वाणी का ध्यान उससे कैसे छूट सकता था। उसके आँसू नहीं थमते थे। कभी-कभी वह सोचती कि उसने बाबूजी की बात मानकर ऐसा क्यों कर लिया। क्यों नहीं डूब कर मर गई? क्यों नहीं जहर खा लिया, क्यों नहीं कुमार के साथ किसी और नगर में जाकर बस गई?

कुमार जब कमरे में घुसा तो अमिता फूट-फूट कर रोने लगी। चारपाई पर झुक कर कुमार ने उसकी छाती पर अपना सिर टेक दिया। एक हाथ से उसके बिखरे हुए केश सहलाते हुए वह बोल उठा—"अमी, कुछ ही दिन की तो बात है। तुम धैर्य रखो। हमारी वाणी हम से दूर नहीं जायगी। मैंने एक बात मानी है, और एक बात नहीं मानूँगा····चुप हो जाओ, अमी, चुप हो जाओ।"

अमिता का रुदन कुछ रुका तो कुमार ने उठ कर दूर कोने में खड़ी नर्स की ओर एकटक देखा। धीरे-धीरे फिर उसकी ओर बढ़ा और कोट के भीतर की जेब से कुछ नोट निकाल कर उसने नर्स की ओर बढ़ाये, कहा—"आपने इस संकट में हमारी बहुत सहायता की है। आपका उपकार हम जीवन भर न भूलेंगे। नर्स ने थोड़े

संकोच के साथ वह धन स्वीकार किया और सारी घटना को गुप्त रखने तथा दिन में एक बार अमिता को आकर देख जाने का आश्वासन देकर वह चली गई।

कुमार ने स्टोव जला दिया। चाय का पानी रखा, और, "मैं दूध ले आता हूँ" कहकर वह बाहर निकल गया।

अमिता की आँखों से मोती-से उज्ज्वल अश्रु बराबर ढुलक रहे थे। जो कुछ हुआ था उसका बोझ अभी तक छाती पर भारी था। उधर छातियों से दुध न निकलने के कारण एक असह्य ऐंठन हो रही थी जो हर क्षण उस नवजात बालिका का कोमल चेहरा सामने ले आती थी। कुछ ही अन्तर से रखे स्टोव की 'सूं-सूं' आवाज और खौलते हुए पानी की बुदबुदाहट उसका ध्यान अपनी ओर खींचने लगी। लेटे-लेटे ही उसकी दृष्टि स्टोव की ओर घूम गई और ऊपर उड़ती हुई भाप को देखते-देखते दृष्टि निर्निमेष हो गई। भाप उड़ रही थी और उसमें से जैसे अतीत की कहानी भी उड़ रही थी।

वह दिन विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव का था। जार्जट की काली साड़ी पर शुभ्र श्वेत कश्मीरी शाल ओढ़े अमिता मंच पर खड़ी कविता पढ़ रही थी :

पीत सरसों-सी भरी उल्लास से,
मिलन-मधुऋतु की घड़ी पतझर हुई।
अलि-प्रतीक्षा में खड़ी कलिका नई
क्रूर हिम के पात से मरमर हुई।
रज बनी औ' कफ़न सूखा पात है।
धूलिमय पहला सुनहरा प्रात है॥
क्यों प्रतीक्षा में खड़ी अभिसारिका,
गोल दृग मग में बिछे किसके लिये?
चल रहा झंझा प्रबल, पर, नेह ले—
जल रहे क्यों आरती के ये दिये!
घिर रहे अब मेघ ढलती साँझ है,
और फिर सिर पर अँधेरी रात है।

भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था। गर्वोन्नत होते हुए भी नत-

मस्तक अमिता मंथर गति से नीचे उतर आई थी। अपनी सीट पर बैठ गई थी। और कुछ समय बाद ही कुमार की दर्दीली आवाज माइक का सहारा पा तमाम हॉल में एक दर्द का मीठा वातावरण घोल रही थी :

इस विरह-सर में हृदय का हंस है बिलकुल अकेला।
कौन जाने आयेगी कब कुंज में प्रिय मिलन बेला॥
बन गयी अपनी दशा ही आज तो उपहास मेरा।
जो न पावस की अमावस में डरा, सूना बसेरा॥
ओ गरल के बंधु चंदा! मत हृदय मेरा खसोटो।
हो जहाँ भी प्राणधन तुम, बन संजीवन तुरत लौटो॥

और उस सम्मेलन के बाद हुई चाय-पार्टी में अमिता और कुमार के बीच समीपता की एक डोर बँध गई। उसके प्रोफेसर डा० महीपाल ने जब अमिता को कुमार की पंक्ति—'हो जहाँ भी प्राणधन तुम, बन संजीवन तुरत लौटो'—गुनगुनाते सुना तो उन्हें कोई विस्मय नहीं हुआ; क्योंकि स्वयं उनकी स्मृति ने भी कुमार की कुछ पंक्तियों को अपनी बाँहों में भर लिया था।

स्टोव के ऊपर रखे पानी में से भाप तेजी से उड़ रही थी।

अमिता के पिता वकील थे। उमानाथ उनका नाम था। हृदय के विशाल और स्वभाव से उदार। कविता-प्रतियोगिता में पुत्री के पुरस्कृत होने पर उन्होंने कुछ प्रतिष्ठित साथियों को, अमिता के प्रोफेसर, प्रिन्सिपल को और उस दिन के सम्मेलन में भाग लेने वाले लगभग सभी कवियों को अपनी कोठी पर एक चाय-पार्टी पर बुला लिया। चाय के साथ-साथ एक छोटा-मोटा कवि-सम्मेलन भी वहाँ जम गया। असौज का अन्त था। और लॉन में गुलाबी ठण्ड की मादकता बिखर रही थी। उस दिन भी अमिता ने अपने सुरीले कण्ठ से जो गीत सुनाया, वह जैसे कुमार को संबोधित करके ही गाया था—

तुमने आँखों से ओझल होना जाना,
पर मन की गति को तनिक नहीं पहचाना।
तुमने देखा छवि को शृंगार सजाते,
देखा सूने साजों का कब बिखराना।

बहुत आग्रह करने पर भी कुमार ने उस दिन कोई नई रचना नहीं सुनाई। वह मन-प्राण से खोया हुआ था। उमानाथ उससे कुछ प्रभावित हुए जान पड़ते थे और उन्होंने जब बहुत आग्रह किया तो उसने अपना वही गीत सुना दिया जो उस दिन कालेज में सुनाया था।

कुमार की आवाज में अपेक्षाकृत अधिक दर्द था और उसे दो बार वह गीत सुनाकर उस रात छुट्टी मिली। इस गोष्ठी के बाद उमानाथ कुमार के विषय में बहुत कुछ जान गए और यह जानकर कि उसे मकान की बहुत बड़ी असुविधा है, उन्होंने अपने सामने वाले बँगले में दो कमरे दिलाने का वचन दे दिया। अमिता और कुमार यों आमने-सामने ही रहने लगे और दोनों की घनिष्ठता भी बढ़ने लगी।

भाप और भी तेजी से उड़ रही थी।

उमानाथ एक दिन बहुत रुष्ट हुए कि कविता के चक्कर में अमिता की पढ़ाई बहुत पीछे छूट गई थी। हर समय कविता की चर्चा उन्हें न सुहाई। पारो ने भी बेटी की कुमार के साथ बढ़ती हुई घनिष्ठता को टेढ़ी आँख से देखा और जहाँ-तहाँ उसके विवाह की चर्चा चलानी आरंभ कर दी। ·····फिर अन्तर-विश्वविद्यालय मेला आया। "लॉकिन वार" की कहानी का अभिनय करने में कुमार और अमिता को अभूतपूर्व सफलता मिली। वे फिर पुरस्कृत हुए। एक रात को धधकती हुई अग्नि के चारों ओर बैठकर जब गाने-बजाने और कविता सुनाने का अवसर आया तो उल्लास की उस क्रीड़ा-नगरी में वह्नि के चारों ओर नृत्य भी हुआ। तब··· कुमार और अमिता के मन जैसे भाँवर ले रहे थे।

भाप बहुत तेजी से उड़ रही थी। पानी में सैकड़ों बुलबुले उठ रहे थे, मिट रहे थे।

अमिता और कुमार का बन्धन और दृढ़ होता जा रहा था। उमानाथ और पारो की निगरानी कड़ी होती जा रही थी। यहाँ तक कि उमानाथ ने अपने जिन मित्र से कहकर कुमार को सामने जगह दिलवाई थी, उन्हीं से उमानाथ ने एक दिन यह भी कह दिया कि 'कुमार को कहीं और रहने के लिए कह दीजियेगा।

लड़का ठीक नहीं है।' और उमानाथ से सुन्दर बाबू ने यह कह दिया था कि 'देखने में तो लड़का बहुत सुशील जान पड़ता है। जब से वह यहाँ रह रहा है, हमारी धृति को हिन्दी पढ़ा रहा है और मैंने उसमें कोई ऐब नहीं देखा है। हम लोगों के दृष्टिकोण का ही दोष है। किसी भी युवक-युवती की विशुद्ध मित्रता को हम सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, उमा बाबू! आपको अपनी अमिता पर पूरा-पूरा विश्वास करना चाहिये।'

उमानाथ के हृदय पर से घुटा हुआ धुआँ जैसे उड़ गया। एक बार वह फिर कुमार के प्रति उदार हुए। सब पूर्ववत् चलने लगा। यहाँ तक कि वह दशहरे-दिवाली की छुट्टियों में भारत-दर्शन यात्रा के लिए गए तो कुमार को भी साथ ले गए। कुमार का आग्रह था, कठिनाई थी कि एकमात्र वृद्धा माता को अकेले कैसे छोड़कर जाय; तो उमानाथ ने मिसरानी कस्तूरी से कुछ अधिक समय देने के लिए कहला दिया, पर कुमार को साथ ले गए।

उबलते हुए पानी के बुलबुले फूटते जा रहे थे। कुछ पानी के छींटे नीचे फर्श पर गिरते जा रहे थे।

रेल के पहिये तेजी से घूम रहे थे। कालचक्र की गति अविरल थी। इलाहाबाद, बनारस, अयोध्या, हरिद्वार घूम लेने के बाद उमानाथ और पार्वती कुछ समय "लक्ष्मण झूले" के पास बिताने के लिए सहमत हुए। अमिता और कुमार तब कुछ सहयात्रियों के साथ "नीलकण्ठ" की यात्रा को चले गए। कई मील की दुर्गम चढ़ाई के कारण उमानाथ और पारो नहीं जा सके। अमिता के दो छोटे भाई और थे। वे भी न गए। नीलकण्ठ पहुँचकर सहयात्रियों ने इतनी थकान अनुभव की कि उसी संध्या को लौटना न चाहा। पर अमिता और कुमार का लौट आना अनिवार्य था। एकान्त, नीरव, दुर्गम, पर्वत-मार्ग से लौटते हुए वे दोनों भय, हास्य, प्रेम, आक्रोश, मनुहार की मिली-जुली अनुभूतियों में से गुजर रहे थे। कभी पेड़ की छाँह में बैठ जाते थे, कभी कुमार सहसा किसी झाड़ी के पीछे छिपकर अमिता को डरा देता था, और कभी अमिता कुमार का हाथ इतने कसकर जकड़ लेती थी कि जैसे वह अब कभी छोड़ेगी ही नहीं। स्वच्छन्द प्रकृति के इस प्रांगण में विचरते-विचरते स्वच्छन्दता का वह दुर्बल क्षण भी आ गया, जिसका परिणाम

देख लेने की दूर दृष्टि तब दोनों के पास नहीं थी।

अमिता की आँखों के आगे तब एक अँधेरा छा गया। तभी कुमार का बोल सुनाई पड़ा, "ओ, पानी तो बहुत उबल चुका है।" स्टोव के पास दूध रखते हुए उसने एक क्षण अमिता के चेहरे पर निगाह डाली; लगा, जैसे अभी कोई छोटी-सी बदरिया बरस कर चली गई है।

: २ :

नीलकण्ठ से लौटी तो अमिता बहुत थकी थी। चेहरा फीका था। मन किसी डर से बैठा जा रहा था; लगता था, जैसे अभी कुछ समय पहले जो घट गया है, वह मुख की मुद्रा पर अमिट अक्षरों में लिख गया है और उसकी माँ पार्वती यह अक्षर पढ़ लेना जानती है। कुमार से तब वह ऐसी खिच गई जैसे नवोढ़ा अपने अभिभावकों के समक्ष पति से दूर-दूर रहने की चेष्टा करती है। कुमार की मनःस्थिति दूसरी थी। वह पूर्ववत् ही व्यवहार कर रहा था, पर उसमें भी एक कृत्रिमता की झलक आ गई थी। उमानाथ तब भोजन कर रहे थे। अमिता और कुमार को देख कर एक क्षण तो वह मुस्कराये, पर उनके फक् चेहरे देख कर वह अनुभवी वकील स्वयं मुरझा-से गए। "थक गए, बेटा?"—उन्होंने अमिता से पूछा।

पार्वती बोली—"दोनों थक गए होंगे, हाथ-मुँह धोलो। गरम-गरम खाना खालो।"

अमिता कुछ बोली नहीं। हाथ-मुँह धोकर माँ के सामने आ बैठी। खाना परोसते-परोसते पार्वती ने दोनों के चेहरे पढ़ने की चेष्टा की और एक अर्थपूर्ण दृष्टि से पति की ओर देखा। उमानाथ ने पत्नी की ओर देखा। नयनों की भाषा में दोनों ने पढ़ लिया कि कोई अनहोनी घटना घट गई है। कुमार ने कहा—"काकी! मैं अभी ठहर कर खाऊँगा। रख दीजियेगा।" और कन्नी-सी काटकर

वह गंगा-तट की ओर बढ़ गया। अमिता खाने बैठी तो मुँह न चला। हृदय भारी होता जा रहा था। टाँगों की पिंडलियाँ दर्द कर रही थीं और रीढ़ भी दुहरी हुई जा रही थी। हृदय की धड़कन तेज थी और आँखों में एक धुआँ-सा घुट रहा था। प्रयत्न करने पर भी वह अपने को सामान्य स्थिति में न ला सकी कि पार्वती पूछ बैठी, "बहुत थक गई? इतनी चढ़ाई-उतराई क्या बसकी है? पहले ही मना किया था।"

अमिता कुछ न बोली। इतनी देर में एक-दो कौर बड़ी कठिनाई से गले के नीचे उतार पाई। तभी चार वर्षीय सुधेश बाहर से आया और बहन की पीठ पर बड़े स्नेह से लद गया। पर अमिता के हृदय से अब भी वात्सल्य का कोई स्रोत न फूटा। रीढ़ और दर्द कर उठी और उसने झिड़क दिया सुधेश को। मुँह से बोल अब भी नहीं निकला। अज्ञात भय ने, एक अनिष्टपूर्ण अनागत के हौए ने, उसके मुँह पर ताला डाल रखा था। मुद्रा पर सफेदी छाई थी। समर्पण का अलौकिक क्षण जो एक क्षणिक आनन्द की अनुभूति लाया था, अब भीतर-ही-भीतर वृश्चिक-दंश की वेदना जगा रहा था। कलेजे पर कोई कील-सी ठोंक रहा था। ऐसी आहत मृगी-सी, दुष्ट भौंरे से आक्रान्त कली-सी अमिता का अधिक मौन रहना उमानाथ-पार्वती दोनों से ही नही सहा गया। उन्हें लगा—थकान तो है, पर यह यात्रा कुछ भयानक-सी हो गई जान पड़ती है। दोनों ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। क्योंकि सुधेश को झिड़कने में अमिता जो थोड़ी हिली-डुली तो पार्वती को उसकी साड़ी की भीतरी तहें कुछ-कुछ रगड़ से फटी हुई और प्रयासपूर्वक छिपाई हुई दिखाई दीं।

"क्या बहुत कठिन चढ़ाई थी?" उमानाथ ने पूछा।

"तू बोलती क्यों नही, री? ऐसी मुर्दा-सी क्यों हो गई?"

सुधेश कह उठा—"मैं बताऊँ? इन्हें कुमार भैया ने थप्पड़ मार दिया है, देखो यहाँ"—कहते-कहते उसने अमिता के दाएँ कपोल पर उँगली टिका दी।

अमिता पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया हो। अत्यन्त लज्जा के भाव से उसने केवल "चल!" ही कहा और सुधेश को दूर कर दिया।

"सचमुच, कुमार से कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?" माँ ने व्यग्रता दिखाई।

"बता, बेटी!" उमानाथ बोले—"आखिर इतनी गुम-सुम क्यों है? कुछ बात जरूर है।"

तब जाने क्या हुआ, अमिता रुँआँसी हो आई और उसकी आँखों से रोकते-रोकते भी कुछ आँसू बाहर छलक आये। कैसे हैं यह आँसू! इनसे भीतर रुक कर मन का भेद भी नहीं छिपाया जाता। अमिता उठ खड़ी हुई, "मुझ से नहीं खाया जा रहा।" कहते-कहते उसका कण्ठ गीला हो आया और वह जीना चढ़कर ऊपर आ गई। पार्वती-उमानाथ एक दूसरे को एकटक देखते रह गए। और उमानाथ के सामने वह क्षण आया जब सुहागरात के अगले दिन उन्होंने पार्वती को एक विशेष लज्जा और संकोच के आवरण में लिपटे देखा था। भाव क्षण भर में बदल गया। नेत्रों में फिर कुमार के प्रति क्रोध उतर आया। पत्नी से कहा, "जाओ पूछो तो। कहीं कुमार ने तो जोर-जबर्दस्ती नहीं की?" उनकी वाणी गंभीर थी,, "तुम्हें शायद अकेले में कुछ बताए।"

पार्वती बोली, "जाती हूँ, दो पराँवठे और हैं ये! इन्हें सेंक कर जाती हूँ।"

उमानाथ तब बाहर निकल गए। सुधेश साथ लग लिया।

दबे पैर पार्वती ऊपर छत पर आई। अमिता ने माँ को देखा तो सहम गई। लेकिन पार्वती तब बहुत संयत थी। बेटी के समीप आकर उसने बड़े प्रेम से, पर सीधा ही, प्रश्न किया—"कुमार ने कुछ छेड़खानी तो नहीं की?"

सुनकर आहत हो गई अमिता। झुँझलाहट से भरी बोली—"आप भी कैसी हैं, अम्माजी! चढ़ाई-उतराई में कूदने-फाँदने से मेरा पेट दुःख गया है। और .....मुझे कोई फटी धोती हो या आप रुई लाई हों तो दे दीजिये। बाबूजी के सामने ही सौ-सौ सवाल! समझ में नहीं आता, क्यों आप लोग हमेशा संदेह के चश्मे से सब कुछ देखते हैं।" कहते-कहते अमिता का कण्ठ फिर भर आया। पार्वती के हृदय-मस्तिष्क पर छाया कुहरा जैसे दूर हो गया। मन को विश्वास हुआ कि कोई ऐसी घटना नहीं हुई, जो नहीं होनी चाहिये थी। आश्वस्त स्वर में बोली—"चल नीचे! तेरे बाबूजी अब नहीं हैं।"

अमिता माँ के पीछे-पीछे नीचे उतर आई। अब वह बहुत कुछ सामान्य

स्थिति में आ गई थी। उसके मन में कुमार के प्रति जो एक घृणा-मिश्रित पृथकत्व का भाव जगा था, वह भी मिट गया। मन उस क्षण फिर कुमार के कंधे पर सिर टिका कर विश्वास की एक बाँह को जकड़ लेने के लिए उत्कण्ठित हो गया। तब तक कुमार भी लौट आया था। उसने सहज भाव से नित्य की भाँति ही पार्वती से खाना माँग लिया—"अब लाओ काकी! क्या-क्या बनाया है? आज देखना, मैं रोज से चार ज्यादा खाऊँगा, बहुत थका हूँ।"

"हाँ-हाँ, तू दस खा। मैंने कब मना किया है।"

कुमार ने देखा, अमिता मुस्करा रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों मे अब भय का कोई भाव नही था। किंचित् मुस्कराकर बोली—"थकने को क्या सिर पर पहाड़ रख कर चले थे?"

पार्वती कह उठी, "ऐसी चढ़ाई-उतराई की यात्रा में चलते समय कुछ नहीं मालूम होता, बाद में थकान कई दिन तंग करती है।" अमिता से उन्होंने कहा—"ले अब तू भी खा ले!"

"तो क्या तब नहीं खाया था? या इतनी जल्दी हजम कर लिया?" कुमार ने ताना मारा।

"जी हाँ, हजम कर लिया। आपका हिस्सा कम नहीं करूँगी।"

पार्वती दोनों को खाना खिला रही थी। और कुमार-अमिता मुस्कराकर कभी-कभी नयनों से बातें भी कर रहे थे। जीवन में एक ऐसी अनुभूति प्राप्त हो गई थी कि जिसने दोनों के बीच शरीर का बंधन हटा दिया था। मन को मन ने आत्मसात् कर लिया था। अमिता के मन ने तब एक क्षण को देखा, जैसे वह रसोई बना रही है, और कुमार को पत्नी-भाव से खिला रही है। व्रीड़ा का भाव चेहरे पर आकर चला गया। उनके भोजन समाप्त करते-करते उमानाथ लौट आए। उलझन उनके चेहरे पर अब भी थी। पर कमरे का वातावरण पूर्णतः सामान्य और पार्वती को भी पूर्ववत् निश्चिन्त मुद्रा में देखकर वह भी जैसे सँभल गए। फिर भी घूमकर जो लौटे तो वह एक निश्चय साथ लाए थे। उन्होंने संकल्प-विकल्प के चक्र में घूमते-घूमते यह निष्कर्ष निकाला था कि 'यदि अनहोनी घटना नहीं भी घटी, तो आगे घट सकती है। अतः प्रवास का काल समाप्त कर अब लौट चलना

चाहिये।' यही निश्चय उन्होंने कमरे में प्रवेश करते-करते सब पर व्यक्त कर दिया। उन्होंने कहा, "अब कचहरियाँ खुलने में अधिक दिन नही है। हम कल लौट चलेंगे।"

सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। कुमार और अमिता पर भी इसकी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। शहर का वह घड़ी के चक्र-क्रम-सा जीवन सामने आ गया कुमार के। एक पल के लिए धृति का भोला चेहरा आँखों में आकर झाँक गया। "हाँ! ठीक है। पढ़ाई का हर्ज हो रहा है। यहाँ तो पढ़ने का कुछ समय ही नही मिलता। उधर धृति की पढ़ाई भी रुक रही है।"

कुमार के मुख से तब धृति का उल्लेख होना अमिता को न सुहाया। पर पार्वती-उमानाथ को एक बार फिर कुमार के प्रति श्रद्धा हो आई।

: ३ :

ताँगे से उतरकर सूटकेस हाथ में उठाये जब कुमार ने कोठी के भीतर प्रवेश किया तो सुन्दर बाबू अपने आफिस जाने के लिए बाहर निकल आए थे। स्वागत भरी मुस्कान से उन्होंने कुमार की ओर देखकर कहा, "आ गए, भाई? सब ठीक-ठाक?" और वह कोठी से बाहर निकल गए। कुमार ने उनका अभिवादन करते हुए आदरपूर्वक केवल "जी, हाँ!" कहा और वह पोर्च में सीढ़ियाँ चढ़कर भीतर आ गया। सुन्दर बाबू ने बाहर निकलते-निकलते देखा कि वकील साहब का कुछ सामान कोठी के बाहर रखा था और कुछ नौकर अन्दर ले जा रहा था। उन्होंने अनुमान लगा लिया कि सब लोग लौट आए है। पर, साथ ही उन्होंने सोचा कि कार्यक्रम के अनुसार यह लोग शायद पहले ही लौट आये।

कुमार ने जैसे ही भीतर प्रवेश किया रसोई में से एक भारी आवाज प्रश्न कर उठी, "कौन है?" यह आवाज मिसरानी की थी जो रोटी बना रही थी। धृति की माँ के सामने से ही कस्तूरी इस घर में रोटी बनाती है। सुन्दर बाबू के

विधुर होने के बाद उसने धृति की सार-सँभाल अपने ही बालकों की तरह की थी। धृति और सुन्दर बाबू की छोटी-से-छोटी सुविधा का उसने खयाल रखा था। लेकिन साथ-ही-साथ कस्तूरी नारी-सुलभ ईर्ष्या से बहुत शीघ्र ग्रस्त हो जाती रही है। उमानाथ के आग्रह को स्वीकारते हुए जब सुन्दर बाबू ने कुमार और उसकी माँ को यहाँ रहने की सुविधा दी तो कस्तूरी ने ही किंचित् विरोध किया था। लाख-लाख चेष्टाएँ कुमार करता था कि उसका मान भंग न हो, फिर भी कस्तूरी ने उसे हृदय में कोई स्थान अभी तक नहीं दिया था। कुमार और उसकी माँ के सामने प्रायः उसका मुँह बना रहता था, धृति पर वह घर के किसी बड़े-बूढ़े की तरह शासन करती थी और सुन्दर बाबू के सम्मुख भीगी बिल्ली बनी रहती थी।

कुमार ने जब कहा, "मैं हूँ अम्माजी", तो कस्तूरी ने तनिक बनकर कहा, "आ गए भइया, दो दिन जल्दी ही कैसे लौट आए?"

अचानक कुमार ने नासमझी से कह दिया, "अमिता की तबियत कुछ ठीक नहीं थी, इसीलिए।" कुछ रुक कर कुमार ने पूछा—"माँ कहाँ गई है?"

"अरे वह भी बेचारी दवा लेने गई है, बीमार है बुढ़िया। तुम्हें तो सैर-सपाटों से मतलब।" सुनकर कुमार के मन को चोट लगी। चिन्तातुर होकर उसने पूछा, "क्या बीमारी है?"

"यही कुछ पेट में गड़बड़ है, ढलती उमर में औरतों को बीस बीमारियाँ लगती हैं पेट की।"

कुमार कुछ उदास हो गया और अमिता का भय से आक्रान्त पीला चेहरा उसके सामने घूम गया।

"और धृति तो कालेज गई होगी?" कुमार ने विषय बदलते हुए पूछा।

"हाँ," कस्तूरी ने तनिक दकियानूसी ढंग से कहा—"उस पर भी तुमने न जाने क्या जादू डाल दिया है। दिन भर तुम्हारे ही गीत गाती है।" और तनिक ठहर कर कस्तूरी बोली—"आजकल की छोकरियों को भी जाने क्या हो गया है। न किसी की शर्म, न लाज! चाहे जिसके सामने चाहे कुछ भी कहती फिरती है।"

सुनकर कुमार पर जैसे बिजली गिर पड़ी। धृति के विषय में उसने अभी तक ऐसी कोई बात पहले नहीं सुनी थी। न ही धृति ने ऐसा कोई लगाव प्रदर्शित

किया था। सहसा कुमार को भी अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उसका ईश्वर जानता है, उसने कभी धृति को मोहने की कोई कल्पना तक नहीं की। और यदि धृति एक गायक कवि की कविताओं का रसास्वादन करे और उसके निकट सम्पर्क में आकर उसकी प्रशंसक बन जाये तो इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नही है। लेकिन कुमार इस बात को नहीं समझता था कि कस्तूरी ने जो कुछ कहा उसमें कुछ सच्चाई थी। कस्तूरी ने कुमार को परेशान, विस्मय-विभोर और किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा देखा और अचानक एक बड़ी बात कह दी। "देखो कुमार, सुन्दर बाबू और तरह के आदमी है। मैं तुम्हें अपना समझकर कहती हूँ कि जिस थाली में खाओ उसी थाली में छेद करना उचित नहीं।"

कुमार एकदम विक्षिप्त हो गया और झुँझला उठा, "यह क्या कह रही हैं आप, अम्माजी? क्या आपने मुझे इतना गिरा हुआ समझ लिया है? मैंने आज तक धृति को अपनी छोटी बहन के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा है।" तनिक गंभीर होकर कुमार ने आगे कहा, "मै जानता हूँ, हमारा यहाँ रहना तुम्हें शुरू से ही अच्छा नहीं लगा है। लेकिन जब तक सुन्दर बाबू स्वयं कुछ न कहें, मुझे तुम्हारी किसी बात की रत्ती भर परवाह नही है। और मै यह साफ-साफ कहे देता हूँ कि तुम्हारे मन में कोई पाप का ज्वालामुखी फूट पड़ा है जिसकी आग में निर्दोष धृति को तुम भस्म कर डालना चाहती हो। तुम नहीं जानतीं ऐसी बातें मुँह से निकालने का धृति के जीवन पर कितना गहरा असर पड़ेगा।"

"मैं क्या जानूँ?" बीच में ही कस्तूरी बोल पड़ी, "मैंने तो धृति के ही मुँह से सुना है। कहती थी, मैं कुमार के गीतों को प्रेम करती हूँ, कुमार को प्रेम करती हूँ। हद है, बेशरमाई की।"

"यह सब गलत है, यह सब झूठ है।" झल्लाहट से कुमार कहता हुआ अपने कमरे की ओर बढ़ आया।

"क्या झूठ है, बेटा—आ गए तुम?" कुमार ने सुना यह उसकी माँ, बिश्नोई, की आवाज थी। कुमार ने तुरंत माँ को सहारा दिया और उन्हें कमरे की ओर ले जाते हुए कहने लगा—"अजीब है यह कस्तूरी भी, घर में घुसते ही मेरी कुत्तों की तरह टाँग पकड़ ली। जाने क्या-क्या ऊट-पटाँग बात बनाती है।"

बिश्नोई एकदम गंभीर हो गई। "शान्ति रख बेटा, चल अन्दर! अन्दर बैठ। मैं तुझ सब बताऊँगी।"

कुमार और बिश्नोई कमरे में आ गए तो कुमार ने पूछा—"क्या तकलीफ हो गई माँ तुम्हें?"

"कुछ नही। थोड़ी बदहजमी और सिर-दर्द की शिकायत थी। हकीमजी से दवा ले आई हूँ।"

कुमार को तब लगा कि माँ की बीमारी के सम्बन्ध में भी कस्तूरी कितना गलत कह रही थी। कस्तूरी के प्रति घृणा का भाव और भी गहरा हो आया। कुमार माँ से बोला, "मैंने धृति को सदा छोटी बहन करके जाना है और यह कस्तूरी पता नहीं क्या समझती है और बकती है।"

"बेटा, इतने दिनों में मैंने बहुत कुछ देखा है, समझा है। असल में तो कस्तूरी मिसरानी नहीं, इस घर की मालकिन बनी हुई है।" कहते-कहते बिश्नोई का स्वर अत्यन्त धीमा हो गया, "अच्छा यही है कि हम लोग यहाँ से कहीं और चले जायें। वरना, यह कस्तूरी एक दिन जाने क्या गुल खिलाये। जा, तू नहा-धो ले, और खाना खा। इस कुलटा की बातें ध्यान से निकाल दे।" इतना कहकर बिश्नोई कपड़े बदलने के लिए भीतर के कक्ष में चली गई और कुमार एक क्षण वहाँ उलझा हुआ बैठा रह गया।

कुछ ही समय बीता होगा कि रसोई से कस्तूरी की आवाज सुनाई पड़ी, "कुमार की माँ, ये थोड़ा आटा बचा है, इसे तुम सेंक लेना, मैं जा रही हूँ। मेरे सिर में जोर का दर्द है।" तब खटापट रसोई के किवाड़ बन्द होने की आवाज आई और कुमार को साफ जान पड़ा कि कस्तूरी बहुत अप्रसन्न है। कुमार की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। माँ ने जो कुछ कहा था, उससे वह और भी अधिक उलझन में पड़ गया था।

कस्तूरी चली गई, तब बिश्नोई ने कुमार के पास आकर कहा—"बेटा, इसने तो तेरे पीछे यही सब तमाशा किया है। या तो सुन्दर बाबू से कहकर पीछे की किसी कोठरी में रसोई बनाने का प्रबन्ध कर या जगह ही कोई और ढूँढ़।"

"ठीक है माँ, तुम निश्चिन्त रहो। मैं सब सोच लूँगा।" कहकर कुमार उठ गया और नहाने-धोने की तैयारी करने लगा। बिश्नोई तब रसोई में चली गई।

कुमार जब खाना खाकर कमरे में लौटा तब सुन्दर बाबू का चपरासी उनका टिफिन लेने आ गया था और उसके जाते-जाते धृति भी कालेज से लौट आई थी। उसका चेहरा सदैव की भाँति कमलवत् खिला हुआ था और कुमार को लौटा देख कर वह जैसे एक रोमांच से पुलक उठी थी। कुमार के कमरे में आते ही उसने प्रसन्नता-पूर्वक कहा, "ओहो, आ गए कुमार भइया ?" लेकिन कुमार को निश्चेष्ट, निरुत्तर और आहत-सा बैठे देख कर धृति को जैसे काठ मार गया। बहुत ही गंभीरता के साथ कुमार ने केवल "हूँ" भर कहा। और धृति के पास बैठते-बैठते वह फूट पड़ा, "धृति, क्या तुम यह चाहती हो कि हम लोग अब यहाँ से चले जायें ?"

यह अप्रत्याशित प्रश्न सुन कर धृति विचलित हो उठी, "यह आप क्या कह रहे है ?"

"मैं ठीक कह रहा हूँ धृति। अभी-अभी लौट कर मैंने जो कुछ कस्तूरी से सुना, वह मेरे मन को एक गहरी ठेस पहुँचाने के लिए काफी है।" एक आवेश के वशीभूत होकर कुमार ने धृति का कंधा हिलाकर आर्द्र कण्ठ से पूछा—"बताओ, मै तुम्हें प्रेम करता हूँ ?" धृति की आँखों में उसकी आँखें फँस गई।

धृति कुम्हला गई। वह किसी ऐसे सीधे प्रश्न के लिए तैयार नही थी। आज उसे पहली बार यह स्पष्ट ही पता लग रहा था कि जिसको वह हृदय मे प्रेम के पवित्र सिंहासन पर बैठाकर मन-ही-मन स्वर्णिम स्वप्न सँजो रही थी वह अपनी पूजा से बेखबर था। धृति का दिल अचानक शीशे की तरह टूट कर खण्ड-खण्ड हो गया। आज वह पहली बार कुमार के सामने प्रेमिका के रूप में आ गई। उसका कण्ठ गीला हो गया और नयन भी सजल हो आये। मर्माहत हुई वह बोली, "कुमार, मैंने सुना था कि देवता पत्थर के ही होते हैं। पर, तुम्हारा तो हृदय भी पत्थर का है।" कहते-कहते धृति उठ खड़ी हुई और कुमार के मुँह से एक चीख जैसे निकली, "धृति ! यह तुम क्या कह रही हो ? मैंने तुम्हें सदैव छोटी बहन समझा है।"

धृति अपने कमरे की ओर बढ़ गई। कुमार के ये शब्द उस कमरे में गूँजकर रह गए और वह पीछे-पीछे धृति के कमरे में आ गया।

धृति सोफा पर मुँह लटकाए रो रही थी। कुमार ने उसका चेहरा ऊपर उठाते हुए पूछा—"तुम्हें यह क्या हुआ है, धृति ? और यह सब कैसे हुआ, मेरी कुछ

समझ में नहीं आ रहा। सोचो तो, तुम्हारे बाबूजी यह सुनेंगे तो क्या कहेंगे? क्या समझेंगे, मुझे? मन के यह क्षणिक आवेग जीवन की दिशा बदल देते हैं, लेकिन तुम नहीं समझती हो कि ये आवेग के क्षण बहुत गलत होते हैं और जीवन को तूफानों में डालकर जर्जर बना देना ही इनका काम होता है।" कहते-कहते कुमार के अन्तर्मन में अमिता बिजली की तरह कौंध गई और वह आगे कह रहा था, "समझ में नहीं आता कि कैसे तुम अपने दिल पर काबू खो बैठी हो?"

"ये मेरी समझ में भी नहीं आता, कुमार! मैंने जब-जब तुम्हारे गीत सुने हैं, अपने मन में एक ऐसा रस का स्रोत फूटते अनुभव किया है कि मानो जीवन का सबसे अमूल्य धन मुझे मिल गया हो। आज मैं तुमसे तुम्हारी ही पंक्तियाँ कहूँ तो? 'तुमने मन की गति को तनिक नहीं पहचाना'—सचमुच कुमार तुम बहुत भोले हो, और भोले आदमी यह नहीं जानते कि उनका भोलापन कैसी गहरी मार मारता है, कैसे किसी के हृदय को वेध डालता है। ओह! मेरी कैसी भूल थी, जो मैं समझती रही कि मेरा देवता अन्तर्यामी है।" धृति का कण्ठ बहुत भर आया था और वह रो पड़ी थी।

आहिस्ता से धृति के कन्धे पर हाथ रखते हुए कुमार ने कहा—"धृति, यह सब नादानी है, नादानी है।"

कुमार की ओर पीठ किए हुए ही धृति ने लगभग अवरुद्ध कण्ठ से कहा, "हाँ, नादानी है। मैं तुम्हें अमिता की ओर बढ़ते हुए देख कर भी न सँभली।"

कुमार को लगा, जैसे वह ऊपर से आ पड़ी किसी शिला से दब गया हो। एक ओर जहाँ वह धृति की उलझन से बचकर बाहर निकल आना चाह रहा था, वहाँ उसे लगा कि ये एक ऐसी उलझन है जिसमें उससे कहीं ज्यादा धृति उलझ चुकी है। उसने कहा, "धृति, मैं मानता हूँ तुम अमिता से कहीं अधिक लावण्यमयी हो, पर मैं तुम्हारे आगे साफ-साफ स्वीकार करता हूँ कि अमिता सचमुच मेरे मन-प्राण में बस गई है और मैं ये तुम्हें बता नहीं सकता कि हम कितने निकट आ चुके हैं। तुम मेरी बहन हो और बहन रहोगी।"

सुनकर धृति तुरंत पैर तले आई हुई नागिन की तरह फनफनाकर कुमार की ओर मुख करके खीजे हुए स्वर में बोली—"लेकिन मैंने तुम्हें भाई करके कभी

नहीं देखा, और न देख सकूँगी।"

"धृति!" एक बार फिर कुमार के मुँह से चीख जैसी निकली।

"हाँ, मैं ठीक कह रही हूँ।" कह कर धृति कमरे से बाहर जाने लगी। एक क्षण कुमार वहाँ सचमुच पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा रहा। माँ ने जब पुकारा-"धृति, आ गई क्या बेटी? आ, रोटी खा ले।"--तो कुमार सँभल गया और कुछ नपे-तुले से कदम उठाकर फिर अपने कमरे की ओर बढ़ गया। उसके आगे-आगे जाती हुई धृति ने आँचल से अपना मुंह पोंछा और वह रसोई की ओर घूम गई।

रसोई में आई तो धृति एकदम बदली हुई थी। इस बीच में बिश्नोई के प्रभावपूर्ण और गंभीर व्यक्तित्व से आकर्षित हुई धृति ने उसे आत्मीयता का व्यवहार दिया था। प्रायः वह उससे इसी प्रकार वार्तालाप करती थी जैसे किसी अपनी ही ताई या चाची से बोल रही हो। फिर भी धृति हर समय अपने मन की बात पूर्णतः बिश्नोई पर प्रकट करती हो, ऐसा भी नहीं था। बिश्नोई को लगता था कि यह लड़की पिता की लाड़ली है और बड़ों का आदर करना भी इसे आता है, फिर भी मन की मलिका है। एकदम स्वच्छन्द नहीं तो अस्सी फी सदी स्वच्छन्द तो समझिये ही। बिश्नोई यह भी जानती थी कि धृति एक बार उससे चाहे कोई बात छिपा भी ले, पर कस्तूरी से उसकी कोई बात छिपी न थी। इसीलिए वह धृति से वार्तालाप के समय कुछ सावधानी बरतती थी। पर रसोई में जब धृति ने खाना शुरू किया तो ऐसा प्रसंग छेड़ बैठी कि बिश्नोई ने भी अपना मन खोल कर रख दिया।

धृति ने पूछा पहले—"काकी! कुमार भैया को शायद जल्दी लौट आने की खुशी नही है। इतना उदास····खोया-खोया-सा तो मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।"

धृति को रसोई में आते देख बिश्नोई जैसी प्रसन्न मुद्रा में थी, वैसी ही वह एकदम गंभीर हो गई। "तू ही बता बेटी, यह मिसरानी कभी इतना भी नहीं सोचती कि हमारी भी कोई इज्जत है?"

"क्यों? क्यों? ऐसा क्या हुआ काकी?" वास्तव में धृति समझ नहीं पाई कि बिश्नोई किस बात की भूमिका बाँध रही है। इसलिए वह विस्मित रह गई।

"बिटिया, उसने इतना नहीं सोचा कि लाला अभी हारा-थका यात्रा से आया है, घर में घुसते ही उसकी टाँग कुत्तों की तरह पकड़ ली। भला कोई बात भी हो?"

"मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा काकी!" बीच में ही धृति ने कहा—"साफ-साफ कहो न। सचमुच मैं जानती हूँ, यह मिसरानी भी कुछ-कुछ सठिया गई है।"

"अच्छा तू ही बता"—बिश्नाई ने बात खोल दी—"क्या लाला ने कभी तुझे बुरी निगाह से देखा है?"

"यह कैसी बातें कह रही हो काकी?"

बिश्नोई का गला भर आया। पर उसकी वाणी में दृढ़ता थी—"सब को अपनी इज्जत प्यारी होती है। मैं जानती हूँ, मेरा बेटा कैसा है। मैंने उसमें आज तक कभी ताकने-झाँकने की आदत नहीं देखी। कस्तूरी ने कैसे इसकी कल्पना कर ली कि वह तुझे····" आगे बिश्नोई नहीं कह पाई, क्योंकि धृति ये सुन खिल-खिलाकर हँस पड़ी तो बिश्नोई की आँखें फटी रह गई। उसने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि धृति इस प्रकार हँस पड़ेगी।

पर हँसी रोकते-रोकते धृति ने बिश्नोई का विश्वास प्राप्त कर लेना चाहा, "तुम्हें सच-सच बात बताऊँ काकी?"

"हाँ, हाँ क्या बात है?" एक ही साँस में बिश्नोई कह गई।

"दो-ढाई माह की बात है काकी," धृति ने कहना शुरू किया, "कुमार भैया का उस दिन आकाशवाणी पर कार्यक्रम था। उन्होंने एक गीत सुनाया था।" स्मृति पर जोर डालकर धृति बोली—

"कौन कहे कब हो अरुणोदय ।।
कलि का औ' अलि का जब हो लय
हर पल में जब स्वर्ण समाए, दूर हटे तम घोर निराशा....।"

धृति ने कुछ ऐसे ढंग से बात शुरू की कि बिश्नोई चेतना-शून्य-सी उसे एकटक देखती रह गई। सारी एकाग्रता से वह सुन रही थी। कुमार की प्रशंसा का कोई प्रसंग आने पर वैसे भी उस बूढ़ी माँ की ममतामयी छाती फूली न

समाती। "बाबूजी भी यह गीत रेडियो पर सुन रहे थे। मैं पास बैठी थी। हाँ काकी ! उस दिन की बात है, जब अमिता को कानपुर वाले देखने आए थे और तुम वहाँ गई थीं।"

"हाँ, तो क्या हुआ ?" बिश्नोई बात के मर्म तक पहुँचने को अधीर थी।

धृति ने आगे कहा, किंचित् लज्जा के साथ, "उस दिन बाबूजी पर उस गीत का न जाने कैसा प्रभाव पड़ा कि वह संध्या समय कस्तूरी को कमरे में बुला मेरे विवाह के सम्बन्ध में भी चिंता व्यक्त करने लगे। मैं तब उनके पास से उठकर चली गई। पर सच कहूँ काकी"—धृति ने नीची गरदन कर धीमी मुस्कराहट से कहा—"बगल वाली बैठक में किवाड़ के पीछे खड़े होकर मैंने सब कुछ सुना था"

"क्या ?"

धृति का कौर हाथ में रुका रह गया और वह अत्यन्त धीमे स्वर में बोली, "कस्तूरी ने बाबूजी से कहा था, लड़का तो तुम्हारे घर में ही है। एम० ए० में पढ़ता है, अखबारों में नाम की धूम है, बिरादरी भी आपकी एक ही है.... कहते-कहते अब धृति की वाणी गलित हो चली—"सच कहती हूँ काकी, बाबूजी को यह प्रस्ताव अच्छा लगा और उन्होंने कहा मिसरानी से—'तू ही बात चला कर देखियो, कुमार की माँ से।' —पर काकी एक दिन फिर बाबूजी ने ऐसे ही पूछा था कस्तूरी से तब उसने कहा—'मैं मौका देखकर बात करूंगी, बाबूजी ! लड़का मुझे कुछ-कुछ अमिता पर दीवाना नजर आता है।" धृति फिर अपनी मुस्कान न रोक पाई और कहने लगी, "उसने ऐसे ढंग से कहा काकी कि बाबूजी की आँखें भी झुक गईं। पर काकी...." धृति का स्वर भारी हो आया, "अच्छा होता, मैंने यह बात-चीत न सुनी होती। उस दिन मैंने जीवन में पहली बार सोचा कि एक युवती को अपने पिता का घर छोड़कर अपनी अलग ही नगरी बसानी होती है। बात क्योंकि कुमार भैया को लेकर हुई थी, इसलिए स्वाभाविक ही मेरी कल्पना उनको लेकर नये-नये क्षितिज ढूँढ़ने लगी। मन की ऐसी गति हो चली कि मैं स्वयं उसे न पहचान पाई।" धृति भावावेश में कहे जा रही थी और पूर्ण स्तब्धता के वातावरण में बिश्नोई सुन रही थी।

"किसी काम में तब से मेरी रुचि नहीं होती। जैसे कुछ खो गया हो, ऐसा

लगता है। जितना मैं अपनी कल्पना से कुमार को हटाना चाहती, वह उतना ही मेरी रग-रग में जैसे भरने लगता। काकी, मैं क्या कहूँ, कुछ समझ में नहीं आता। ऐसी ही स्थिति में एक दिन मुझे माँ की याद आई और अपने एकान्त कमरे में फफक-फफक कर मैं रो उठी···"

धृति के भारी स्वर ने बिश्नोई के हृदय को छू लिया। नवनीत को जैसे उष्णता मिल गई हो।

धृति कह रही थी—"दुःख था मुझे कि अपना कोई पास होता तो मैं भी अपने मन की उसे सुनाती। काकी, तुम तो जानती हो, बेटी माँ के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख सकती है, पर पिता के आगे वह मुँह कैसे खोले!—तब फिर एक दिन कस्तूरी के आगे ही मन का ज्वार बंधन तोड़कर बह चला। कस्तूरी चाहे कैसी भी हो काकी, मेरे लिए जान देती है। और तुम भी तो अब मेरे लिए माँ से कम नहीं हो काकी। तुम्हारे साथ जब मैं खाना खाती हूँ तो लगता है जैसे माँ के पास ही बैठी हूँ।" धृति की इस निश्छल स्वीकारोक्ति ने विश्नोई की आँखों को भी सजल बना दिया। धृति कहने लगी, "काकी, एक दिन फिर कस्तूरी से बाबूजी ने बात-चीत की—पर तब कुमार अमिता के साथ भारत-दर्शन यात्रा की तैयारी कर रहे थे। मेरा मन निराशा के बादलों से घुटा था, ऐसे बादलों से जो पानी का धोखा लाते हैं, पानी नहीं। लेकिन कस्तूरी यह सोच बैठी थी कि अब बात-चीत पहले कुमार से ही करूँगी, काकी से पीछे तय हो जायगा। और काकी···" अब धृति भी अपने आँचल से अश्रु पोंछ रही थी—"मुझे लगता है कि उनका दिल टटोलने के लिए ही कस्तूरी ने कुछ ऊटपटाँग कह दिया होगा···"

"रो मत बिटिया," बिश्नोई ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, "तेरा दुःख मेरा दुःख है। इतनी ही सी बात है? मुझसे कहने में कस्तूरी को क्या डर था? तुझ जैसी सौम्य, सुशील, वधू पाकर कुमार को इस पृथ्वी पर और क्या पाना रह जायगा?"

धृति की सुबकियाँ तेज हो आईं, "तुम नहीं जानतीं काकी"—भारी, दर्द से बोझिल कण्ठ से कहा उसने—"वह अमिता के हो चुके हैं···" खाना अधूरा छोड़कर उठ गई धृति।

बिश्नोई पर जैसे वज्र टूटा हो ! "नहीं। नहीं" ! " उसने प्रतिवाद किया—"मेरा कुमार ऐसा नहीं कर सकता—अमिता तो कायस्थ है·····धृति, तू कैसे कह रही है ?"

धृति पत्थर के ही पैरों से कमरे की ओर बढ़ रही थी और बिश्नोई संशय, अनिश्चय, विपर्यय के डोरे से बँधी उसके पीछे-पीछे बड़बड़ाती हुई चली जा रही थी—"तुझे किसने बताया ? मेरा कुमार ऐसा नहीं हो सकता। कुमार ऐसा नहीं हो सकता।···"

सहसा चौखट की ठोकर खाकर विश्नोई सँभली। मस्तिष्क में एक विचार कौंध-सा गया—"कहीं यह भी तो कस्तूरी की कोई चाल नहीं है ? कुमार ऐसा नहीं हो सकता।" प्रकट में उसके मुँह से निकला—"अभी कुमार से पूछती हूँ।'

सुनकर धृति उतावले पैरों लौट आई। बिश्नोई के मुँह पर हाथ धरकर याचना के स्वर में बोली, "काकी, उनसे कुछ न पूछना। तुम्हें मेरे मरे की कसम है, काकी। उनसे कुछ न पूछना —" गिड़गिड़ाहट के स्वरों के साथ ही धृति के कपोलों पर अश्रु ढुलक आए। बिश्नोई के पैर उस किंकर्तव्यविमूढ़ पथिक की भाँति रुक गए जिससे अँधेरे में पगडंडी छूट गई हो।

: ४ :

अमिता जब कालेज से लौटी तो उसने देखा, नियादरा माँ से कुछ बातें कर रहा था। बीच के ड्राइंग रूम में से जब अमिता गुजरी तो नियादरा ने अमिता के प्रति आदर-भाव दिखाते हुए अपनी बात का सिलसिला कुछ क्षणों के लिए बन्द कर दिया और केवल कुछ गर्दन झुकाकर उसका अभिवादन करने का अभिनय किया।

अमिता को नियादरा का आना नहीं सुहाता था। जमाना आज कहाँ-से-कहाँ पहुँच चुका था। लेकिन, इस बूढ़े नापित ने बहू-दूल्हे ढूँढ़ना नहीं छोड़ा था। उन

दिनों उसने ही तो यहाँ के कुछ घरों से बात-चीत चलाकर कानपुर से किरन के सासरे वालों को बुला लिया था। और वह निराश लौट गए थे, क्योंकि लड़का लोहे की दुकान पर बैठता था और उमानाथ को आधुनिक समाज की संस्कृति में रचा-पचा जामाता चाहिए था।

पार्वती नियादरा को आदर-भाव से देखती थी, बिरादरी का वह बड़ा सुलझा हुआ, बहुत पुराना नापित था। अमिता ने यद्यपि उस पर उपेक्षा भरी दृष्टि डाली थी, पर पार्वती जिस आत्मीयता से उससे बातें कर रही थीं, उसके आगे वह अमिता की क्या परवाह करता! अमिता के भीतर की ओर जाते-जाते उसने पार्वती से कहा—"माँजी, अब तो बीबी सचमुच बहुत स्यानी नजर आवै है। मेरा कहना मानो और नाथ बाबू से भी महेश के लिए हाँ करवा लो। देखना, लड़का बड़ा होनहार है। अभी उसका इम्तिहान पास किया है—तुम्हारा राम जो भला करें, —वह क्या होता है जो टैक्स-वैक्स से बचाने का दफ्तर खोलेगा।"

"क्या इन्कम टैक्स आफीसर का?" पार्वती ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ-हाँ, माँजी, वही" नियादरा को लगा जैसे उसने बाजी मार ली।

"ब्याह भी अच्छा हो जायगा। लड़के का बाप भी सरकारी अफसर है। पन्द्रह सौ रुपए लाता है माँजी, पन्द्रह सौ। घर की कोठी है, नौकर-चाकर हैं। तुम्हारा राम जी भला करें, अमिता बिटिया हुकूमत करेगी, हुकूमत। मेरा कहना मानो, अब के जाड़ों में कर दो हाथ पीले।"

"लड़के में कोई नुकस-ऐब तो नहीं है, नियादरे?"

"अजी भला, क्या बात कह दी माँजी, नुकस-ऐब वाले लड़के के लिये मैं यहीं आता? "माँजी, मैंने तुम्हारा नमक खाया है, नमक। कहो तो इसी इतवार को यहीं चाय पर बुला लूँ। अमिता भी देख लेगी और उनके यहाँ के लोग अमिता को भी देख लेंगे। आजकल तो तुम्हारा राम जी भला करें, ये देखा-देखी का मामला चल ही पड़ा है।"

नियादरा का वाक्य पूरा होते-होते अमिता ड्राइंग रूम में आ गई और माँ के पास बैठते-बैठते उसने मुँह बनाकर नियादरा के प्रस्ताव का प्रतिरोध किया।

"क्या देखा-देखी की बात चलाते हो तुम भी? मैं कोई मिट्टी की पुतली हूँ? मेरी नुमाइश लगाना चाहते हो? दुनिया में अनेक लड़के-लड़कियाँ हैं। कहीं और जाकर रिश्ते जुड़वाओ।" माँ की ओर अभिमुख होकर अमिता बोली, "मैं कहे देती हूँ अम्माजी, मैं कभी अपनी नुमाइश नहीं लगाने दूँगी।" और वह फुदक कर सोफे के दूसरे किनारे पर माँ की ओर पीठ फेरकर बैठ गई। कुछ भर्राए हुए गले से पीठ मोड़े-मोड़े ही उसने कहा, "नियादरे! जा अपना काम कर।"

पार्वती के मान को कुछ ठेस लगी और उसने अमिता को डाँट दिया, "तू जा अपना काम कर। अपनी ब्याह-शादी की बातों में टाँग अड़ाते तुझे लज्जा नहीं आती?"

अमिता और भी कुपित हो गई। वहाँ से उठकर तेजी से वह अपने कमरे की ओर बढ़ी और कहती गई, "मैं अपनी नुमाइश हरगिज नहीं लगाने दूँगी। अगर तुम लड़कियों को इतना ही बेजबान समझती हो तो उन्हें कनाट प्लेस की किसी दुकान के शो केस में रखाने का इंतजाम कर दीजिये। और जो तुम्हारी लड़की को अधिक सुख-वैभव देने का आश्वासन दे, उसको सहर्ष उसे उठा ले जाने की अनुमति दे दो।"

"अमिता!" पार्वती क्रोधावेश में चिल्लाई। उसके ओठ फड़फड़ाने लगे थे और मुट्ठियाँ भिचने लगी थीं। नियादरा उस क्षण अवसन्न-सा बैठा रह गया था और पार्वती ने जैसे बेटी की चुनौती स्वीकार कर ली। नियादरा से बोली, "इतवार को नहीं तो शनीचर की शाम को ही उन्हें चाय पर बुला ले। आजकल की लड़कियाँ किसी की इज्जत नहीं करतीं। पहला जमाना ही अच्छा था, जब छोटी उम्र में ही लड़कियों की शादी कर दी जाती थी। अब तो जितनी ये बड़ी होती जाती हैं, उतना ही छाती पर मूँग दलती जाती हैं। बात तय हो गई तो नियादरे, मैं तो इसी जाड़े में ही गंगा नहा लूँगा।"

"तुम बेफिकर रहो माँजी। राम जी तुम्हारा भला करें, सब ठीक ही होगा। लड़के वालों की भी तसल्ली हो जायगी। आजकल के जमाने में कुछ रिवाज ही ऐसा चल पड़ा है। तुम जानो घराना तो उनका पुराना ही है। मेरी समझ में

तो बिटिया के हाथ पीले कर ही दो।"

और तनिक रुककर नियादरा बोला, "माँजी लड़के को समोसे और खीर-मोहन बहुत पसन्द है। चाय के संग परोस देना।"

पार्वती अब तक फिर सामान्य स्थिति में आ गई थी। बोली, "तू बेफिकर रह, सब इंतजाम बढ़िया ही होगा। तू जाने है, तेरे बाबूजी अपनी नाक ऊँची रखते हैं।"

"अच्छा, तो राम जी तुम्हारा भला करें, माँजी, मैं अब चलूँ।" उठकर नियादरा चलने लगा तो पार्वती बोली, "ठहर जरा, अपने छोरे के लिए दो-एक कपड़े ले जा।" नियादरा सुनकर फूला न समाया और सोफे के पास जहाँ बैठा था, वहीं फर्श पर फिर बैठ गया। पार्वती भीतर कपड़े लेने चली गई।

नियादरा के चले जाने के बाद अमिता माँ से फिर एक बार उलझ पड़ी। जिस कमरे में बैठी वह रो रही थी, पार्वती वहीं पहुँच गई। सम्भवतः उसका आहत अहम् उसको वहाँ ले गया। प्यार और ताड़ना के मिश्रित स्वर में उसने कहा, "इतनी स्यानी हो गई, जरा सोचकर बात नहीं करती। कम-से-कम जो कुछ कहना था, उस नियादरा के सामने तो न कहती।"

"मुझे क्या डर पड़ा है, उस मरे का?" बीच में ही बात काटकर अमिता कह बैठी।

"तू नहीं समझती बेटी, ये छोटी जात के लोग जरा सी बात पर रुष्ट हो जाते है तो जगह-जगह दूसरों की टोपी उछालते फिरते हैं। और तू इस बात को नहीं समझती कि अगर किसी लड़की के बारे में एक बार कोई औंधी-सीधी बात फैल जाती है, तो उसके विवाह में कितनी अड़चनें खड़ी हो जाती हैं।"

"मुझे इन अड़चनों से कोई मतलब नहीं माँ, जब होना होगा विवाह, हो जायगा; और उसके लिए मुझे नियादरा से वकालत कराने की कोई जरूरत नही पड़ने को। मैं जानती हूँ, विवाह नारी के जीवन की एक अपरिहार्य आवश्यकता है, लेकिन इसका मतलब यह हर्गिज नहा कि माँ-बाप लड़की को एक बेजान मिट्टी की मूर्ति समझकर जहाँ उचित समझें, उठाकर रख दें। आज यह भी जरूरी हो गया है कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपने भविष्य-निर्माण के बारे में स्वयं भी

कुछ सोच लें। और यह सोचने का अवसर उन्हें देना ही चाहिये····।"

"बस, बस, बन्द कर तू अपना लैक्चर। अभी तू इस बात को नहीं समझती। मैं तेरी तरह कालेजों में नहीं पढ़ी हूँ। फिर भी इस बात को तुझसे अच्छी तरह समझती हूँ कि माँ-बाप अपनी सन्तान के हित के लिए जो सोच सकते हैं, वह सन्तान स्वयं अपने हित के लिए नहीं सोच सकती। उसके पास वह दृष्टि ही नहीं होती—एक दिन तू इस बात को समझेगी।" पार्वती पूर्ण गंभीरता से यह कहकर अपने काम में लग गई। अमिता अपनी मेज पर जड़वत् बैठी रह गई। उसके कानों में माँ के शब्द गूँज रहे थे और अन्तर्मन में एक चलचित्र-सा बन-मिट रहा था। उसने विवाह-मण्डप में लाज के आवरण में सिमट कुमार का बलिष्ठ हाथ पकड़ लिया है और दोनों मिलकर अग्नि में आहुतियाँ डाल रहे हैं। सहसा वेदी में लटके हुए विशाल गुब्बारे में आग फूट पड़ती है। सारी वेदी जल उठती है और सहमी हुई अमिता को कुमार अपनी सुदृढ़ बाहुओं में कसकर पीछे हट जाता है। अमिता का सिर घूम गया और वह लगभग अचेत-सी अपनी मेज पर ढह गयी।

कुछ समय बाद उसे मस्तिष्क की झनझनाहट लुप्त होती हुई प्रतीत हुई और तब वह शृंगार मेज में लगे आदम-कद शीशे के आगे आ खड़ी हुई। लगा, जैसे दर्पण में झाँकने वाली अमिता अभी फूट-फूटकर रो चुकी है और दूसरे ही क्षण उसे दर्पण में भी ऐसा लगा जैसे सेहरे बँधे हुए अमिता-कुमार मण्डप में भाँवरें दे रहे हों। अमिता चौंककर फिर मेज पर आ बैठी और तब उसकी दृष्टि उस कापी पर चली गई जो कोर्स की दो-तीन किताबों से दबी रखी थी, और जिसमें वह गीत लिखा था जो कुमार ने यात्रा से लौटते हुए रेल में लिखा था। किसी अज्ञात प्रेरणा से जैसे अमिता ने वह कापी उठा ली, खोली और वह गीत पढ़ने लगी :—

अलकावलि में था फूल बसंती शोभित,
नयनों में थी चंचलता नव-यौवन की।
स्वच्छन्द हृदय को बना लिया निज बन्दी,
मैं छड़ा न पाया बाँहें उस चितवन की।

कोमल लम्बी बाँहों में थी थिरकन पर,
उनमें बँधकर मैं भूल गया सुध तन की।
नयनों में था संकोच लजाकर झाँका,
सुलझा न सका मैं उलझन उस उलझन की।
थी अधरों पर वह मन्द हास की रेखा,
पंखुड़ी गुलाब पर बिखरी सांस पवन की।
सुकुमारि देह वल्लरि समान थी काँपी—
गति में चंचलता थी तब उर-धड़कन की।
वह सत्य समर्पण का सुन्दर शाश्वत पल,
बन गया धरोहर-राशि अकिंचन-मन की।
अलकावलि से ढँक, शीश हृदय पर ठहरा,
घड़ियाँ उर में छुप बैठी अवगुंठन की।
उस निशि में जीवन अमर बना पी अमृत,
हो उठी मूर्ति साकार प्राण-दर्शन की॥

पढ़ते-पढ़ते अमिता को रोमांच हो आया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह कुमार के क्रोड में सिमटकर निढाल हो गई है। मुँह पर एक ताला पड़ा है, जिसे व्रीड़ा का ताला कहा जा सकता है। कल्पना के निःसीम आकाश में उन्मुक्त उड़ान लेने लगी अमिता। नियादरा का प्रसंग उसकी स्मृतियों में इतना नीचे दब गया कि वह उसे भूल-सी गई।

पर, शनिवार को जब अमिता ने सुबह से ही पार्वती को ड्राइंग रूम साफ करवाते, सजवाते और एक विचित्र प्रकार की चहल-पहल, व्यस्तता से घिरे देखा तो उसका माथा ठनका। एक ऐसी बेबसी से वह अपने को घिरा देखने लगी जिसमें मनुष्य को नदी में छलाँग मारने के सिवाय और कुछ नजर नहीं आता। नियति का कैसा उपहास था कि वह कुमार से मिल भी तो नहीं पाई थी। मिल पाती तो अपने हृदय का बोझ कुछ तो हलका करती। पर, जो कुछ माँ ने रचा था उससे अमिता की धमनियों में रक्त जम-सा गया था। वह उस दिन कालेज भी नहीं गई और गुम-सुम अपने कमरे में पड़ी हुई नाना प्रकार की कल्पनाएँ करती

रही। कभी-कभी अपनी बेवसी पर वह रो पड़ती थी। सुवह से ही वह अपने पिता उमानाथ के सामने भी नहीं आई थी। लेकिन, कचहरी जाते समय वही उसके कमरे में आये थे और कह गए थे, "अपनी बनारसी साड़ी पहन लेना, बेटा। इसमें रोने की क्या बात है? तुम्हारी मर्जी के बिना मैं कहीं तुम्हारी शादी नहीं करने का। अगर तुम्हारी माँ एकदम पुराने ख्यालात की है, तो बाप तो कुछ-कुछ नये जमाने का है।"

पिता का यह कथन उसके आत्मबल को बढ़ाने में सहायक तो हुआ पर दोपहर बाद जिस नाटक का सूत्रधार उसकी माँ बनने वाली थी, उसके लिए अमिता अपनी छाती नहीं ठोक पाई। वह इसी उलझन में थी कि किसी तरह आज का नाटक "ड्रा" में समाप्त हो जाय।

दोपहर के खाने के बाद माँ के बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी अमिता ने साड़ी नहीं बदली। वह ऐसी उदासी से घिरी अपने कक्ष में पड़ी रही जैसे किसी ने मयूरी को उन्मुक्त वन-प्रदेश से पकड़कर पिंजरे में बन्द कर दिया हो। माँ ने यहाँ तक कहा—"तू नहीं चाहती कि अभी तेरा कहीं सम्बन्ध किया जाय तो मैं नहीं करूँगी; लेकिन जब मैं उन्हें चाय पर बुला चुकी हूँ तो तुझे बाहर आकर मेरे साथ चाय पीने में क्या इंकार है? आखिर मेरे 'हाँ' कहे बिना वह बारात थोड़ी ले आएँगे। और अगर तू अपनी माँ का इतना भी कहा नहीं मान सकती तो समझ ले मैं किसी दिन विष खा लूँगी।"

"माँ!" अमिता का हृदय फूट पड़ा। पार्वती बाहर चली गई, क्योंकि तभी नियादरा की आवाज सुन पड़ी थी, "माँजी! ओ माँजी!"

"हाँ-हाँ, आओ, आओ।" कहकर पार्वती ने आगे बढ़ महेश की माँ का स्वागत किया। उनके साथ महेश के अतिरिक्त उसकी एक बहन भी थी। अमिता ने अन्दर कमरे में से ही उनके आगमन का अनुमान लगा लिया और उसका कलेजा धक् से रह गया। पर तभी उसके कानों में उमानाथ के शब्द गूँजने लगे, माँ की विष खा लेने की धमकी सुनाई पड़ी। न जाने किसने उसके तन-बदन में एक नयी स्फूर्ति फूँक दी। और जब नियादरा के साथ सुधेश उसे बुलाने आया तब वह गुलाबी रंग की बनारसी साड़ी में लिपटी हुई नव-वधू-सी जान पड़ रही थी।

आज उसने ओठों पर लिपिस्टिक भी लगाई थी। माँ ने उसे कमरे से बाहर आते देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। लेकिन, जब पार्वती ने अमिता को लँगड़ाकर चलते देखा तो भीतर-ही-भीतर क्रोध की लपटों से वह जलने लगी। सुधेश को यह सारा नाटक देखने में एक विशेष मनोरंजन मिल रहा था। अपने से दो वर्ष बड़े भाई दिनेश के कान में उसने धीरे से कहा, "दीदी आज जानकर लँगड़ी हो गई है।" निगाहें झुकाए अमिता लँगड़ाकर धीरे-धीरे जब माँ की ओर बढ़ी तो अतिथियों ने उसकी ओर निगाहें गड़ा दीं।

अमिता यद्यपि बहुत सुन्दर दिखाई दे रही थी, फिर भी उसके चेहरे पर वही पीड़ा थी जो एक अंगहीन व्यक्ति के चेहरे पर तब होती है जबकि उसे सब प्रकार से स्वस्थ व्यक्तियों के बीच में आकर अपने अंगहीन होने का भाव कचोटता है। महेश और उसकी बहन के चेहरे पर कुछ-कुछ घृणा के-से भाव आये। वे उन्हें दबाने की चेष्टा कर रहे थे। पर पार्वती से यह छुपन सका। वह अमिता की हरकत पर बौखला गई, "क्या हुआ री तुझे? अच्छी-भली चलते-चलाते यह क्या नाटक कर रही है?"

बहुत ही धीमे स्वर में अमिता ने कहा, "कुछ नहीं माँ, शीशा चुभ गया। तभी सुधेश को जाने क्या हुआ, तालियाँ बजाकर वह नाच उठा—"नहीं जी, दीदी लँगड़ी है, दीदी लँगड़ी है!" शरारत भरी आँखों से उसने भाई दिनेश की ओर भी देखा। तभी दोनों मिलकर फिर कूदने लगे—"दीदी लँगड़ी है, दीदी लँगड़ी है!" पार्वती ने गुस्से से हुँकारा भरकर उन्हें डाँटने की कोशिश की तो वह बाहर 'लॉन' की तरफ भाग खड़े हुए। इस अप्रत्याशित घटना के बाद ड्राइंग रूम के वातावरण में एक मुर्दनी-सी छा गई। पार्वती अमिता की ओर ऐसे देखने लगी, जैसे वह उसे अभी कच्चा चबा जायगी। महेश, उसकी माँ और बहन बार-बार नियादरा की ओर इस प्रकार से देख रहे थे जैसे उसने बीच बाजार में उन्हें नकटा कर दिया हो। नियादरा स्वयं जमीन में गड़ा जा रहा था। उसने अपने जीवन में ऐसा नीचा कभी न देखा था। मन-ही-मन अमिता को कोसते हुए उसका चेहरा तमतमा आया था। घोर औपचारिकता के वातावरण में जल्दी-जल्दी चायपान समाप्त कर लड़के वाले विदा हुए तो पार्वती उन्हें द्वार तक भी छोड़ने न आ सकी, उसके पैर जैसे मन-मन भर के हो गए थे और छाती पर कोई

चट्टान जैसे आ गिरी थी। अमिता ने उसी प्रकार लँगड़ाते-लँगड़ाते ड्राइंग रूम के द्वार तक आकर बड़ी उपेक्षा से हाथ जोड़कर कहा, "अच्छा महेशजी, नमस्ते!" सुनने वालों को लगा जैसे किसी ने उनकी पीठ पर पूरे जोर से एक लात जमा दी हो। एक कुढ़न लेकर जब वे बाहर के फाटक तक आये तो महेश की बहन ने सुधेश और दिनेश को संकेत से पास बुलाकर पूछा, "क्या तुम्हारी दीदी सचमुच लँगड़ी है?" एक साथ ही सुधेश ने स्वीकारोक्ति से गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहा और दिनेश ने गर्दन हिलाकर मना किया और वे लोग बाहर निकल गए। अमिता उनके बाहर निकलते ही दरवाजे में से मुड़ी और एक अपमानित युवती की तरह तेजी से दौड़ती हुई अपने कमरे में धम्म् से आकर पड़ गई। माँ बाहर सोफे पर डबडबाए हुए नेत्रों को अपनी रेशमी साड़ी के आँचल से भींच लेना चाह रही थी और बेटी अन्दर पड़ी हुई सुबकियाँ ले रही थी।

: ५ :

उस दिन संध्या को जब कस्तूरी आई तो सुन्दर बाबू से एकान्त में कुछ वार्तालाप करने के लिए वह मन में एक घुटन लिये थी। वह चाहती थी कि सुन्दर बाबू को स्पष्ट ही बता दे कि अब वह कुमार की ओर से अपना ध्यान हटा लें। धृति के विवाह के लिए यदि उन्होंने अब शीघ्र कोई प्रबन्ध नहीं किया तो उसका हृदय कुमार से मिली उपेक्षा का दारुण दुःख न सह पायेगा। खाना बनाते-बनाते भी उसने कई बार चेष्टा की, पर सुन्दर बाबू को ड्राइंग रूम में अकेले न पाया। उनके कुछ मित्र वहाँ जमे हुए थे और एक दौर चल रहा था। सुन्दर बाबू बम्बई की एक विख्यात एडवर-टाईजिंग (विज्ञापन) एजेंसी की दिल्ली शाखा के प्रधान थे। इस पद पर कार्य करते हुए वह 'सुरा के शिष्टाचार' में पूर्णतः फँस चुके थे। अपने कार्य-क्षेत्र के वातावरण में रमने के परिणामस्वरूप उनके जीवन का दृष्टिकोण भी बदल

चुका था। सुरा से उन्हें कोई घृणा न थी, पर घर में कस्तूरी ने उन्हें सुरा-सेवन करते पहले कभी न देखा था। उस दिन देखा, तो एक बार उसका मन भी फट चला। तीव्र उपेक्षा से उसने सोचा, "मुझे क्या पड़ी है, बाप को ही जब बेटी की चिंता नही है, तो मैं कौन होती हूँ?"

पर इतने दिनों के दीर्घ, प्रगाढ़ सामीप्य ने उसके भीतर सिर उठाने वाली मानिनी कस्तूरी को पीछे ढकेल दिया। रात काफी जा चुकी थी। बिश्नोई भोजन कर अपने कमरे में विश्राम के लिए जा चुकी थी। कुमार कलकत्ता आकाशवाणी के कवि-सम्मेलन में गया हुआ था। और कस्तूरी सोच रही थी, "बाबूजी के मित्र भी चले जायँ तो मैं भी खाना खिलाकर छुट्टी लूँ।"

दस बजते-बजते सुन्दर बाबू ने मित्रो को विदा किया। तब कस्तूरी ने ड्राइंग रूम में प्रवेश करते हुए आत्मीयता भरे स्वर में कहा, "खाना पड़ा ठण्डा हो रहा है, आज तो बहुत देर कर दी तुमने!"

"हुँ! ऐसा ही है—"सुन्दर बाबू के स्वर में एक खुमारी थी—"धृति तो सो गई होगी।....."

"हाँ! खाना यहां ले आऊँ क्या?"

"ले आओ, कस्तूरीजी।" लगभग उसी मदहोशी में कहा सुन्दर बाबू ने।

कस्तूरी खाना परोस लाई और मेज पर थाली रख एक संकोच से घिरी वह पास ही खड़ी हो गई। सुन्दर बाबू ने उसकी ओर देखकर कहा, "तुम आराम करो, रामसेवक खिला देगा। बहुत रात जा चुकी है।"

"रामसेवक को मैने आपके दोस्तों के साथ-साथ ही छुट्टी दे दी है।" कस्तूरी के स्वर में अधिकार की ध्वनि थी।

सुन्दर बाबू ने इस समाचार का मन-ही-मन स्वागत किया, क्योंकि वह जानते थे, कस्तूरी को जब-जब कोई गोपनीय वार्ता करनी होती है, तब-तब वह ऐसा ही वातावरण तैयार कर लेती है। सुन्दर बाबू बोले, "तो तुम बैठ जाओ न!"

कस्तूरी ने लगभग वैसा ही आदर-भाव दिखाया जैसा कोई स्वामिभक्त नारी दिखाती है और कहा, "ठीक है! तुम खाना खाओ। मैं मटर की सब्जी गरम करने रख आई थी, ले आती हूँ।"

जब कस्तूरी ने कटोरी उनकी थाली में रखी तो सुन्दर बाबू पूछ बैठे, "तो तुमने कुमार की माँ से बात की?"

"कुमार की माँ से नहीं, कुमार से ही बात की है।···और धृति पर भी उसने अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया है।"

"अच्छा! लड़का काफी फार्वर्ड है।" सुन्दर बाबू के कथन में सराहना का भाव था।

पर कस्तूरी से यह सहन न हुआ। कुढ़कर बोली, "तुम्हारा फार्वर्ड-वार्वर्ड तो मैं जानती नहीं। पर एक बात मैं जान गई हूँ, और वह यह कि तुमने कुमार को यहाँ रखकर ठीक नहीं किया।"

"क्यों?"

"इसलिए कि उसने तुम्हारे कंधे से वन्दूक चलाई है!"

"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा, कस्तूरी?"

"तुम तो बिलकुल भोले ही हो। इतना नहीं समझते कि वह अमिता पर कैसा लट्टू है! और कल-कलां को कोई ऊँच-नीच हो गई तो उमानाथ बाबू आप से क्या कहेंगे?"

सुन्दर बाबू सुनकर हँस पड़े। "कस्तूरी! तुम नहीं जानतीं, कुमार को यहाँ मैं नहीं लाया हूँ। उमा बाबू स्वयं लाए हैं। और फिर अमिता की ओर उसका झुकाव है, तो वह मेरे लिए कोई चिंता की बात नहीं। उमा बाबू को स्वयं उसका खयाल होना चाहिये।"

बीच में ही बात काटकर कस्तूरी बोली, "लेकिन जो इतना कृतघ्न हो सकता है कि जिस घर में खाए, उसमें ही आग लगाए, उससे क्या हमें कोई आशा रखनी चाहिए?"

"तुम्हारा संकेत धृति की ओर है?"

"हाँ, वह धृति से साफ-साफ कह चुका है कि मैं अमिता का हो चुका हूँ।"

"हुंः हुंः हुंः·····" सुन्दर बाबू किंचित् खिलखिलाकर कह उठे—"कस्तूरी, यह बात मैं नहीं मानता। इस उम्र में अगर लड़के-लड़की का आपस मे कुछ झुकाव देखा जाता है, तो इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि उनमें प्रेम हो गया

है। सिर्फ इसीलिए तुम कुमार की माँ से बात न चलाओ, यह समझ में नहीं आता। कस्तूरी, एक बार विवाह हो जाने के बाद सब ठीक-ठाक हो जाता है। आजकल के जमाने में ऐसा हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। जवानी में बहुत से दोस्त मिलते हैं और आगे वैवाहिक जीवन में बस, उनकी एक धुँधली याद ही रह जाती है—" कहते-कहते सुन्दर बाबू ने एक ऐसा ठण्डा निःश्वास छोड़ा जैसे वह अपनी जवानी को एक बार फिर पाकर सुधि भुला बैठे हों। "और तुम नहीं समझतीं कस्तूरी," सुन्दर बाबू ने उसी खोये हुए स्वर में आगे कहा, "पुरुष-स्त्री का परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है। कुछ ऐसी जरूरतें होती हैं, ऐसे अभाव होते हैं दोनों के ही जीवन में, कि उन्हें पूरा करने की जबरदस्त ख्वाहिश होती है। और यदि बिना किसी को हानि पहुँचाये, ऐसी ख्वाहिश पूरी होती हो तो क्या हर्ज है?" कहते हुए उन्होंने कस्तूरी की आँखों में आँखें गढ़ा दो और कस्तूरी की आँखें एक प्रेमिका-सुलभ लाज से नीचे झुक गईं। वह कुछ बोल न सकी। कुमार-अमिता के प्रति उत्पन्न ईर्ष्या के भावों पर जैसे पानी पड़ गया। सुन्दर बाबू आगे कह उठे, "मैं जरूरी नहीं मानता कि कुमार ने जो आज स्वीकार किया है, वही उसका अंतिम निर्णय होगा। तुम्हें धृति को समझाना चाहिए और कुमार की माँ से भी बात करनी चाहिए। मुझे वह बेहद पसन्द है। पढ़ाई ठीक है, यश लाभ भी कर रहा है और बड़ों का आदर करना भी जानता है। He is hundred percent a cultured boy! कस्तूरी, तुम अपना काम जारी रखो। घर आये नागनाथ को पूजने में हमें पीछे नहीं रहना चाहिए। अमिता का चक्कर होगा भी तो वह विवाह के बाद उसे भूल जायगा। मैं अपने आफिस में बढ़िया नौकरी दिलाकर उसे बम्बई भिजवा दूँगा।"

"आफिस" का एक शब्द कानों में पड़ते ही कस्तूरी को स्मरण हो आया, राम-सेवक का वह बयान जो उसने पिछले महीने सुन्दर बाबू के दफ्तर से लौटकर कस्तूरी को सुनाया था। एक रंगीनी के वातावरण में उसने मटककर कस्तूरी से कहा था—"बाबूजी ने आज दफ्तर में एक नयी सकरेटरी रख ली है। देखियो कस्तूरी, मुश्किल से बीस साल की छोरी होगी—एकदम गठी हुई, सुन्दर आँखें, कटीली भौंहें, लाल-लाल ओंठ, बिना बाहों की कुरती पहने है"—कहते-कहते

रामसेवक कस्तूरी के बहुत समीप आ गया था और कस्तूरी ने तब उसके करारा तमाचा जमा दिया था जब कि उसने कस्तूरी के कटि-प्रदेश में अँगुलि घुपोकर गुलगुली करने की बेजा हरकत की थी। रामसेवक ने वह चाँटा सहकर कस्तूरी को एक जोरदार धमकी दी थी और ···· उसे जीत लिया था। कस्तूरी पर सुन्दर बाबू के इस कथन की कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसका मनोभाव ही बदल गया। एक लजीली मुस्कान के साथ वह बोली—"धृति अभी कुछ दिन और न ब्याही जाय, तो आपके कौनसे काम में बाधा आ रही है?"

सुन्दर बाबू यह चोट झेल गए तो कस्तूरी ने आगे कहा, "मैं तो खुद यह चाहती हूँ कि लड़का ठीक है और धृति भी उसे अपने मन में जगह दे चुकी है। ····· मैं कुमार की माँ को भी तैयार कर लूँगी। पर कुमार को अमिता से दूर करने के लिए यह भी जरूरी है कि उसे पहले यहाँ से कहीं और रहने की जगह दिला दी जाय।"

"तुम इसकी चिंता मत करो—" थाली दाँयीं ओर खिसकाते हुए सुन्दर बाबू बोले, "मैं स्वयं ही कुमार से बात करूँगा। कब आयेगा वह कलकत्ता से?"

थाली रसोई में ले जाने के लिए उठाते-उठाते कस्तूरी ने उत्तर दिया, "कल ही तो गया है। एक हफ्ते तक आयगा। हाँ, हाँ···· धृति ने यही कहा था!"

और उसका वाक्य खत्म होते-होते सुन्दर बाबू कह उठे, "तो अब तुम जाओगी?"

द्वार में से ही कस्तूरी ने तनिक ठिठककर कहा, "कहो तो कुछ ठहरकर चली जाऊँ?····"

और तब सुन्दर बाबू की कोठी में पूर्ण नीरवता छा गई। अँधेरे का साम्राज्य आरंभ कार्तिक की भीनी ठण्ड के साथ लॉन से कमरों की ओर फैल चला।

: ६ :

कुमार कलकत्ता जाने वाले कवियों में अकेला ही नहीं था। 'विश्वास' नाम के एक अधेड़ कवि उसके साथ और थे। कुमार प्रायः कवि सम्मेलनों में आमंत्रित होता था, पर इतनी दूर की यात्रा पहली ही थी। घर से वह जिस उलझन भरे मनोवैज्ञानिक वातावरण की छाया से अभिभूत होकर चला था, उसने उसकी वाणी पर ताला डाला हुआ था। द्वितीयतः अधेड़ आयु के छायावादी टाइप विश्वासजी के साथ भी यात्रा सुखद होने की कोई संभावना उसे नजर नहीं आ रही थी। धृति ने जो उसकी बाँह पकड़ लेनी चाही थी, उसे वह झिटक आया था, फिर भी उसके अवचेतन मन में उस घटना का प्रभाव ऐसे ही बना हुआ था जैसे साधारण बूँदा-बाँदी से उत्पन्न कीचड़ बनी रह जाती है। रह-रहकर कस्तूरी के वाक्य याद आ रहे थे, माँ का घर बदल लेने का आग्रह कानों में गूँज रहा था और इस सबके मध्य गहरी वेदना से हृदय को झनझना देने वाली अमिता की याद आ रही थी। उसे दुःख था कि यात्रा से लौटने के पश्चात् परिस्थितियों की कैसी विडम्बना घटी कि दोनों में भेंट न हो पाई। वह भी सोचती होगी कि कुमार घोर स्वार्थी निकला, उसका सब कुछ हर लिया और अब किनारा करके बैठ गया। पर, वह उसे कैसे बताए कि उसकी रग-रग में अमिता का अमिय भरा है। ऐसा भरा है कि वहाँ अब और किसी के लिए स्थान नही रह गया है। उसे लगा कि अमिता उसकी छाती पर सिर टेककर दुलार पाने की उत्कण्ठा में सुध-बुध खोये सिमट गई है।

सामने की बर्थ पर एक युवती कोने में खिड़की के साथ केश बिखेरे बैठी थी। उसने तनिक तिरछी होकर टाँगें फैला रखी थीं और उस ओर टाँगों से भिचा उसका दो-ढाई वर्ष का बालक बैठा था। समीप ही जो गौर वर्ण युवक बैठा था वह, कुमार ने अनुमान लगाया, उसका पति ही होगा। दौड़ती जा रही गाड़ी की हवा के झोंकों से उसकी कुन्तल केश-राशि उड़-उड़ जाती थी। कुमार की दृष्टि उधर ठहर गई और वहाँ धीरे-धीरे अमिता उभर आई। युवक की जगह कुमार स्वयं को देखने लगा और बालक····· हाँ, अमिता-कुमार की गोद में भी एक ऐसा ही सुन्दर, निर्दोष बालक खेलेगा। इंजन की तेज सीटी से कुमार का ध्यान विशृंखलित हो गया। उड़ते हुए पंछी

की परछाई जैसे तेजी से ढल जाती है, उसी प्रकार क्षण के हजारवें हिस्से में अमिता के समर्पण का पल स्मृति-पटल पर आकर ढल गया। तभी विश्वासजी बोल उठे, "कुमारजी! क्या आप पहली बार ही कलकत्ता जा रहे है?"

"जी!" मशीनवत् कुमार बोल पड़ा।

"कहाँ ठहरेंगे?"

"ठहरने का प्रश्न ही नहीं उठता। सुबह पहुँचेंगे, उसी संध्या को कवि-सम्मेलन है और रात को ही 'जनता' से मैं लौट आना चाहता हूँ।"

"वाह, भाई वाह!" बड़प्पन जताते हुए विश्वासजी बोले, "फिर तो तुम बेकार ही जा रहे हो। अरे, मेरे नौजवान दोस्त! मेरे साथ ठहरना। 'लेक' के पास ही हमारे एक डाक्टर मित्र की कोठी है। भाई, उनके यहाँ कवियों का जैसा आदर होता है, वैसा कलकत्ता में कहीं नहीं। मेरा तो कलकत्ता जाने का चौथा अवसर है। भाई, सम्मेलन में भाग लेने वाले कवियों को एक संध्या तो वह खाने पर बुलाते हैं, उससे पहले लेक में नौका-विहार, याने दौड़ का कार्यक्रम रहता है····वास्तव में कुमारजी, उनके घर का हर एक सदस्य रसिक है,कविता के ऐसे प्रेमी मैंने कम ही देखे हैं।" कहते हुए विश्वासजी ऐसे विभोर हो गए जैसे उनके वह मित्र वहाँ सशरीर उंपस्थित हो गए हों और कण्ठे-हार पहनाकर उनसे घर चलने का आग्रह कर रहे हों। विश्वासजी की बात में कोई बाधा न डालते हुए कुमार ने इतना ही कहा, "आप तो सचमुच बड़े भाग्यशाली है। ऐसे सुहृद् मित्र आजकल किसे मिलते हैं?"

"भाई, इससे बढ़कर उनकी सज्जनता का और क्या सबूत हो सकता है कि जब भी कलकत्ते में कोई कवि-सम्मेलन होता है, उसमें वह मुझे अवश्य बुलवाते हैं। और कुमारजी क्या कहूँ, उनकी जो पुत्रवधू है, वह तो ऐसा 'मिक्स' (Mix) करती है कि परायापन मालूम ही नहीं पड़ता। मैं कहता हूँ, यदि अपनी तरफ कोई ऐसा व्यवहार करे तो उसे रूढ़िवादी बदनाम किये बिना न छोड़ें·····"

कुमार की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या उत्तर दे, विश्वासजी की इस उक्ति का, और क्या प्रसंग है इस बात का कवियों के सम्मेलन और

स्वागत से! फिर भी उसने विश्वासजी से कहा, "सचमुच आजकल कवियों के कद्र-दां रह ही कहाँ गए है, वरना दिल्ली वाले सारे सम्मेलन आपके ही सभापतित्व में कराते।····"

विश्वासजी सुनकर प्रसन्न हुए। कहने लगे, "भाई, असलियत तो यह है कि बाहर वालों ने आकर दिल्ली के साहित्यिक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है, और दिल्ली वाले बेचारे दिल्ली में ही परदेशी हो गए हैं।"

कुमार जानता था कि विश्वासजी भी दिल्ली में आगरा से ही आए थे, पर मानते थे वे अपने को दिल्ली वाला ही। उन्हें रुष्ट करना कुमार ने उचित न समझा। "यह आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं। पर देखिये न, प्रतिभा छिपाये थोड़ी छिपती है। कितनी दूर-दूर से आपको बुलावे आते है!"

"अजी बस, कलकत्ते की तो बात ही और है। मुझे तो डाक्टर साहब ने कलकत्ते में ही बसने के लिए कई बार कहा, पर यहाँ मैंने प्रभाकर की छात्राओं के लिए जो स्कूल खोल रखा है, उसे नहीं छोड़ सकता।····हाँ भाई, कुमार···" विश्वासजी धीरे से उसके कान में बोले, "यदि तुम भी लौटकर हमारे स्कूल में पार्ट टाइम काम करो तो क्या हर्ज है? भैया, वेतन तो कम ही मिलेगा, पर कविता के लिए प्रेरणा का ऐसा अजस्र-स्रोत मिल जायगा, जिसके लिए और लोग तरसते हैं····और भाई, तुम चाहो जिससे दोस्ती करो, सिनेमा जाओ, नुमाइश जाओ, खुली छुट्टी है।"

कुमार के चेहरे पर क्रोध से रक्त उभर आया। गंभीर होकर बोला, विश्वासजी, आपने मुझे क्या समझा है? मैं घर-घर रोमांस करता नहीं फिरता। मैंने चरित्र का मूल्य समझा है। आप चाहे जहाँ ठहरें, चाहे जहाँ दावत उड़ाएँ, पर खबरदार जो मुझे साथ घसीटने की चेष्टा की।"

विश्वासजी मानो जमीन पर आ रहे। किसी नवयुवक कवि ने आज तक उनके ऐसे किसी प्रस्ताव को नही ठुकराया था। कुमार की वाणी उन्हे तीर-सी चुभ गई। अपना वास्तविक रूप खोल दिया उन्होंने, "बेटा, नासमझ हो। देखूंगा, कलकत्ते अब दुबारा कैसे आते हो? कवि-सम्मेलनों में केवल अपने कण्ठ के भरोसे ही सफलता नहीं मिलती है, किसी का सहारा भी

लेना होता है, बरखुरदार!"

"ठीक है!" कुमार का आत्मविश्वास बोल उठा, "मुझे आपके सहारे की जरूरत नहीं और न ही प्रेरणा पाने के लिए आपके स्कूल की सीढ़ियाँ चढ़ूँगा।" विश्वासजी की ओर से मुँह फिराकर कुमार ने दूसरी खिड़की की ओर गरदन घुमा दी। सामने बैठी युवती अब कुछ-कुछ ऊँघ रही थी और उसकी बेखबरी में उसका सौन्दर्य और भी खबरदार हो गया था। अमिता की स्मृति हृदय को झकझोरकर उभर आई। फिर सारी यात्रा में विश्वासजी से कोई विशेष वार्तालाप कुमार का न हो सका। विश्वासजी के चेहरे पर अविश्वास की भावना थी। ऐसे पराभूत खिलाड़ी की झेंप उनके चेहरे पर थी जिसने प्रतिद्वन्द्वी पर अपनी दुर्बलता का रहस्य स्वयं ही खोल दिया हो।

लेकिन, कलकत्ता पहुँचने पर कुमार के आश्चर्य का तब कोई ठिकाना नहीं रहा जब विश्वासजी के उन डाक्टर मित्र की पुत्रवधू ने उससे आकाशवाणी-कवि-सम्मेलन के पश्चात् राजधानी के साप्ताहिक 'मित्र' में छपे उसके गीतों का हवाला दे-देकर सहसा जबरदस्त आत्मीयता दिखाई। उस समय कुमार अपनी कविता के जादू पर स्वयं विस्मय-विभोर हो गया। पर, उस औपचारिक वार्ता में भी उसका हृदय इतनी जोर से धड़कने लगा जैसे उसने भरे बाजार में किसी अपरिचित युवती का हाथ अनजाने परिचित समझ कर पकड़ लिया हो। विश्वासजी मात्सर्य से फटी आँखों से जब यह संलाप देख रहे थे तो कुमार ने यह कहकर कि "आप थोड़ा इनसे बात कीजिये, मैं तनिक प्रोफेसर मुकुन्दजी से मिल लूँ, उनके पत्र मेरे पास अक्सर आते हैं—" अपना पिंड छुड़ाया। डाक्टर साहब के यहाँ हुई पार्टी में कुमार न गया। विश्वासजी को वहाँ उसकी निंदा करने का अवसर मिला। पर जिन लोगों के बीच उन्होंने कुमार की निन्दा की, उन्हीं में डाक्टर साहब की पुत्रवधू ने उसका तीव्र विरोध भी किया और कुमार के गीतों की प्रशंसा के पुल बाँध दिए।

पर, कलकत्ते के इस विचित्र वातावरण से कुछ-कुछ बेखबर कुमार उसी रात 'जनता' से लौट पड़ा। मन में कोई प्रसन्नता न थी। अमिता की स्मृति और भी बेचैन कर रही थी। इसका कारण था। अमिता दो-तीन दिन जो कुमार

से भेंट न कर पाई थी, उससे उसके हृदय में एक ऐसी पीड़ा उभर आई थी कि वह अमिता से सहन न हुई और उसने अपने जीवन में सबसे पहला प्रेम-पत्र लिखकर आकाशवाणी, कलकत्ता की मार्फ़त कुमार को डाल दिया था।

गाड़ी में ठीक से स्थान पा लेने के पश्चात् कुमार ने अब यही पत्र खोल लिया था। आकाशवाणी पर जैसे ही उसे यह पत्र मिला था, वह व्यस्तता के बीच उसे खोल नहीं पाया था। दूसरे, उसने सोचा था, कोई ऐसा संदेश इस पत्र में न हो जो उसके भावुक मन को मथ डाले और वह कविता भी ठीक से न सुना सके। पर, पत्र अमिता का होगा, इसकी तो उसे कल्पना भी न हो सकती थी। अमिता के अक्षर पहचानते ही कलेजा 'धक्' से रह गया। उसने पढ़ा·····

"मेरे अभिन्न कुमार!

उस सौभाग्यपूर्ण यात्रा से वापस आकर तुमन ऐसी बेरुखी क्यों अख्त्यार की है? इतनी दूर-दूर जाने का तो समय है, तुम्हारे पास; पर जिसने अपना सर्वस्व तुम्हारे प्रेम के लिए पूर्ण पवित्रता के साथ अर्पण कर दिया है, उससे दो बोल बोलने का भी समय न मिला? दूर से ही दर्शन दिए होते, कुमार! मेरे हृदय की तुम क्या जानो? कभी-कभी लगता है, तुम भी और पुरुषों की तरह निष्ठुर होगे। पर, अपने मन की इस आशंका पर मुझे कभी विश्वास नहीं होता। मेरा कुमार ऐसा नहीं हो सकता। पर, क्या करूँ, तुम ही कहो, एक बार जब हृदय अपने को समर्पण कर देता है, फिर क्या जीवन में उसे देवता का विछोह सहन होता है? मैं जानती हूँ, तुम मेरी वेदना को दूर रहकर भी अनुभव कर लेते होगे, क्योंकि अब तुम शरीर से ही तो दूर हो। ····न जाने क्यों, प्रिय कुमार, आजकल मैं किसी अज्ञात भय से पीली-सी पड़ती जा रही हूँ। एक प्रश्न भीतर से बार-बार उठता है—कहीं कुछ हो गया तो? कहीं कुछ हो गया तो? ····और कुमार, मैं भीतर ही भीतर रोने लगती हूँ। क्या हो गया था तब? सच? तुम मिलते तो बताती और तुम देखते मेरी क्या हालत होती जा रही है। तुम कलकत्ता ज्यादा न ठहरना और जल्दी लौट आना। तुम्हें, हमारे पावन प्रणय-सूत्र की शपथ है, आते ही, मुझे सर्वप्रथम

दर्शन देना।····अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी····और···सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब से स्याम सिधारे····कुमार! मैंने बहुत कुछ लिख डाला। सच मानना, प्रेम-पत्र मैंने पहले कभी नहीं लिखे। कल ही गुनगुनाते हुए कुछ पंक्तियाँ लिखीं हैं, भेज रही हूँ। शुद्ध करके लेते आना।····" और अमिता ने इसके नीचे यह कविता लिखी थी—

प्राण! विरह में व्याकुलता है!
प्राण! मिलन में रस, जीवन है
जो जीवन की सुधि हरता है।
और विरह में विष कैसा जो
तिल-तिल प्राण! हृदय घुलता है।
प्राण! विरह में व्याकुलता है।

पथ के शूल फूल बन जाते,
जब लोचन चारों मुसकाते।
प्राण! मिलन में बल, जय, गौरव;
विरह पराजय दुर्बलता है।
प्राण! विरह में व्याकुलता है।

'जब' जीवन जीवनमय होता,
'तब' निष्प्राण प्राण हो जाते।
'जब' पाते सर्वस्व प्राण, पर
'तब' मानो सब कुछ लुटता है।
प्राण विरह में व्याकुलता है।

निर्भय, औ' निःशंक प्राण! मन
रहता है निश्चिन्त मिलन में।
निमिष निमिष में पर विछोह में
भय-शंका है, आकुलता है।
प्राण! विरह में व्याकुलता है।

प्यारा है संयोग प्रणय में
(प्रलय-काल में भी अभीष्ट है)
किन्तु मिलन-सुख प्रणय-तौल में
विरह वेदना से तुलता हैं।
प्राण विरह में व्याकुलता है।"

कुमार ने पढ़ा, बार-बार पढ़ा। जितना पढ़ता, उतना ही उसके हृदय का बोझ कुछ हल्का-सा होता। नेत्रों मे पानी भर आता, फिर भी एक ठण्डक अनुभव होती और अमिता की स्मृति में डूबा हुआ वह गाड़ी की गति से भी तीव्रतर लौटा आ रहा था। उसके मन में भी कभी-कभी एक बिजली-सी कौंध जाती—"कहीं कुछ हो गया तो? कहीं कुछ हो गया तो?" उसका चेहरा कुम्हला जाता। विचारों की शृंखला टूट जाती। सुन्दर बाबू की कोठी छोड़ने का निश्चय भीतर से पुकार उठता, अमिता के मंगल की प्रार्थनाएँ समवेत-गायन-सी गूँज उठती, माँ की पीड़ा हरने के लिए भीतर का आत्मबल हुँकार उठता और सब की गति का चक्र रेल की गति के चक्र से मिलकर एकाकार हो जाता।

: ७ :

उमानाथ बाबू उस दिन बहुत प्रसन्न थे। वह एक ऐसा मुकदमा जीतकर लौटे थे, जो बहुत पेचीदा था और जिसमें उनका बचाव पक्ष लगभग हार ही रहा था। मामला बलात्कार का था। किसी रेशमी नाम की युवती के साथ जगतू नाम के एक कृषक युवक ने,अपराध किया था और सबूत पक्ष की गवाहियों ने लगभग यह सिद्ध कर दिया था कि सारी ज्यादती जगतू की ही तरफ से हुई। जगतू का पक्ष कमजोर हो गया था। पर मामला उमानाथ की प्रतिष्ठा का था। उन्होंने पन्द्रह वर्ष की अपनी प्रैक्टिस में अब तक कोई मुकदमा न हारा था। रेशमी बार-बार यह कह चुकी थी कि उसने बराबर विरोध किया और जगतू ने उसके साथ

मुरारी के खेत में उस संध्या को जबरदस्ती की। जगतू के बयान से उसकी कमजोरी जाहिर हो चुकी थी। सहसा उमा बाबू को एक नुक्ता सूझ आया। उन्होंने बहस के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में रेशमी से पूरे रौबीले स्वर में एक प्रश्न किया—"मैं पूछता हूँ कि अपराध के समय रेशमी के हाथ कहाँ थे? बोलो रेशमी, तुम्हारे हाथ कहाँ थे?"

"जगतू की कमर पर·····" कहते-कहते रेशमी शर्म से झुक गई।

"माई लार्ड! हियर इज़ दि प्वाइंट! अगर जगतू ने जबरन अपराध किया होता तो रेशमी अपने दोनों हाथों से उसे परे धक्का दे रही होती। इससे साबित है कि अपराध में रेशमी की सहमति थी। माई लार्ड, अब आगे मुझे कुछ नहीं कहना।"

मुकदमा खारिज हो गया। जगतू निर्दोष छूट गया। उमानाथ की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए। कोठी पर उस दिन काफी मिठाई और फल आए थे। इसी विजय के उल्लास से आपूरित जब उमा बाबू घर लौटकर नित्य की भाँति अपने 'स्टडी रूम' में बैठे डाक देख रहे थे तो उन्हें पत्रों के बीच एक निमंत्रण-पत्र दृष्टिगत हुआ। सबसे पहले वह उसे ही उत्सुकतापूर्वक खोल बैठे। एक कवि-सम्मेलन का निमंत्रण था, जो अगले दिन सन्ध्या को "सरदार भवन" में होने वाला था। निमंत्रण पत्र की पीठ पर भाग लेने वाले जिन कवियों के नाम छपे थे, उनमें अमिता का नाम भी था। उमा बाबू की छाती गर्व से फूल गई। पर, कुमार का नाम न देखकर वह कुछ खिन्न हुए। उन्होंने तब अमिता को अपने पास बुला भेजा। महेश की माँ के साथ उसने जो व्यवहार किया था, उससे उमा बाबू यद्यपि बहुत रुष्ट हुए थे और दो-तीन दिन तक उससे बात भी न की थी, तथापि शनैः शनैः उनकी पुत्री राजधानी के कवियों में जो आगे आ रही थी, इसकी उन्हें प्रसन्नता भी थी। 'मित्र' में छपी उसकी कुछ कविताओं की प्रशंसा में जो पत्र आये थे, वे भी उमा बाबू ने देखे थे। अमिता ने अपने बाबूजी की आवाज सुनी तो सहम गई। मन में डर जगा कि कहीं फिर कोई अपराध तो उससे नहीं बन गया।

उमा बाबू के स्वर में यद्यपि स्नेह की लहर थी, फिर भी अमिता उनके पास डरी हुई-सी आ खड़ी हुई। उमा बाबू ने कहा—"इस सम्मेलन में कुमार नहीं

जा रहा?" निमंत्रण-पत्र अमिता की ओर बढ़ा दिया उन्होंने।

"जी! वह कलकत्ता गए हैं।"

"हुँ! तो तुम जा रही हो?"

पूछने का ढंग ऐसा था उनका कि अमिता समझी बाबूजी को यह पसन्द नही है। इसीलिए उसने धीरे से कहा, दबी जबान से—"जी नहीं।"

"क्यों? क्यों?" अमिता का उत्तर अप्रत्याशित था, इसीलिए उमा बाबू को विस्मय हुआ—"तुम्हें जरूर जाना चाहिये। इसमें तो नाम होता है, बिटिया।"

अमिता को थोड़ी हिम्मत हुई। बोली, "बाबूजी! माँ को पसन्द नही है। वह कहती है, यह बेहयाई है।....."

उमा बाबू को अमिता के कहने के ढंग से कुछ हँसी आ गई। कहने लगे, "अरी पगली! वह पुराने ख्यालात की हैं। उन्हें इन बातों का क्या पता! मुझे पता है, तेरे गीतों में क्या दर्द है, कैसे भाव है, कैसी गरिमा है। तू अवश्य ही मेरा नाम भी उज्ज्वल करेगी। जा, जरूर जा! और अपनी बढ़िया-से-बढ़िया कविता सुनाकर आ....."

अमिता भोतर-ही-भीतर बहुत आनन्दित हुई। पर, उसी प्रकार सभीत स्वर में बोली, "पर, बाबूजी, कवि-सम्मेलन देर में समाप्त होगा, रात ज्यादा हो जायगी। किवाड़ खुलवाने में दिक्कत होगी और माँ की नाराजगी के लिए यही काफी होगा।"

"नहीं, नहीं, मैं समझा दूँगा उन्हें। हरिया को किवाड़ खोलने के लिए भी कह जाना। ऐसे सम्मेलनों में जरूर जाना चाहिये।"

"आप भी चलियेगा?"

"मैं? नहीं! मुझे कल एक जरूरी मुकदमा लड़ना है, मुशीजी और मुवक्किल आते ही होंगे। मैं आज क्लब भी नहीं जा रहा।"

अमिता जाने की तैयारी करने लगी। पार्वती तभी महेश की माँ के यहाँ से लौटी थी। वह महेश को पसन्द करने लगी थी और चाहती थी कि अमिता के हाथ जल्दी पीले कर दिए जायँ। उस दिन की घटना के पश्चात् उन्हें मनाना बहुत आवश्यक था और इस सिलसिले में वह उनके यहाँ दो बार जा भी चुकी थी। पर,

उसका चढ़ा हुआ मुँह देखकर कोई भी कह सकता था कि वह निराश लौटी थी। वह जानती थी कि अमिता कहीं कविता पढ़ने जायगी, पर अपनी असहमति वह पहले ही प्रकट कर चुकी थी। अब अमिता को साड़ी बदलते देख उसने वही, अमिता के पास आकर ही पूछा, "क्या तू जा रही है?"

"हाँ! बाबूजी ने कह दिया है।" अमिता के स्वर में माँ की उपेक्षा थी।

"ये तुझे पता नही क्या बनाकर छोड़ेंगे?" एक छटपटाहट हुई पार्वती को कि अभी पति से उलझ पड़े; पर, वह बाहर की गैलरी में बैठे मुवक्किलों से विचार-विनिमय कर रहे थे, इसलिए खीझकर अमिता से ही बोली, "मै कहे देती हूँ, आज जा रही है तो जा, पर आइन्दा कभी गई तो मै तेरी हड्डी-पसली एक कर दूँगी। इन्हे क्या पता कि सियानी बेटी को इस तरह आजादी देने का क्या नतीजा होता है·····कुल का नाम उछालकर ही चैन लेगी तू।"

गरदन मरोड़कर अमिता ने माँ की ओर देखा। बोली कुछ नही। 'हैण्ड बेग' मे उसने मेज पर से कुछ कागज डाले और चल पड़ी। जाते-जाते कह गई—"मै रात को दूध नही पिऊँगी। शायद लौटने में देरी हो जाय।"

पार्वती को लगा जैसे बेटी ने ही उसके कण्ठ में बलात् कटु विष उतार दिया हो। महेश के यहाँ से तो निराश लौटी ही थी, यहाँ बेटी ने मान को ठेस पहुँचाई। छाती पर एक आग-सी सुलग गई और वह खिन्न मन से सुधेश-दिनेश के साथ भोजन करने की तैयारी करने लगी।

अमिता कोठी से बाहर आते-आते स्वयं भी गर्व से फूल गई। पर गर्व के साथ-साथ ही उसकी मुद्रा पर कभी-कभी लाज का भाव भी आकर खेल जाता था; क्योंकि वह एक बड़े कवि-सम्मेलन में भाग लेने पहली बार ही जा रही थी। बार-बार अपने पल्ले को ठीक करती, पीछे घूमकर साड़ी निहारती। एक चोटी पीछे थी और दूसरी भी पीछे न चली जाय, इसका ध्यान रखती। साड़ी के ऊपर उसने श्वेत-शुभ्र कश्मीरी शॉल ओढ़ रखी थी, फिर भी एक चोटी पीछे लहरा रही थी। सड़क पर आते-आते उसने 'हैण्डबेग' में से सुनहरी फ्रेम का चश्मा निकालकर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को अधिक लुभावना बना लिया था। नाना प्रकार की कल्पनाओं में डूबी वह स्कूटर में बैठी 'सरदार-भवन' की ओर चली जा रही थी।

कुमार का अभाव मन के कोश को आवृत्त कर रहा था; फिर भी वह आज जनता के सम्मुख आने की एक विलक्षण प्रसन्नता का भाव मन में सँजोये थी। सोचती जाती थी, "काश! आज मेरे कुमार भी मुझे देखते!" फिर कभी सोचती, "शायद उनके सामने मैं ठीक से नहीं पढ़ पाती।"

इसी ऊहापोह में वह 'सरदार-भवन' आ पहुँची। 'मित्र' के प्रधान संपादक सोहन गुप्ता के सभापतित्व में यह सम्मेलन हो रहा था और उन्होंने ही जब अमिता का मंच के प्रवेश-द्वार पर स्वागत किया तो सभी ने उस ओर ध्यान दिया। अमिता तो बड़प्पन की भावना से भर गई।

"आइए, आप ही की प्रतीक्षा थी।" जैन बोले। यह सुवास जैन थे, सोहन गुप्ता के सहयोगी। स्वयं कवि थे। 'मित्र' की कविता की 'फाइल' इन्हीं के हाथों में रहती थी। जिस दिन कालेज प्रतियोगिता में अमिता-कुमार पुरस्कृत हुए थे, उसी दिन से सोहन गुप्ता और जैन से उनका परिचय बढ़ता गया था, क्योंकि वहाँ निर्णायकों में सोहन गुप्ता ही मुख्य थे। यही नहीं, तब से अमिता 'मित्र' नियमित रूप से पढ़ने लगी थी एवं गुप्ताजी के आदर्शवादी एवं निर्भीक अग्रलेखों से तो वह विशेष रूप से प्रभावित हुई थी। कुमार के साथ ही उसने अपने कुछ गीत 'मित्र' में प्रकाशनार्थ भेजे थे और उन्हें शीघ्र ही प्रकाशित हुआ देखकर तो अमिता के मन में गुप्ताजी के प्रति श्रद्धा का भाव जग गया था। आज वह उनसे दूसरी बार ही मिल रही थी। पर, उसे लगा जैसे जितनी बार उसकी कविताएँ छपी हैं, उतनी ही बार वह उनसे मिल चुकी हो। अतः आज की भेंट में अनायास ही एक गहरी परिचिति का भाव उमड़ आया। जैन ने अमिता की ओर मुस्कराकर देखा और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही आगे बोला, "आज आपको दो गीत सुनाने होंगे।"

मंच की ओर बढ़ते-बढ़ते अमिता ने गुप्ताजी और जैन दोनों की ओर किंचित् घबराहट से देखते हुए कहा, "देखिये, मैं पहली बार ही तो आज मंच पर आ रही हूँ, मुझे किसी उलझन में नहीं डालिये।"

"नहीं, नहीं, उलझन कैसी?" आहिस्ता से सोहन गुप्ता ने कहा— "अवसर पाकर लाभ उठाना ही चाहिये। मैं चाहता हूँ, आज ही आपका सिक्का जम जाय

और दिल्ली का कोई भी भावी कवि-सम्मेलन ऐसा न हो, जिसमें आप न हों !.... मैं आपका नाम तब बोलूँगा, जब समां खूब बँध रहा होगा।"

मंच पर आते-आते सोहन गुप्ता और जैन उपस्थित कवियों से अमिता का परिचय कराने लगे। कुछ लोग अमिता से मिलकर औपचारिक प्रसन्नता प्रकट करते, तो अन्य जैन और गुप्ताजी की ओर ईर्ष्या एवं सन्देह की ऐसी दृष्टि डालते जो किसी-किसी पारखी की ही पकड़ में आ सकती थी।

सम्मेलन जमा और खूब जमा। अमिता ने अपनी पहली कविता ही सचमुच इतनी बढ़िया गाई कि श्रोताओं ने स्वयं दूसरे गीत के लिए शोर मचाया। पर, भोली अमिता को यह ज्ञात न था कि सोहन गुप्ताजी के चुने हुए कुछ 'श्रोता' कुछ चुने हुए कवियों की माँग उत्पन्न करने के लिए वहाँ विराजमान थे। अस्तु, अमिता ने दो गीत गाये। अपने जीवन में पहली बार उसने लोक-ईषणा का नशा पिया। सोहन गुप्ता और जैन ने उस नशे को गहरा बनाने में अपूर्व योग दिया।

सम्मेलन के पश्चात् चाय-पार्टी समाप्त होते-होते साढ़े दस बज चुके थे। हाथ-घड़ी पर दृष्टि गई तो अमिता कुछ घबड़ा-सी गई। वह शीघ्र ही कोई स्कूटर पा जाना चाहती थी। जैन उसके समीप था और सोहन गुप्ता किसी नेता की तरह ही अन्य साहित्य-प्रेमियों से शनैः शनैः विदा लेकर उनके पीछे-पीछे आ रहे थे।

जैन ने कहा, "गुप्ताजी के पास कार है और 'मण्डी हाउस' हम लोगों के रास्ते में ही पड़ेगा, आपको छोड़ते जायेंगे, घबराने की क्या बात है?"

"तब तो ठीक है। पर देरी तो और न होगी?"

"नहीं, देरी का क्या काम?" बेतकल्लुफी थी जैन के कथन में।

समीप पहुँचते हुए सोहन गुप्ता कुछ कह पाते, इससे पहले ही जैन ने विनम्र भाव से कहा, "गुप्ताजी! अमिताजी को छोड़ते चलेंगे! इन्हें जल्दी है।"

"हाँ, हाँ, जरूर!" सोहन गुप्ता ने जैसे इसे अपना सौभाग्य माना— "रास्ते में अधीरजी को भी 'ड्राप' करना है।"

गुप्ताजी ने अधीरजी और अमिता को अपने साथ पीछे बैठाया और जैन आगे ड्राइवर की बगल में बैठ गया। गाड़ी स्टार्ट हुई तो अधीरजी बोले— "आपकी अध्यक्षता में होने वाले सारे सम्मेलन सफल होते हैं।"

"सचमुच आज का कार्यक्रम तो मुझे भी बहुत पसन्द आया।" अमिता ने कहा।

"आपका recitation बड़ा sweet था।" जैन ने आगे ही बैठे-बैठे अमिता को लक्ष्य करके कहा।

"No doubt about it. It was excellent!" तुरंत अनुमोदन किया गुप्ताजी ने।

अधीरजी अपनी प्रशंसा न सुन पाकर खिन्न हुए और तुरंत उन्होंने चोट की, "गुप्ताजी, आप लोग अपने अग्रलेखों में तो हिन्दी की बड़ी हिमायत करते हैं, पर साधारण वार्तालाप में भी आप अंग्रेजी का मोह नहीं छोड़ पाते?"

सोहन गुप्ता किंचित् खीझ भरे स्वर में बोले, "भाई अधीरजी, अग्रलेख जनता के लिए लिखे जाते हैं। फिर हमारी संस्था तो पहले विदेशी 'फर्म' थी, इसलिए अभी तक सारा दफ्तरी काम अंग्रेजी में ही चलता है, हम भी अभ्यस्त हो गए हैं।"

"पर, मेरा कहना तो यह है कि आपको वैसा ही करना भी चाहिये जैसा कि आप लिखते हैं।"

"अधीरजी!" सोहन गुप्ता ऐसे गंभीर होकर बोले जैसे उनके कथन के पीछे अनुभव बहुत हो। "अब वह समय नहीं रहा, जब हिन्दी पत्रकारिता के पीछे मिशनरी भावना थी। आज की एकाधिकार वाली पूँजीवादी व्यवस्था में हिन्दी के पत्रकारों को भी अंग्रेजीवालों के समान ही आगे बढ़ना होगा। एकदम रिजिड--मेरा मतलब कट्टरपंथी होकर चलने से है--हम नहीं हो सकते। यदि हम बाहर आकर थोड़ा शिष्टाचार निभा लें, अंग्रेजी में बोल लें या किसी दूतावास की 'कांकटेल' में एक-दो 'पैग' ले आएँ, तो क्या इसका मतलब आप यह लगायेंगे कि हम अपने आदर्श से गिर गए? सदाचार खो बैठे? रही बात लिखने की, सो सुन लीजिये, हमें आज के अपने मालिकों को प्रसन्न करने के लिए वही लिखना है, जिससे पत्र की माँग बढ़े नहीं, तो गिरे भी नहीं।"

अधीरजी कुछ कड़ुए हो आये, "यों कहिये न, कि आप भी आज घोर स्वार्थी और अवसरवादी बन गए हैं। आपके समक्ष हिन्दी का हित-चिन्तन

लौट चलेंगे। वहीं यह इतने दिनों की घुटन बह सकेगी।"

"तुम बीमार तो नही हुए हो न?" अमिता बोली।

"मेरी बीमारी कुछ-कुछ मानसिक है। और समझ में नहीं आ रहा कि इसका इलाज कैसे करें। सुन्दर बाबू की कोठी तो मुझे छोड़नी ही पड़ेगी।"

"क्यो? अचानक यह कैसे सोच बैठे?" अमिता ने साश्चर्य प्रश्न किया।

"अमिता, कोई काम अचानक नहीं होता और तुम्हें धृति का तो पता ही है। उनके यहाँ एक मिसरानी आती है, कस्तूरी, यह भी मैंने बताया ही था···"

"सो क्या हुआ?" अमिता की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

"अमी, तुम्हें यह जानकर शायद कोई आश्चर्य नही होगा कि कस्तूरी उस घर मे मालकिन जैसी ही रहती है।"

"पर, वह तो मिसरानी होते हुए भी जात की मालिन है।"

"तुम्हे पता नही, पक्षियों में जो स्थान कौवे का है, वही नारियों में मालिन का है। सुन्दर तो है?" कुमार थोड़ा हँसा, "पर तुम्हें यह कैसे मालूम?"

"हरिया ने बताया था।"

"हूँ, तो यह कस्तूरी चाहती है कि धृति को मेरे मत्थे मढ़कर अपना रास्ता एकदम निष्कण्टक कर ले।"

सुनकर अमिता स्तब्ध रह गई, चलते-चलते वह ठिठक गई। कुमार आगे बोला, "यहीं नहा, उसने तो मुझे डरा-धमकाकर धृति को अपना लेने के लिए बड़ी तरकीब से कहा ही; पर, स्वयं सुन्दर बाबू और धृति की ओर से यह प्रस्ताव सुनकर तो मैं उन लोगों के प्रति एक जुगुप्सा से भर गया हूँ, अमी! तुम्ही बताओ मै स्वप्न में भी अब किसी और का कैसे हो सकता हूँ?" कहते हुए कुमार ने अमिता का हाथ अपने हाथ में ले लिया, तनिक दबा दिया। वह कोमल दबाव अमिता को सुखद प्रतीत हुआ।

अमिता कुछ न बोली, वह सब कुछ ध्यान से सुन लेना चाहती थी और उसका मौन लगभग उस सहमे हुए व्यक्ति का-सा मौन था जिसकी झोंपड़ी किसी अग्नि-काण्ड में जलते-जलते बची हो। कुमार कह रहा था, "समझ में नहीं आता कि बड़े लोग शादी-ब्याह की इतनी उतावली क्यों मचाते हैं?"

कुछ आश्वस्त हो अमिता ने चुटकी ली, "तुम्हें क्या अब जैसे उतावली ही नहीं है?" कनखियों से अमिता ने कुमार की ओर देखा।

कुमार उसके भाव को समझकर बोला, "मैं समझता हूँ, शुद्ध प्रेम में प्रेय की प्राप्ति के पश्चात् भी प्रायः उतावली बनी रहती है। प्रियतम से कभी जुदा न होने की उतावली, सदा उसके पास रहने की तड़प, कभी न बुझने वाली तड़प" कुमार के कथन में मादकता आ गई थी और वह उसी लहजे में आगे बोला

"ये परवानों का शमाओं से लिपटना और जल मरना।
मुहब्बत की रविश में भी है यों भी प्यार करते हैं॥"

शेर की आखिरी पंक्ति कहते-कहते उसने नौका की रस्सी खोल दी थी और अमिता को हाथ का सहारा दे उसमें बैठा स्वयं भी बैठ गया था। उसने चप्पू चलाने शुरू कर दिए। कुमार से तब अमिता बोली, "ऊपर चलो, वजीराबाद से ऊपर!" अमिता ने अपनी शाल सँभाली तो वह कान की बाली में उलझ गई। मन्द स्मिति से उसने कुमार को देखा और शाल निकालने लगी। तभी कुमार को एक और शेर याद आया—

"आस्मां से क्या गरज है जमी पर ये चमक।
माहो-अन्जुम से बढ़कर उनके बुन्दे बालियाँ॥"

अमिता उसके बिलकुल समीप वाले तख्ते पर बैठते हुए बोली, "आज तो बड़े 'मूड' में हो।" फिर सहसा घड़ी पर दृष्टि डालते हुए कहने लगी, "आधे घण्टे में लौट आना होगा, नही तो माँ नाराज होगी।"

"अरे वाह! जो घर में पूछे कोई खौफ क्या है, कह देना—
चले गये थे किसी की तरफ।,"

कुमार के साथ ही अमिता भी हँस पड़ी। हँसी जमुना की शांत लहरों में डूब चली तो अमिता ने प्रश्न किया, "तो सुन्दर बाबू की कोठी छोड़ने से पहले बाबूजी को न बताओगे?"

कुमार समझ गया, अमिता का यह प्रश्न इसलिए था कि उस कोठी में वह उमानाथ बाबू ने दिलवाई थी। वह बोला, "क्या यह बहुत जरूरी है? नहीं चाहता कि इसका कोई कारण उन पर प्रकट हो, क्योंकि यदि सारी स्थिति

इसी से उसकी प्रतिभा खत्म होती जा रही है।"

मन-ही-मन अमिता गुप्ताजी और जैन के प्रति कटु हो चली। उनके प्रति श्रद्धा का भाव गलता चला, जैसे हिम-खण्ड ताप पाकर पिघल चला हो। अब भी वह सन्न बैठी थी, केबिन का वातावरण स्तब्ध हो चला। तभी बैरा 'हॉट कॉफी, रख गया और 'डिनर' के लिए गुप्ताजी के समक्ष बड़ी तश्तरियाँ, काँटे, छुरी सजा दिए गए। अमिता को लगा जैसे उसकी दायी जंघा पर गुप्ताजी के सरकने से दबाव बढ़ गया है। पर अब वह कहाँ सरके? किधर सिमटे? इस स्थिति के लिए वह कभी तैयार न थी। जैन ने उसके आगे कॉफी बनाकर रख दी।

"पीजिए!" गुप्ताजी बोले।

"मेरा मन नही कर रहा।" अमिता का कण्ठ गीला हो आया।

"अरे, सा'ब, यह यों नहीं पियेंगी।" जैन अब बिलकुल बदले हुए स्वर में बोला, "गुप्ताजी, इनकी आज की सफलता पर आप ही इन्हें पिलाएँ।"

"ऐसा!" गुप्ताजी ने भी मादकता भरे स्वर में कहा।

अमिता को लगा जैसे बेड़ी कड़ी होती जा रही हो। गुप्ताजी ने दायीं ओर रखे 'शूगर पाट' से एक 'पीस' इस ढंग से उठाया और अमिता के कप में डाला कि उनकी कोहनी अमिता के उरोज से छू गई। अमिता सहम गई, सिमट गई, कदली-सी काँप गई। गुप्ताजी बोले, "आपने शायद शूगर डाली ही नहीं है।"

घबड़ाकर अमिता बोली, "नहीं, नही, आप तकलीफ न करें, मै स्वयं पी लूंगी?" और उसने कप कुछ अपनी ओर सरकाया। तभी बैरा गुप्ताजी के आगे 'सूप' रख गया।

जैन ने कहा, "जल्दी कीजिये गुप्ताजी, अमिताजी को देरी हो रही है।"

"हाँ, हाँ! मुझे खयाल है।" और दूसरे ही क्षण अमिता के चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए वह बोले, "आपको हमारी कसम है, एक घूंट हमारे हाथ से···" कहते-कहते उन्होंने कप उठाकर अमिता के मुँह की ओर बढ़ाया और दूसरा हाथ उसकी गरदन में डाल अपनी ओर झुकाने की कुचेष्टा की। अमिता ने हाथ इतनी जोर से झटक दिया कि प्याला गिर पड़ा। मेज पर चीनी के बरतन खनखना उठे। गुप्ताजी के गरम सूट पर छींटे-छींटे हो गए और बैरा तुरंत उपस्थित हो गया।

जैन ने लीपा-पोती करने की चेष्टा की, "थोड़ा पोंछ दो। हाथ में से प्याला गिर गया है।"

पर बैरा अमिता के चेहरे का आक्रोश पढ़ चुका था। उसके सफेद चेहरे पर दोनों पुरुषों के लिए घृणा के भाव थे। और जैन-गुप्ता के चेहरे पर भी पराजय की निर्लज्जता बिखर गई थी। बैरे के जाते ही अमिता बोली, "मैं तो आपको बड़ा सदाचारी और आदर्शवादी मानती थी। आप···आप···ऐसे हैं? मैं जाती हूँ। मुझे विश्वास है, अँधेरी सड़क पर मुझे आप जैसा कोई निर्भीक आदर्शवादी न मिलेगा।" इस साहस के आगे गुप्ताजी पर घड़ों पानी पड़ गया। झप मिटाने की असफल चेष्टा की उन्होंने, "अमिताजी, आप गलत समझ रही हैं। आप शायद आधुनिक शिष्टाचार से बहुत दूर हैं।"

"और कॉलेज स्टूडेण्ट होते हुए भी?" जैन ने बीच में ही कहा।

"मुझे अफसोस है, संपादकजी, आपका कॉलेज स्टूडेण्ट्स का 'एस्टीमेट' बड़ा 'लो' है। कम-से-कम मुझे तो आप गलत ही समझे। अच्छा, थैंक्स।" कहते-कहते अमिता खड़ी हो गई। गुप्ताजी ने उसकी बाँह खींचकर उसे लगभग गिरा लिया और उत्तेजित होकर बोले, "आप यों हमें छोड़कर नहीं जा सकतीं। जब तक मैं 'डिनर' नहीं कर लूँ, तब तक आप चुप बैठी रहें। वरना आपके लिए ही शोभा की बात न होगी।"

अमिता कैदी-सी बैठी रही। कुछ भी और कर सकने का साहस उसम न जगा। केवल कुमार की स्मृति ने उसके नेत्रों को सजल बना दिया।

कुछ क्षण बाद जैन ने कहा, "गुप्ताजी, बिल्ली को पहले ही दिन मारने की फिलॉसफी आज 'फेल' हो गई।" उसके कथन में जैसा फीकापन था, वैसा ही फीकापन गुप्ताजी के चेहरे पर खेल रहा था और वह ऐसे ही खाना खा रहे थे, जैसे कोई महाब्राह्मण तीव्र रुदन के हाहाकार के बीच खाता रहता है।

रेस्तराँ से बाहर आकर गुप्ताजी ने फिर भी कहा, "विश्वास रखिये, मैं आपको अब भी छोड़ आ सकता हूँ, बिना कोई हानि पहुँचाये।"

"थैंक्यू!" घृणा बरसा दी अमिता ने। जैन और गुप्ताजी श्रीहत से 'कार' की ओर बढ़ गए। तभी सहसा सामने जाते हुए ताँगे को अमिता ने तेजी

से पुकारा, पर उसकी आवाज तेज, होते हुए भी भीतरी रुदन से रुआँसी थी।

गुप्ताजी की कार में भूल से खुले रह गए रेडियो से अत्यन्त मंद स्वर में गीत की ध्वनि आ रही थी, 'साँझ की बेला, पंछी अकेला···तेरी बिन पतवार की नैया···'

: ८ :

कुमार स्नानागार से बाहर आकर अपने कमरे में कपड़े पहनने की तैयारी में था, तब बिश्नोई कमरे में आ गई। कुमार के गीले बाल मस्तक तक बिखरे हुए थे और उसने तौलिया बाँधा हुआ था। माँ को देखकर वह प्रसन्नता से मुस्करा उठा। माँ ने पूछा, "कोई तकलीफ तो नहीं हुई?" लगभग बिश्नोई के साथ-साथ ही कुमार भी बोल पड़ा, "माँ! मैं तुम्हारे लिए कलकत्ते से साड़ी लाया हूँ।" बिश्नोई का प्रश्न इस प्रकार शून्य में विलीन हो गया और कुमार ने बनियान पहनते-पहनते एक ही हाथ से अटैची केस में से खींच कर धोती निकाली। धोती के साथ ही प्लास्टिक के पारदर्शक पैकिंग में बन्द दो गोलियाँ नीचे फर्श पर गिर गईं। माँ ने आगे बढ़ धोती पकड़ते हुए पूछा, "यह दवाई कैसी है?"

"कुछ नहीं", सिटपिटा गया कुमार, "यह सिर दर्द की है, मुझे कलकत्ते में शिकायत हो गई थी और वह गोलियाँ उठाकर उसने जल्दी से अटैची में रख दीं। बात बदलते हुए कहा उसने, "माँ! वहाँ की साड़ियाँ प्रायः छः गज की होती हैं, इसमें से तुम्हारा ब्लाउज भी निकल आयेगा।"

प्रसन्नतावश बिश्नोई उस क्षण बोल न सकी। कुमार अब जाँघिया पहन कर ऊपर पेंट पहनने लगा था। बिश्नोई ने उतावली दिखाते हुए पूछा, "अरे खाना तो तैयार है। पहले खाना खा ले। तूने जाने की तैयारी कर ली?"

"माँ, मुझे यूनिवर्सिटी जल्दी ही पहुँचना है। वरना प्रोफेसर साहब से

भेंट न हो पायेगी।"

"ठहर-ठहर।····" बिश्नोई धोती वहीं पटककर रसोई की ओर जाने लगी, "मैं दो पराँवठे ला देती हूँ, देर क्या लगती है।"

"अच्छा, लाओ। आज गाड़ी पहले ही लेट थी।" पराँवठे और दही खाते-खाते कुमार ने माँ से फिर पूछा, "साड़ी अच्छी है न माँ?"

"ठीक है बेटा! तू मेरा बहुत खयाल रखता है। अपने लिए ही सूट बनवा लेता?"

"हाँ, बनवा लूँगा।" कुमार ने धीरे से फिर कहा, "पीछे तो सब ठीक रहा न?"

"बेटा, अब तो घर में भी शराब आने लगी है?" एकदम कानाफूसी के स्वर में बिश्नोई बोली, "और उधर मिसरानी को न जाने क्या हुआ है, हरदम खुशामद में ही लगी रहती है– धृति के लिए।····" माँ ने कुछ इस ढंग से कहा जैसे वह बेटे के मन की थाह लेना चाहती हो कि उसके मन में कोई चोर हो तो वह स्वयं ही उसे प्रकट कर दे।"

कुमार सावधान हो गया। मुँह का ग्रास लगभग सटकते हुए उसने कहा, "माँ! न जाने बड़े-बूढ़ों की यह क्या आदत होती है, लड़के-लड़की जरा बड़े हुए कि उन्हें उनके विवाह-शादी की पड़ती है। अरे, अभी मेरी उम्र कोई शादी की है? पढ़ाई खत्म कर लूँ, कहीं बढ़िया-सी नौकरी-वौकरी कर लूँ, तब तुम अपने लिए नन्हीं-सी गुड़िया ले आना।" कुमार ने अपनी बात का अन्तिम अंश कुछ इस ढंग से कहा कि माँ को उसके चरित्र पर कोई सन्देह नहीं हुआ। धृति की बात में सच्चाई शायद नहीं हो। कुमार कह रहा था, "फिर माँ, सोचो तो, जिस लड़की का बाप ऐसा हो, उसकी लड़की में कैसे संस्कार भरेंगे?····" कुमार जानता था कि उसकी माँ धार्मिक और शास्त्रीय बातों में बड़ी श्रद्धा रखती है, इसलिए ही उसने यह संस्कारों वाली बात उठाई। यद्यपि बिश्नोई पर इसकी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई, फिर भी वह कहने लगी, "आजकल ये बातें कौन देखता है, बेटा! अच्छे-अच्छे पूजा-पाठी पिताओं के लड़के इस जमाने में ऐबी देखने में आ रहे हैं। यही हाल

लड़कियों का है। घर की इज्जत का खयाल और समाज का डर तो किसी को नहीं रह गया है। सुन्दर बाबू को ही देख लो न। मुझे तो सचमुच तब भीतर-ही-भीतर बड़ी हँसी-सी आती है जब कस्तूरी घर की मुड्ढ बनकर धृति के विवाह का प्रस्ताव रखती है।"

"माँ, छोड़ो इन बातों को····मुझे यूनिवर्सिटी जाने को देरी हो रही है····और मैं कहे देता हूँ माँ", धीरे से कुमार ने माँ के कान में कहा, "मुझ से धृति ने स्वयं प्रस्ताव किया था और मैं उससे कह चुका हूँ कि तुम मेरी छोटी बहन हो।" इतना कहकर कुमार द्वार के निकट रखे 'रैक' से जूते निकालकर पहनने लगा। बिश्नोई खड़ी-की-खड़ी रह गई, क्योंकि कुमार के इस कथन ने उसके मन में धृति की बात को जगा दिया और भीतर से किसी ने पूछा,—'तो क्या कुमार सचमुच अमिता का हो गया है?' माँ से तब रहा न गया, गंभीर वाणी में पूछ बैठी, "तूने धृति से और भी कुछ कहा था क्या?"

कुमार के हाथ जूते का फीता कसते-कसते रुक गए। उसे अपनी गंभीर भूल का भारी धक्का लग चुका था। लगभग हकलाते हुए उसने कहा, "माँ, मैं तुमसे कह चुका हूँ न, आजकल की लड़कियों की बातों पर कोई भरोसा नहीं करता है। मैं तो इस कोठी में आकर जैसे भूल-भुलैयाँ में फँस गया हूँ। सबसे पहले मैं अब मकान देखने का ही काम करूँगा।"

कुमार का उत्तर सुन बिश्नोई आश्वस्त हुई। पर तभी उधर से सुन्दर बाबू आ गये। वह अपने ऑफिस जाने के लिए तैयार थे। कुमार का अन्तिम वाक्य उन्होंने सुन लिया था। कुमार के कंधे पर हाथ रखते हुए वह पूछ बैठे, "कैसी भूल-भुलैयाँ कुमार? किसके लिए मकान देखोगे?" बिश्नोई सिर पर पल्ला खिसकाकर पीछे हट गई और कुमार सुन्दर बाबू के साथ कोठी से बाहर की ओर बढ़ा। स्थिति ऐसी संकटापन्न हो जायगी, इसकी उसे कल्पना भी कैसे हो सकती थी। एक क्षण वह सुन्दर बाबू की बात का उत्तर ढूँढ़ता रह गया। कंधे पर रखा सुन्दर बाबू का हाथ ऐसा लग रहा था जैसे कोई अजगर चिपक गया हो। "कुछ नहीं, माँ कुछ ऐसे ही कह रही थी।"

"यहाँ कोई तकलीफ है तुम्हें?" सुन्दर बाबू के स्वर में स्वजन की-सी

आत्मीयता थी।

"तकलीफ, नहीं! बाबूजी"···· कुछ रुक-रुककर बोला कुमार, "कुछ ऐसी ही बातें हैं कि माँ को अब यहाँ रहना····पसन्द नहीं है। आपकी तो बड़ी कृपा रही है। मैं आपकी भलाई से दबा हूँ····अच्छा शाम को सही, अब तो यूनिवर्सिटी को देर हो रही है।" कुमार ने इतना कह लगभग पीछा छुड़ा लेना चाहा।

पर सुन्दर बाबू बोले, "मै तुम्हें टैक्सी में पहुँचा दूँगा। तुमसे कुछ बातें भी हो जायँगी, मुझे उस तरफ 'इण्डियन स्टैंडर्ड इन्स्टीट्यूट' में कुछ काम है। बाहर पटरी पर आकर वह टैक्सी के लिए रुक गए। दायाँ हाथ अब भी कुमार के कंधे पर रखा था। और कुमार को लग रहा था मानो भाग निकलने के सब रास्ते बन्द हो गए हों। उन्मुक्त उड़ान लेने वाले पक्षी को जैसे किसी ने परकैच कर लिया हो या जैसे किसी समारोह में समय पर पहुँचने की शीघ्रता के वक्त ही 'ट्रैफिक' जाम हो गया हो।

टैक्सी ड्राइवर को यूनिवर्सिटी चलने का आदेश देकर सुन्दर बाबू ने पीठ पीछे टिकाकर टाँगें फैलाते हुए पूछा, "हाँ, कुमार! अब कहो, माँ को क्यों पसन्द नहीं ?"

यह समझकर कि अब पीछा नहीं छूट सकता, कुमार ने मन की ग्रंथि खोल दी, "माँ की ही बात नहीं, बाबूजी, मुझे अब स्वयं को भी छोड़ देने की चिंता है?"

"अरे, यह क्यों?" विस्मय से सुन्दर बाबू के नेत्र फटे रह गए।

"इसके कारणों को जानने की यदि आप कोशिश न ही करें तो अच्छा है।"

सुन्दर बाबू और भी चकित हो गए। कुमार को विश्वास दिलाते हुए बोले, "कुमार! तुम नहीं जानते कि मैंने तुम्हें कोठी में किरायेदार की तरह नहीं रखा है। मेरे निकट तुम सदैव किसी सम्बन्धी की तरह ही रहे हो। मैं तुम्हारे गुणों का कितना प्रशंसक हूँ, यह कस्तूरी से पूछो। क्या तुम मझे इतना भी नहीं बता सकते?"

उनके मुँह से कस्तूरी का नाम सुनकर कुमार मन-ही-मन हँसा, पर उसकी

यह हँसी घृणा का ही दूसरा रूप थी। कुमार उत्तर में कह उठा, "क्या इसका कारण भी आप कस्तूरी से नहीं जान सकेंगे?"

"कुमार!" तनिक गंभीर और कर्कश स्वर में सुन्दर बाबू ने कहा, "तुम आखिर कहना क्या चाहते हो?"

"यही कि मैंने धृति को छोटी बहन करके समझा है, और मैं उसका वह प्रस्ताव कभी स्वीकार कहीं करूँगा जिसके लिए उसे कस्तूरी ने तैयार किया है। जिसके लिए आप मुझे तैयार करना चाहते हैं···" कुमार को कुछ आवेश हो आया।

सुन्दर बाबू ठण्डे पड़ गए। "देखो कुमार! तुम अभी लड़के हो। अपनी ऊँच-नीच नहीं समझ सकते। मैं यह बात जान चुका हूँ कि तुम्हारा झुकाव अमिता की ओर है। पर सोचो तो वह कायस्थ है और तुम ब्राह्मण हो। अभी हमारे समाज में ऐसा नहीं होता है। तुम्हारा उच्च वर्ण है·····"

"बाबूजी" कुमार ने बीच में बात काट दी, "मेरा झुकाव किसी की ओर नहीं है। समझ में नहीं आता कि कैसे आप लोग यह झुकाव-लगाव की कल्पनाएँ कर लेते ह। कैसे एक लड़के-लड़की की मित्रता को दूषित सम्बन्ध के रूप में देख लिया जाता है और कैसे परिणाम पर परिणाम निकाल लिये जाते हैं। क्या जमाना आ गया है। आपस में जहाँ एक युवती-युवक की भेंट हुई, लोगों ने कल्पना कर ली कि कुछ अनुचित घट रहा है, छीः··· ···"

कुमार के इस कथन से सुन्दर बाबू प्रभावित हुए और अत्यन्त विनम्र भाव से बोले, "मैंने माना कि अभी तुम्हारा कहीं कोई लगाव नही है, फिर कहो तुम धृति को स्वीकार करने में क्यों हिचकिचाते हो?"

"बाबूजी, यह मेरी अपनी रुचि का प्रश्न है। मेरे अपने विचारों की परिधि है। मैंने धृति को आज तक कभी प्रेमिका की भावना से नहीं देखा। और अब, जब कि उसने अचानक ही मेरे समक्ष विवाह, प्रेम, देवता की पूजा—ये सब खाके खीच दिए तो मैं उसे बहन कहने में भी संकोच करता हूँ, बाबूजी।" कुमार ने कुछ ऐसी दृढ़ता से कहा, जैसे वह पत्थर पर लकीर खींच रहा हो।

सुन्दर बाबू को इससे चोट लगी। पर, वह कुमार को मनोवैज्ञानिक ढंग से

जीत लेना चाहते थे। कहने लगे, "कुमार, तुम्हारे इसी गुण पर तो मैं जान देता हूँ। तुम हृदय के कैसे शुद्ध हो, तुम अपने हृदय पर कैसा नियंत्रण रख सकते हो, कैसे तुम प्रेम की गली से तटस्थ होकर निकल सकते हो, यह साधारण बातें नही हैं। मैं तुम्हें बता दूं, धृति ने जो कुछ किया है, वह ऐसी स्थिति में, ऐसी आयु में, अस्वाभाविक नहीं। तुम जानते हो," सुन्दर बाबू का स्वर कुछ गीला हो चला, "धृति की माँ इस संसार में नहीं है। छोटी उम्र से ही मैंने उसे बड़ी से बड़ी विपदाएँ झेलकर पाला है। आज उसकी माँ होती तो उसे तुम्हारे सामने कोई प्रस्ताव रखने की जरूरत न होती। मैं भी अब उसे माँ का प्यार नही दे पाता। वह तरुणी है। अपने हृदय की बातें वह क्या मुझसे कहेगी? कुमार, मैं भी यही सोचता रहा हूँ कि तुम्हारी-उसकी जोड़ी ठीक रहेगी और तुम सुखी वैवाहिक जीवन बिता सकोगे।"

कुमार उलझता-सा जा रहा था। "बाबूजी, मै इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय कर चुका हूँ, धृति मेरी बहन की जगह है। आप कोई आग्रह उसे लेकर न करें।" कुमार का कण्ठ भी आर्द्र हो आया। "मै सच कहता हूँ, मैने धृति को लुभाने की कोशिश नही की। कभी नही चाहा कि मै उसके साथ घर बसाऊँ। मैंने अपने को सदा इस सीमा तक नियंत्रण में रखा है कि धृति मुझे भाई के अतिरिक्त कुछ और न समझे। उसकी पीड़ा में मेरी पीड़ा है। मै यह समझने लगा हूँ कि लड़की को युवावस्था प्राप्त होते-होते पुरुष का सहारा-सहयोग या साहचर्य चाहिये ही और ऐसी कन्याओं की, जिनके सिर से माँ का साया उठ गया हो, यह आवश्यकता शीघ्र पूरी होनी ही चाहिए। इसीलिए मैं आपको यह आश्वासन देता हूँ कि धृति के लिए उपयुक्त वर खोजने में मै अब आपका हाथ बटाऊँगा।"

सुन्दर बाबू निरुत्तर रह गए। कुछ समय बाद वह फिर पूछ बैठे, "तो तुम अब भी घर बदलोगे?"

"हाँ, माँ की यही इच्छा है। हमारा रहना अब कस्तूरी को खलता है?"

"मै पूछता हूँ, कस्तूरी मालकिन है क्या? घर तो मेरा है।"

"ठीक है! घर आपका है, इसलिए ही हम वहाँ रहकर आपकी स्वतंत्रता में अब कोई बाधा डालना नही चाहते।"

"तुम आज कैसी बातें कर रहे हो कुमार?"

कुमार ने निर्भीकता से कहा, "वास्तव में, बाबूजी, माँ को आपका रहन-सहन पसन्द नहीं। उसे ऐसा पड़ोस पसन्द नही।"

सुन्दर बाबू पर जैसे बिजली गिर पड़ी। "कुमार, मै यह नहीं मानता। यह तो मेरी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न है, मैं कैसे भी रहूँ, इससे तुम्हारी माँ को क्या, तुम्हें क्या? तुम लोग समझते हो, मै ऐब करता हूँ?" सुन्दर बाबू तनकर बैठ गए, "ठीक है, मैं ऐब करता हूँ तो अपने लिए, नही करता हूँ तो अपने लिए—फिर तुम लोग अभी सोसाइटी में रहे नहीं हो। तुम्हारा दृष्टिकोण संकुचित है, कूप-मण्डूक हो तुम लोग। मैं तो समझता था, चलो विधवा ब्राह्मणी का लड़का है, सुशील भी है, पढ़ा-लिखा भी। शादी करते तो बम्बई शाखा में तुरंत पाँच सौ का लगवा देता, पर अरे—तुम तो मुझ पर हमला करने वाले हो। कुमार, सोसाइटी में 'मूव' करोगे तब अनुभव होगा।"

"बाबू जी, जिस सोसाइटी की बात आप कर रहे हैं, वह आपको ही मुबारक हो। अब केवल इतनी ही कसर और रही है कि बाप-बेटी एक टेबिल पर बैठकर पैग पिएँ।"

"कुमार!" क्रोधावेश में सुन्दर बाबू चिल्लाए।

"मेरी बात बहुत कड़वी थी। क्षमा करें, सुन्दर बाबू।···· मेरा इरादा आपकी भावनाओं को ठेस पहुँचाने का कतई न था।"

"बेवकूफ! समझता नहीं, मैं तेरे बाप की उम्र का हूँ!" सुन्दर बाबू पर गहरी खीझ सवार थी।

कुमार के लिए अब बैठे रहना कठिन हो गया। और वह बोला, "मुझे आप यहीं उतार दीजिए। लायब्रेरी आ गई है। मुझे यहीं काम है। गुस्ताखी के लिए फिर क्षमा चाहता हूँ।" ड्राइवर ने जैसे बात सुन ली थी, तत्काल गाड़ी रोक दी। सुन्दर बाबू कुमार की ओर घूरकर देखते रहे और उसके उतरते ही बड़े वेग से टैक्सी का दरवाजा बन्द कर लिया उन्होंने और बोले "आगे चलो, इन्स्टीट्यूट तक।"

कुमार को लगा जैसे उसने बीच रास्ते में पड़े एक सड़े हुए सेव को पैर की ठोकर मारकर दूर किनारे की ढाल पर लुढ़का दिया हो। विश्वास से जमे हुए

पैर बढ़ाते-बढ़ाते वह लाइब्रेरी की ओर चल दिया—जहाँ, वह जानता था, अमिता उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी।

लायब्रेरी के विशाल, किन्तु शान्त हॉल में अमिता को खोज लेना कठिन न था। अमिता कोने की एक कुर्सी पर बैठी दत्तचित्त कुछ पढ़ रही थी। कुमार ने देखा कभी-कभी वह भयभीत मृगी की भाँति गरदन उठाकर इधर-उधर देख लेती थी। पर पीछे की ओर से आते उसने कुमार को न देखा था। देखा तब जब कि उसने पीछे से आकर धीरे से कंधे पर हाथ रखा। चौंककर अमिता ने देखा तो कुमार खड़ा था। उस क्षण नेत्र समर्पण की भाषा बोलते हुए नेत्रों से जा मिले। मुँह से बोल न निकला अमिता के। आत्म-विभोर-सी हो गई। प्रेम की विह्वलता ने नयनों को सजल बना दिया। हृदय का स्पन्दन जैसे तीव्र हो आया। एक अलौकिक स्मिति अधरों पर खेल गई और कपोल गुलाबी-से हो उठे। कुमार ने आहिस्ता से पूछा, "क्या पढ़ रही हो?" अमिता अब भी बोली कुछ नहीं। जो पढ़ रही थी, उसके साथ-साथ उसके हाशिये में खड़ी लकीर खींचकर कुमार को पढ़ने का संकेत किया। कश्मीर के कवि अमीन 'कामिल' की शायरी के कुछ अंश थे। कुमार ने पढ़ा—

"तोतह बूजुम बनान ओस हारे
आश नय रोज़ि दूर्यर मारे।
वाति मंज़लिस युसुय पान कारे,
लोलह-गुल तस फोलन पोशिवारे॥

मैंने सुना—तोता मैना से कह रहा था—आशा नहीं रहेगी तो प्रियतमा का विरह मार डालेगा। हाँ, अपने प्यार की मंजिल तक वही पहुँचेगा जो प्रेम-परीक्षा में अपनी आहुति देगा। उसी की बगिया में प्यार के फूल खिलेंगे।"

पढ़कर अर्द्धनिमीलित नयनों से कुमार ने अमिता की आँखों में झाँका। तभी अमिता ने सामने के पृष्ठ पर फिर एक खड़ी लकीर मार दी। कुमार ने पढ़ा—

ह्योतुन प्रज़लुन यि लोलुक नार,
यि नोव यावुन यि नोव लोकचार।
ड्यकस नोव नूर, दिलस नोव नार,
अछिन मंज़ छुम नोवुय खुमार॥

प्रेम की नयी आग चमकने लगी और इसी के साथ नया यौवन और नयी जवानी पनपने लगी। मेरे माथे पर नयी आभा और हृदय में नयी आग सुलग उठी है। मेरी आँखों में नयी मदिरा का नया खुमार टपकने लगा है।"[१]

पढ़कर कुमार ने अँगुलि से पुस्तक बन्द कर दी। उसी प्रकार फिर अमिता की आँखों में झाँका और उसने आती हुई अँगड़ाई को रोका। कहा, "आओ चलें।"

अमिता का शरीर भी जैसे टूटने लगा और पुस्तकें सिमेटकर वह उठ गई। कुमार ने उसके कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से कहा, "तुम बस स्टैण्ड पर चलो, मैं तनिक डाक्टर साहब से दो बातें करके आता हूँ।" अमिता को कुमार के इतने समीप आने पर रोमांच हो आया था। वह मंथर गति से लायब्रेरी से बाहर निकल गई। कुमार सामने वाले जीने से 'हिन्दी विभाग' की ओर बढ़ गया।

जब तक कुमार बस स्टैण्ड तक आया, पाँच-छः बसें जा चुकी थीं। और वहाँ खड़े-खड़े लगभग सभी छात्र-छात्राएँ अपने निर्दिष्ट स्थान के लिए जा चुके थे। अमिता अकेली खड़ी रह गई थी। प्रतीक्षा की ये चन्द घड़ियाँ भी हृदय में रसभरी पीड़ा को घनीभूत कर रही थीं। और कुमार जब आया तो उसके साथ डाक्टर महीपाल भी थे। सामने ही केवलरी लेन की ओर उनका बँगला था। वह पैदल ही लौट रहे थे। अमिता ने उन्हें समीप आते देखा तो उदास हो गई। मन में एक भाव आया—'आज इतने दिनों बाद तो यह मिले हैं और फिर भी इन्हें अकेला पाने की फुर्सत नहीं।'

डा० महीपाल ने निकट आते ही प्रश्न किया, "अब तक तुम्हें बस नहीं मिली?"

"जी, मेरे आते-आते निकल गई। मैं आज लायब्रेरी में रुक गई थी। कश्मीर के कवियों पर कुछ लिखना चाहती हूँ, रेफरेंस ढूंढ़ रही थी।"

डा० महीपाल अमिता की प्रतिभा से भली-भाँति परिचित थे। प्रोत्साहन देते हुए बोले, "परीक्षा समाप्त कर इसी विषय पर शोध निबन्ध लिख डालना, अच्छा विषय है।"

कुमार ने भी बस स्टैण्ड पर रुकने का भाव दिखाया, तब डाक्टर महीपाल सड़क पार कर केवलरी लेन की ओर बढ़ गए। अमिता ने तब कुमार से कहा,

१. कश्मीरी कवि गुलाम नबी 'फिराक' की कविता का अंश।

"चलो थोड़ा पैदल ही चलें, अगले स्टॉप से बस ले लेंगे।"

"थक तो नहीं जाओगी? चलना किधर है?"

"जिधर चाहो। मैं आज तुम से बहुत बातें करना चाहती हूँ। तुम मेरे प्रति इतनी निठुराई दिखाओगे, ऐसा मैंने नहीं सोचा था।"

अमिता-कुमार बाँवटे की ओर लगभग एकान्त सड़क पर बढ़ गए। कुमार ने पूछा, "अमिता, क्या मेरा जीवन तुम्हें सफाई देते ही बीतेगा? तुम्हें पता नहीं कि मैं कितनी मजबूरियों से बँधा हूँ।"

"और इन मजबूरियों में से एक मजबूरी है अमिता?"

"अमी! आखिर इतनी नाराजी क्यों है? क्या तुम मेरी कठिनाई नहीं पहचानती? कवि-सम्मेलनों की आय से ही आजकल गुजर-बसर हो रही है तुम तो जानती ही हो। न जाऊँ तो कैसे हो?"

"मैंने कब मना किया है? पर, सामने रहते हुए और यूनिवर्सिटी आते हुए भी तुम मुझसे एक क्षण संलाप का समय भी नहीं निकाल सके।"

"अमी! मैं सचमुच निर्मोही नहीं हूँ, तुम्हारे लिए मेरे हृदय में कोई निठुराई नहीं है। मेरा विश्वास करो। मैं अजीब उलझनों में घिर गया हूँ। मैं अब तुम्हें सब बता दूँगा। अमी! मुझे क्षमा करो।"

"कुमार, तुम यह नहीं जानते कि असल में तो उलझनों में मैं फँस गई हूँ। और शायद इसलिए फँस गई हूँ कि मैंने तुम्हारा विश्वास पा लिया है, तुम्हारे विश्वास ने मुझे जीत लिया है।"

"यह तुम मेरे मुँह की बात कह रही हो, अमी! यह मेरा ही सौभाग्य है कि मुझे तुमने अपने पावन प्रणय-सूत्र से सदा-सदा के लिए बाँध लिया है, अमी! अमी, मैंने इस बीच जो कुछ सहा है उसकी पीड़ा आज मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर धो लेना चाहता हूँ।"

सुनकर अमिता का हृदय धक् कर उठा। "कैसी पीड़ा कुमार? तुम्हें किससे कष्ट पहुँचा है?" अमिता के कथन में उस भारतीय नारी की व्यग्रता थी, व्यथा थी जो अपने पति के कष्ट के आगे अपना दुःख भूल जाती है।

"अमी! चलो····जमुना चलें। अभी चार बजे हैं, पाँच तक बोटिंग कर

लौट चलेंगे। वहीं यह इतने दिनों की घुटन बह सकेगी।"

"तुम बीमार तो नही हुए हो न?" अमिता बोली।

"मेरी बीमारी कुछ-कुछ मानसिक है। और समझ में नहीं आ रहा कि इसका इलाज कैसे करें। सुन्दर बाबू की कोठी तो मुझे छोड़नी ही पड़ेगी।"

"क्यो? अचानक यह कैसे सोच बैठे?" अमिता ने साश्चर्य प्रश्न किया।

"अमिता, कोई काम अचानक नहीं होता और तुम्हें धृति का तो पता ही है। उनके यहाँ एक मिसरानी आती है, कस्तूरी, यह भी मैंने बताया ही था···"

"सो क्या हुआ?" अमिता की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

"अमी, तुम्हें यह जानकर शायद कोई आश्चर्य नहीं होगा कि कस्तूरी उस घर मे मालकिन जैसी ही रहती है।"

"पर, वह तो मिसरानी होते हुए भी जात की मालिन है।"

"तुम्हें पता नही, पक्षियों में जो स्थान कौवे का है, वही नारियों में मालिन का है। सुन्दर तो है?" कुमार थोड़ा हँसा, "पर तुम्हें यह कैसे मालूम?"

"हरिया ने बताया था।"

"हूँ, तो यह कस्तूरी चाहती है कि धृति को मेरे मत्थे मढ़कर अपना रास्ता एकदम निष्कण्टक कर ले।"

सुनकर अमिता स्तब्ध रह गई, चलते-चलते वह ठिठक गई। कुमार आगे बोला, "यहीं नहा, उसने तो मुझे डरा-धमकाकर धृति को अपना लेने के लिए बड़ी तरकीब से कहा ही; पर, स्वयं सुन्दर बाबू और धृति की ओर से यह प्रस्ताव सुनकर तो मैं उन लोगों के प्रति एक जुगुप्सा से भर गया हूँ, अमी! तुम्ही बताओ मैं स्वप्न में भी अब किसी और का कैसे हो सकता हूँ?" कहते हुए कुमार ने अमिता का हाथ अपने हाथ में ले लिया, तनिक दबा दिया। वह कोमल दबाव अमिता को सुखद प्रतीत हुआ।

अमिता कुछ न बोली, वह सब कुछ ध्यान से सुन लेना चाहती थी और उसका मौन लगभग उस सहमे हुए व्यक्ति का-सा मौन था जिसकी झोंपड़ी किसी अग्नि-काण्ड में जलते-जलते बची हो। कुमार कह रहा था, "समझ में नहीं आता कि बड़े लोग शादी-ब्याह की इतनी उतावली क्यों मचाते हैं?"

कुछ आश्वस्त हो अमिता ने चुटकी ली, "तुम्हें क्या अब जैसे उतावली ही नही है?" कनखियों से अमिता ने कुमार की ओर देखा।

कुमार उसके भाव को समझकर बोला, "मैं समझता हूँ, शुद्ध प्रेम में प्रेय की प्राप्ति के पश्चात् भी प्रायः उतावली बनी रहती है। प्रियतम से कभी जुदा न होने की उतावली, सदा उसके पास रहने की तड़प, कभी न बुझने वाली तड़प" कुमार के कथन में मादकता आ गई थी और वह उसी लहजे में आगे बोला

"ये परवानों का शमाओं से लिपटना और जल मरना।
मुहब्बत की रविश में भी हैं यों भी प्यार करते हैं।।"

शेर की आखिरी पंक्ति कहते-कहते उसने नौका की रस्सी खोल दी थी और अमिता को हाथ का सहारा दे उसमें बैठा स्वयं भी बैठ गया था। उसने चप्पू चलाने शुरू कर दिए। कुमार से तब अमिता बोली, "ऊपर चलो, वजीरावाद से ऊपर!" अमिता ने अपनी शाल सँभाली तो वह कान की बाली में उलझ गई। मन्द स्मिति से उसने कुमार को देखा और शाल निकालने लगी। तभी कुमार को एक और शेर याद आया—

"आस्मां से क्या गरज है जमी पर ये चमक।
माहो-अन्जुम से बढ़कर उनके बुन्दे बालियाँ।।"

अमिता उसके बिलकुल समीप वाले तख्ते पर बैठते हुए बोली, "आज तो बड़े 'मूड' में हो।" फिर सहसा घड़ी पर दृष्टि डालते हुए कहने लगी, "आधे घण्टे में लौट आना होगा, नही तो माँ नाराज होगी।"

"अरे वाह! जो घर में पूछे कोई खौफ क्या है, कह देना—
चले गये थे किसी की तरफ।,"

कुमार के साथ ही अमिता भी हँस पड़ी। हँसी जमुना की शांत लहरों में डूब चली तो अमिता ने प्रश्न किया, "तो सुन्दर बाबू की कोठी छोड़ने से पहले बाबूजी को न बताओगे?"

कुमार समझ गया, अमिता का यह प्रश्न इसलिए था कि उस कोठी में वह उमानाथ बाबू ने दिलवाई थी। वह बोला, "क्या यह बहुत जरूरी है? वही चाहता कि इसका कोई कारण उन पर प्रकट हो, क्योकि यदि सारी स्थिति

उनके सामने आ गई तो वह भी संभवतः इसी बात की राय देंगे कि धृति से विवाह कर लिया जाय।"

"तुम भी कभी-कभी बहुत भोले बनते हो। अरे, कह देना, मुझे यूनिवर्सिटी की ओर एक अच्छा क्वार्टर शेयर करने को मिल रहा है और फिर यदि न भी बनाओ तो फिर क्या हर्ज। मैं ही एक दिन उन्हें मौका देखकर कह दूँगी, कहते-कहते अमिता की मुखाकृति पर एक अज्ञात भाव की रेखा खिंच गई और वह कहने लगी, "कुमार, न जाने क्यों, बाबूजी के सामने जाते हुए कुछ भय-सा लगता है।" अमिता ऐसे गंभीर स्वर में बोली कि कुमार भी गंभीर हो गया। आश्चर्य भाव से उसने जान लेना चाहा कि कारण क्या है? "क्यों? ऐसा क्यों अमिता?"

अमिता की वाणी और भी कुण्ठित-सी हो गई। गरदन झुकाकर बोली' "जब से नीलकण्ठ से लौटी हूँ···मुझे···वह···नहीं हुआ है।"

"समझा! यह तो मैं तुम्हारे पत्र से ही समझ गया था और मैं इसके लिए कलकत्ता से गोली लेता आया हूँ। घबड़ाने की कोई बात नहीं, अमी! हमारी भावनाएँ दूषितन हीं हैं। यह गरम चाय से ले लेना।" गोली उसने अपने चेस्टर की भीतरी जेब से निकालकर गोलियाँ दे दी, चप्पू तब दायीं टाँग से दबा लिया तनिक और गोलियाँ उसकी ओर बढ़ाते हुए वह हँसा, "सुबह तो गजब ही हो गया था। माँ की साड़ी निकालते समय अटैची में से गिर पड़ीं। वह तो मैंने सिर दर्द की बताकर बात इधर-उधर कर दी अमी।"

अमिता ने गोलियाँ लेकर अपने हैण्ड बैग में रखीं तो उसकी मुखाकृति पर किंचित् खिंची भय की रेखा गहरी कालिमा में बदल गई और वह सहसा कुमार के घोंटों में सिर पटककर फफक-फफककर रो पड़ी। भर्राये हुए कण्ठ से उसने केवल एक ही बार कहा, "मैं बहुत डर गई हूँ, कुमार! कहीं कुछ हो गया तो क्या होगा?"

कुमार स्वयं डर गया। उसके हाथ में चप्पू काँपने लगा। वह घबड़ाकर बोला, "अमिता, यहाँ बैलेन्स ठीक रखना है। पानी गहरा है। देखो, धैर्य से ही सारी कठिनाइयाँ सरल होती हैं। इसमें डरने की कोई बात नहीं है। मैं चाहता हूँ··· मैं···चाहता हूँ कि मैं···उमा बाबू से सब साफ-साफ कह दूँ·····"

"कुमार, नहीं!" अमिता ने और भी तेज सुबकी भरी, "परमात्मा के नाम पर ऐसा न करना। मैं कहीं की न रहूँगी। माँ मुझे जीता न छोड़ेगी। अभी किसी से कुछ न कहना। इन गोलियों से कुछ न हुआ तो मैं एक दिन यहीं आकर प्राण दे दूँगी।"

"अमी!" कुमार का हृदय भी अमिता की वेदना से फूट पड़ा, "ऐसा मैं कभी न करने दूँगा। ऐसा न करने दूँगा। हमने कोई पाप नहीं किया है। मैं इतना गिरा हुआ नहीं हूँ कि उमा बाबू के सामने अपनी भूल स्वीकार न कर सकूँ और उमा बाबू भी इतने छोटे हृदय के नहीं हैं कि हमें क्षमा-दान न दे सकें!"

"पर कुमार, तुम नहीं जानते, नहीं जान सकते कि तुम्हारी स्वीकारोक्ति मेरे लिए गरल समान होगी···" और एक अत्यन्त पछतावे के स्वर में अमिता बोली, "फिर भी मैं यह कैसे मान लूँ कि भूल केवल तुम्हारी ही थी।"

"अमी, भावावेश में बहोगी तो बिना माँझी और चप्पू की किश्ती की तरह कहीं भँवर में फँसकर डूब जाओगी। मेरा कहा मानो, जाकर यह गोलियाँ चाय में लेना, सब ठीक हो जायगा। अभी समय अधिक नहीं बीता है।" कहते-कहते कुमार नौका को तट की ओर खेने लगा। अमिता के मुक्ता-से आँसू अब भी रुक-रुककर ढर रहे थे। "यदि तुमने हिम्मत हारी तो मैं भी कहीं का न रहूँगा, अमी! सच मानो, मैं तुम पर तनिक-सा भी लांछन न आने दूँगा, किसी को कुछ भी पता न लगने दूँगा और उमानाथ बाबू को सिविल मैरिज के लिए तैयार कर लूँगा···पर अमी, ईश्वर के लिए तुम मेरा साथ न छोड़ना, मेरा साथ न छोड़ना।"

कुमार की वाणी भी गीली थी।

अमिता ने भरे हुए गले से कहा, "कुमार! हमें अब कोई अलग नहीं कर सकता। नारी अपना हृदय एक बार ही देती है, और हृदय दस-बीस नहीं होते—ऊधो, मन नाहीं दस-बीस।"

"अमी!" कुमार ने भावावेश में उसे हृदय से लगा लिया।

"तुम्हें पाने के लिए अब मुझे कोई लांछन भी ओढ़ना पड़ेगा तो ओढ़ूँगी, कुमार!···पर तुम्हें···नहीं छोड़ सकूँगी। जन्म-जन्म तक मैं तुम्हारी हूँ, तुम मेरे हो।"

"अमी!" भावावेश में फिर कहा कुमार ने।

नौका तट पर आ गई थी। एक ज्वार था अमिता के मन में वह फूट चुका था, एक भय था अमिता के मन मे वह प्रायः निकल चुका था, और एक प्यास थी अमिता के मन मे जो बुझी नही थी और भी बढ़ गई थी।

बस स्टैण्ड की ओर बढ़ते-बढ़ते अमिता बोली, "क्रिसमस की छुट्टियों से कुछ पहले बाबूजी बम्बई जायेंगे!"

"अच्छा? कौन-कौन जायगा? क्या कोई 'केस' है?"

"हाँ, शायद इण्टर-स्टेट टैक्स का मामला है। पार्टी जल्दी बुला रही है कि बम्बई की सैर भी वकील साहब कर ले। संभव है, माँ न जाये, क्योंकि मामाजी का यहाँ आने का कार्यक्रम हो सकता है। पर, बाबूजी तो मुझे ले जाना चाहते है। दिनेश, सुधेश भी जायेंगे। मैंने भी बम्बई देखी नही है।"

"और यह भी सभव है कि अगले सप्ताह आकाशवाणी कवि-सम्मेलन में मुझे भी बम्बई जाना पड़े। आज ही निमत्रण मिला है।"

"सच कुमार! जरूर चलो, बड़ा मजा रहेगा।"

"मै तो एक बार पहले जा चुका हूँ, अमी। पर अब कवि-सम्मेलनों से कुछ तबियत खट्टी हो चली है।"

"क्यो?"

"बताऊँगा!" बस आ गई और सौभाग्य से दोनों को एक ही सीट मिल गई। तब कुमार ने कलकत्ता के अपने अनुभव सुनाए और अमिता डाक्टर साहब की पुत्रवधू एव विश्वासजी का वृत्तान्त सुनकर व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसती रही। लेकिन इसी प्रसंग में जब अमिता ने कुमार को अपने अनुभव सुनाए तो कुमार की आँखो में खून उतर आया। "अच्छा, ये हरकत की गुप्ताजी ने?"

"और यह देखो, यह कविता मैंने नही भेजी थी, जो मेरे नाम से छपी है।" कहकर अमिता ने 'मित्र' का नवीनतम अक कुमार के सामने रख दिया।

"अरे यह तो वह कविता है जो सुवास जैन ने मेरे कॉलेज में सुनाई थी।"

"कुमार, सच कहती हूँ, उस दिन मैंने तनिक हिम्मत से काम न लिया होता, तो न जाने क्या होता?"

"अजीब समय है, अमी! आजकल जो जितना शिष्ट, सदाचारी दिखाई देता है, उसके पीछे उतनी ही अधिक गंदगी रहती है। कैसा होता जा रहा है अपना समाज। जो पवित्रता से अपना सम्बन्ध जोडना चाहते है, उन्हें लांछित किया जाता है, और जो परदे की ओट में किसी को अपना बनाकर अपने का ही गला काटते है, खून चूसते है, या गड्ढे में गिराते है, उन्हें सम्मान पाने में कोई कठिनाइयाँ नहीं होती। उनका दर्जा ऊँचा है। ओफ! कैसे आदर्शवादी अग्रलेख लिखते है! यही सब देखकर तो लगता है, अमी, कि कविता लिखना ही छोड़ दिया जाय। पर, रोटी का प्रश्न है। इसलिए कभी-कभी गुप्ताजी को चाय भी पिलायी है मैंने। पर अब प्रण करता हूँ कि उनके पत्र में कभी न लिखूँगा। उनकी अध्यक्षता में होने वाले किसी सम्मेलन में न जाऊँगा।"

अमिता-कुमार निर्दिष्ट बस स्टाप पर उतर गए और दोनों अपनी-अपनी कोठी में जाने के लिए विदाई के उस क्षण आँखो-ही-आँखो में एक-दूसरे से कुछ कहते हुए खड़े रह गए। दूर से ही उमा बाबू की कार आती दृष्टिगत हुई, तब अमिता अपने देवता को मन-ही-मन में प्रणाम कर कोठी में चली गई। उनके साथ दिनेश-सुधेश भी थे। अमिता उन्हें देखकर मुस्कराई। उमा बाबू के हाथ में एक पैकिट था। उसी ओर इगित कर वह बोले, "तेरे लिए नाइलौन की साड़ी लाया हूँ, बिटिया।"

"और हमारे लिए 'स्लैक्स' का कपड़ा!" दिनेश-सुधेश लगभग साथ ही साथ बोल पड़े। "चार दिन बाद हम बम्बई जो जायेगे।" एक टाँग पर फुदकते हुए सुधेश ने बहन का वह हाथ जा पकड़ा जिसमें हैण्डबेग था।

ड्राइंग रूम में आते-आते उमा बाबू सोफे पर बैठते हुए बोले, "आ, देख; अपनी माँ को भी बुला।"

"अभी आई बाबूजी, जरा 'बुक्स' रख आऊँ।" प्रसन्न भाव से कहकर अमिता अपने कमरे में घुस गई।

"हरिया! चाय लाओ!" उमा बाबू ने पुकारा।

अमिता मेज पर हैण्डबेग और पुस्तकें पटक 'बाथरूम' में हाथ-मुँह धोने चली गई। लौटी तो कमरे में प्रवेश करते ही स्तब्ध रह गई। सुधेश-दिनेश वह गोलियाँ निकाल चुके थे और दाँतों से किट-किट कर उन्हें थूक रहे थे। अमिता को

देखते ही दोनो रुष्ट स्वर मे चिल्लाए, "आज कैसी कड़वी टॉफी लाई हो? थू, मै बाबूजी से कहूँगा।"

अमिता सहसा क्रोधित हो गई और दोनों के एक-एक करारा चपत रख दिया। "तुमसे कहा किसने था हैण्डबेग टटोलने को। ····लो टॉफी", अमिता ने ब्लाउज की निचली जेब से टॉफी निकालकर उनके आगे पटक दीं। "मरे सिर दर्द की गोलियाँ खा गए! मै क्या खाऊँगी?···· मेरे सिर में दर्द है!"

सुधेश-दिनेश के रोया-राट से उमा बाबू तक यह बात पहुँच गई कि बेटी के सिर में दर्द है और उसकी गोलियाँ टॉफी समझकर सुधेश-दिनेश ने नष्ट कर दीं। उमा बाबू को इस साधारण-सी बात पर उत्तेजित होकर भाइयों को मारना अच्छा न लगा। उन्होंने तुरंत हरिया को भेजकर 'एनेसिन' का एक पैकेट मँगा दिया और अमिता को चाय के साथ वही गोलियाँ खानी पड़ीं। वह कैसे कहे कि उसके सिर में दर्द नहीं है! वह कैसे कहे कि उसके भीतर डर का एक श्यामल बादल घिरता जा रहा है! वह कैसे कहे कि गोलियाँ सिर दर्द की नहीं थी·····!

वह साड़ी देखने में कोई रुचि न ले सकी। चाय भी बेमन होकर पी गई। उसे उदास देखकर आखिर पार्वती कह उठी—"सिर में दर्द का क्या कसूर? सुबह मे अदां में निकल जानी है बिना जरसी पहने।"

उमा बाबू ने कहा, "बिटिया, जा, आराम कर सिर में दर्द है तो।····तुम्हें क्या पता सुधेश की माँ, फाइनल ईयर में पढ़ाई का कितना 'स्ट्रेन' रहता है।"

अमिता उठकर अपने कमरे की ओर चल दी। पार्वती ने मुँह बनाकर गरदन झुकाए-झुकाए ही उसे घूरा। उमा बाबू ने चाय का कप पार्वती की ओर बढ़ाते हुए कहा, "तुम्हारी साड़ी का रंग मैंने जान-बूझकर चटकीला चुना है। तुम अभी से अपने को बुढ़िया जो मान बैठी हो।"

और अमिता अपने कमरे में आकर तकिये में मुँह छुपाकर रो पड़ी। काश! कुमार यह सब जान सकता। भीतर से उसे कोई फिर कुरेदने लगा—"कुछ हो गया तो?" और अमिता के कानों में अमिता के ही स्वर गूंजने लगे···"तुम्हें पाने के लिए अब मुझे कोई लांछन भी ओढ़ना पड़ा तो ओढ़ूंगी···।

उसके कानों में लहरों को मथने वाले चप्पुओं का शब्द गूँज रहा था, नौका किनारे की ओर बढ़ रही थी।

: ६ :

उस दोपहर जब रामसेवक सुन्दर बाबू का टिफिन लेकर दफ्तर पहुँचा तो उन्होंने उसे अपने 'केबिन' में बुला भेजा। प्रायः वह उनके चपरासी को डिब्बा पकड़ाकर चला आता था। अतः अपना बुलाया जाना उसे अस्वाभाविक और आश्चर्यचकित कर देने वाला प्रतीत हुआ। मालिक के प्रति पूर्ण आदर-भाव प्रदर्शित करते हुए वह उनकी मेज के पास जा खड़ा हुआ। सुन्दर बाबू ने उसकी ओर एक गंभीर दृष्टि फेंकी और कुर्सी से उठ खड़े हुए। केबिन में गहरी खामोशी छा गई थी। सुन्दर बाबू मेज की दाहिनी ओर कोने में रखे हुए 'कप बोर्ड' तक गए, उसे खोला और उसमें से भी एक छोटे से स्टील बक्स को खोलकर उन्होंने एक हजार रुपये के नोट निकाले। मेज के सामने से घूमकर वह ठीक रामसेवक के सामने आकर रुक गए। मुखाकृति आज बहुत गंभीर थी···· रामसेवक ने देखा। ऐसा तो उसने अपने बाबूजी को कभी न देखा था। हमेशा एक निश्चितता से खिला हुआ मंद-मंद मुस्कराने वाला चेहरा आज ऐसा गंभीर क्यों हो गया, जैसे किसी षड्यंत्र में लगा हो। रामसेवक पर इस वातावरण का रहस्य शीघ्र ही खुल गया। सुन्दर बाबू ने मेज से पीठ टिकाकर खड़े-खड़े ही रामसेवक से कहा, "राम्, तू ने बहुत दिन मेरी खिदमत की है, और कस्तूरी ने भी बरसों हमारे यहाँ काम किया है। पर, आज कुछ ऐसी घड़ी आ उपस्थित हुई है कि मैं तुम लोगों से बहुत दूर हो जाऊँगा।"

सुन्दर बाबू का स्वर क्रमशः गंभीर होता जा रहा था। आगे वह बोले, "यह हजार रुपये कस्तूरी का इनाम है। मैं आज रात को ही घर जा रहा हूँ। शाम को देरी से लौटूँगा। कस्तूरी से कहना, आज खाना बनाने की

आवश्यकता नही है। अभी वह घर पर ही होगी। सीधे जाओ, और उसे यह नोट दे दो। तुम जाकर जरूरी सामान पैक करो और वहीं ठहरना। कोठी बंद कर चलेंगे·····। हमारी बदली हो गई है····और हाँ····", सुन्दर बाबू ने पीछे घूमकर मेज पर से एक लिफाफा उठाकर रामसेवक को देते हुए कहा, "यह चिट्ठी कुमार बाबू को जाते ही दे देना। शायद तुम्हारे जाते-जाते वह भी यूनिवर्सिटी से लौट आएँ!" इतना कह कर सुन्दर बाबू चुप हो गए। रामसेवक की समझ पर ऐसा पाला पडा कि वह कुछ भी कह न सका। मालिक कुछ और तो नही कहना चाहते, इसी जिज्ञासा को लिये वह कुछ क्षण खडा रह गया। फिर सुन्दर बाबू ने ही कहा, "जाओ, जल्दी करो। फिर कही कस्तूरी अपने घर न लौट जाय।"

रामसेवक में जैसे किसी ने विद्युत् का संचार कर दिया। वह तेजी से कदम बढ़ाते हुए जब कोठी की ओर बढ़ा तो उसका मन भी लम्बी-लम्बी उडाने लेने लगा। सुन्दर बाबू ने जो कुछ कहा था, वह उसके कारणों पर विचार करने लगा। सुन्दर बाबू के जीवन में उसने अचानक इतना परिवर्तन पहले कभी नहीं देखा था। उसके मस्तिष्क ने सारी बात को कुमार के साथ जोड दिया। क्योंकि उसने प्रातः सुन्दर बाबू को कुमार के कन्धे पर हाथ रख उसे साथ ही टैक्सी में ले जाते देखा था। फिर उसे अपनी ही सोची हुई बात गलत मालूम दी; क्योंकि कुमार को साथ ले जाने और बम्बई की बदली हो जाने की कोई संगति न बैठती थी। अब उसने सोचा—"शायद कोई जरूरी बात हो गई है कि सा'ब को एकदम बम्बई जाना पड रहा है···· पर उन्होंने मेरे लिए कुछ नही कहा, मै यहाँ रहूँगा या साथ बम्बई जाऊँगा, चूँकि सुन्दर बाबू ने सचमुच उसके सम्बन्ध में विशेष रूप से कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया था, इसलिए ही रामसेवक के मन में यह विचार जग उठा कि हो-न-हो सा'ब उसे अपने साथ बम्बई ही ले जायेंगे या अकेले कोठी की रखवाली करनी होगी। और यहाँ तक सोचकर वह खिन्न हो गया। उसकी गति तो कुछ धीमी हो गई, पर संकल्प-विकल्प का झंझावात तीव्रतर हो गया। यहाँ तक कि कोठी पर पहुँचते-पहुँचते वह अपने साहब का खयाल बिलकुल भूल गया

और इस अवसर को उसने अपनी गृहस्थी बसाने के लिए पूर्णत. स्वर्णिम समझ लिया। सुन्दर बाबू के रसपूर्ण जीवन को निकट से देखते हुए उसके अन्तर में जो सूक्ष्म संस्कार बन गए थे, वह जैसे साकार हो उठे। अपने जीवन का अकेलापन आज उसे बड़ा भयावह प्रतीत होने लगा। उसने सोचा—'यह ठहरे बडे आदमी। बम्बई जायँ, चाहे विलायत जायँ···इन्हें नौकरों और मिसरानियों की क्या कमी है?' उसका हाथ तब अपनी खादी की कुर्ती की जेब में चला गया जो उसने खाकी कोट के नीचे पहन रखी थी और जिसमें दस-दस के सौ नोट पड़े थे। भीतर से किसी ने सलाह दी—'इस रकम से तेरे गाँव की बीस बीघे जमीन की हालत सुधर जायगी, छोटे भाई का ब्याह भी ठीक हो जायगा और कस्तूरी भी वहाँ पहुंचकर आराम से रहेगी।' उसे वह बेला याद हो आई जब उसने कस्तूरी को जीत लिया था।

कोठी पहुँचकर वह सीधा कस्तूरी के पास गया। और बोला, "कस्तूरी, मा'ब आज रात हमेशा के लिए बम्बई जा रहे है। मेरी-तेरी छुट्टी है।"

"क्या! तेरा दिमाग तो ठीक है?" कस्तूरी को सहसा विश्वास न हुआ।

"इधर आ। तुझे सब बताता हूँ।" कहकर रामसेवक उसे हाथ का इशारा करते हुए 'बाथ रूम' के बाहर 'गैलरी' में ले आया, तब चारों ओर देखते हुए चौकन्ना होकर उसने धीरे से कहा, "कस्तूरी, ठीक कह रहा हूँ। बाबूजी ने हम दोनों को दो हजार रुपया दिया है। इनाम का····इतनी लम्बी सेवा के लिए····" रामसेवक ने जेब फैलाकर आगे की ताकि कस्तूरी उसमें झांक ले। उसके विस्मय-विस्फारित नेत्रों में आँखें गडाकर रामसेवक बोला, "कस्तूरी देख, सुन्दर बाबू के जाने के बाद तू अकेली यहाँ क्या करेगी? तुझे भी कोई सहारा चाहिये ही। चल, तू मेरे साथ गाँव चल। मेरे भी एक छोटे भाई के सिवा और कोई नही है और हमारी गृहस्थी खूब निभेगी।" कहते-कहते रामसेवक भाव-प्रवण हो उठा और आँखों से स्नेह बरसाते हुए उसने कस्तूरी का हाथ अपनी ओर खीच लिया। कस्तूरी कुछ कह न पाई कि राम-सेवक फिर बोला, "चोबीस घण्टे की गुलामी मे तेरा अच्छा पिण्ड छूट रहा है, कस्तूरी। सच जानियो, मै तुझे जिन्दगी भर कोई तकलीफ न दूँगा····

इन बड़े साहबों की जिन्दगी ऐसी ही होती है। इन्हें नौकरों और···कस्तूरी, किसी बात की क्या कमी, क्या परवाह।····देख, मैं तेरे ही नहीं, अपने रुपये भी गाँव पहुँचकर तेरे ही हवाले कर दूँगा। साहब का बिस्तर-ट्रंक मैं तैयार कर दूँगा! बाकी सामान फिर जायगा····तू भी तैयारी कर····तीन बजे के बाद की गाड़ी से चली चल।" कस्तूरी की मुखाकृति से आश्चर्य के भाव धीरे-धीरे मिट रहे थे और हर्ष एवं आशा की किरणें फूट रही थीं। थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह वहाँ से हटी और कनखियों में अपनी सहमति प्रकट कर वह उतावली-सी रसोई की बगलवाली कोठरी में चली गई।

रामसेवक कुमार का पत्र लेकर विश्नोई के कमरे में पहुँचा। पर, वह वहाँ न थी। तब चोर की घबराहट से रामसेवक सारी कोठी में उसे ढूँढ़ने-सा लगा। गैलरी में आते-आते उसने देखा कि विश्नोई शौचालय से निकली थी, जो बाथ-रूम से सटा हुआ ही था। रामसेवक सफेद पड़ गया। हकलाते हुए बोला, "माँ जी सुन्दर बाबू ने····यह····पत्र····दिया है, कुमार भैया के लिए। शायद अभी आए नहीं यूनिवर्सिटी से?"

"नहीं, अभी धृति भी नहीं आई है।" पत्र लेते हुए विश्नोई ने ऐसे कहा जैसे रामसेवक और कस्तूरी की कोई बात उसने नहीं सुनी हो। निवृत्त होकर वह ड्राइंग रूम में आ गई और सोफे पर बैठ गई, जहाँ शायद वह पहले कभी नहीं बैठी थी। निश्चय ही वह मन-ही-मन इस बात के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो गई थी कि कस्तूरी और रामसेवक को इस प्रकार भागने नहीं देगी। सुन्दर बाबू का वह कोई नुकसान नहीं होने देना चाहती थी। पर, साथ ही उसने रामसेवक से कुछ पूछना भी नहीं चाहा। सोफे पर बैठी-बैठी वह यही सोचती रही कि क्या इस कोठी के नौकर भी ऐसे ही हैं। उसको अब स्वयं एक पल भी कोठी में ठहरना नहीं सुहा रहा था। वह इसी उधेड़बुन में थी कि कब कुमार मकान का दूसरा प्रबंध कर लेने का समाचार लेकर लौटेगा! इसी समय उसने अपने हाथ में पड़े लिफाफे की तीव्र अनुभूति की। और आश्चर्य से सोचने लगी कि कुमार को यह पत्र कैसे भेजा आज! न जाने सुबह टैक्सी में क्या बातें हुईं? क्या कुमार ने धृति को स्वीकार कर लिया है? लड़की तो

बुरी नही है? सामने वाली अमिता से नक्शा भी अच्छा है, रंग भी ज्यादा साफ है, फिर हृदय की भी बुरी नही जान पड़ती। बेचारी की माँ छोटा ही उम्र मे मर गई—" विश्नोई का हृदय करुणा से भर आया और एक विचार फिर उठा। "रामसेवक और कस्तूरी तो जा ही रहे है, जल्दी ही जायं तो भला है! धृति पर अभी बाप के कुकर्मो की कोई छाप नही पड़ी है। कुमार यदि 'हां' कर दे तो मेरा बुढ़ापा भी सुधर जाय। कोई पास तो हो···· बिमारी-हारी में····" कोठी छोड़ने के लिए उसका मन अब कुछ कच्चा हो चला। उसने सुन्दर बाबू का भेजा हुआ वह लिफाफा खोल डाला। पर, उसमे जो पत्र निकला, वह अंग्रेजी मे था। अतः विश्नोई उसके भाव नही जान सकी। विचारो की शृखला फिर धृति से जुड़ गई। वह उसे मन-ही-मन पुत्रवधू की कल्पना में मूर्त्त करने लगी। तभी उसने सोचा, "यहाँ बैठना ठीक नही। कस्तूरी जाना चाहती है तो जाय, रामसेवक का इरादा मालिक को हानि पहुँचाने का नही है, अपना घर बसाने का है।" और वह वहाँ से उठकर अपने कमरे में आ गई। कुमार की जरसी का गला छाँटने लगी। मन उससे फिर बाते करने लगा।

"सुन्दर बाबू बम्बई जा रहे है तो धृति तो यही रहेगी, उसकी पढ़ाई तो अभी अधूरी है?"

"हाँ, धृति अकेली कैसे रहेगी? विश्नोई, तू भी अब कही और मकान न बदल।····ठीक तो है, कस्तूरी भी तो जा रही है।"

"अभी क्या पता?"

"नही, नही, रामसेवक उसे अब नही छोड़ेगा।"

"पर, कुमार क्या धृति के यहाँ रहना स्वीकार करेगा?"

"तू कहेगी तो जरूर रुक जायगा। आखिर माँ की बात न मानेगा?"

"पर, वह तो कह चुका है कि मैं धृति को बहन मानता हूँ।"

"अरी, यह सब तो युवावस्था की कोरी भावुकता भरी बातें है, विश्नोई, लड़के के लिए उपयुक्त वधू माँ ही ढूँढ़ सकती है!"

"तुझे क्या पता, आजकल के कालेजों में पढ़ने वाले लड़के इस मामले मे

माँ-बाप की कब सुनते है?"

"पर, तेरा कुमार, तेरी बात अवश्य मान लेगा, विश्नोई! वह समझदार है। उसमे अपनी माँ का दु ख सहन नही होता। वह जानता है कि उसके पिता नही है, इसलिए माँ के हृदय को किसी प्रकार भी ठेस नही पहुँचाना चाहता।"

"लेकिन धृति तो कहती थी—वह अमिता के हो चुके है··· अमिता के?"

"नही, नही, विश्नोई, तेरा बेटा ऐसा लम्पट नहीं हो सकता। वह आजकल के छल-छंदो से दूर है। उसे अपने घर की लाज है। उसके बाप को समाज-सेवक होने के नाते जो मान प्राप्त था, वही उसे विरासत में मिला है। सब की निगाहो में वह ऊँचा है, विश्नोई।"

"यदि धृति की ही बात सच हुई तो?"

"नही, जब तक तू स्वयं कुमार के मुँह से यह नही सुन ले, तुझे इस पर विश्वास नही करना चाहिये। कम-से-कम वह तेरे सामने अमिता से कभी ऐसे भाव से नही मिला, जो तुझे बुरा लगे। कभी वह बेमतलब की बात नहीं करता।"

"तेरा भेजा तो बेटे के लिए ऋजुता से भरा है।"

मन की बातो मे पड़कर विश्नोई उलझन में पड़ गई। अनिर्णय की-सी स्थिति में बैठे-बैठे थोड़ा समय और बीता होगा कि धृति आ गई। आते ही उसने लापरवाही से किताबें पटकी और रामसेवक को पुकारा। पर, कोई उत्तर न मिला। उसने फिर जोर से पुकारा, "रामू? ···· रामू? ओ, मिसरानीजी?"

उसकी आवाज नीरव कोठी में गूँजकर खो गई। "कहाँ मर गए आज दोनो ····" बड़बड़ाती हुई वह कमरे से बाहर आ रसोई की ओर चली। बगल मे कुमार-विश्नोई वाला कमरा पड़ता था। उसमें झाँका तो विश्नोई बैठी स्वेटर बुन रही थी। "काकी?" उत्सुकता से पूछा धृति ने, "तुमने तो कही नही भेजा, रामू को?"

"नही तो, बिटिया! तेरे बाप को टिफिन देकर तो वह लौट आया था। मिसरानी शायद चली गई होगी।"

यह वार्तालाप खत्म होते-होते कुमार भी आ गया। उसने धृति की ओर

एक उपेक्षा भरी दृष्टि फेंकी, धृति भी द्वार से किनारे की ओर हट गई, थोड़ा मुँह बनाकर, और कुमार कमरे में भीतर चला गया। धृति रसोई की ओर बढ़ गई। तब कुमार माँ से बोला, "माँ, सामान बाँध लेना चाहिये। मैंने एक और जगह देख ली है।"

"सच?"

"हाँ, माँ।"

"पर बेटा, अब यहीं रह आने में भी हर्ज नहीं है।"

"क्यों?" कुमार के इस प्रश्न में विरोध का स्वर था; क्योंकि भीतर यह डर उत्पन्न हो गया था कि कहीं माँ धृति की ओर तो नहीं झुक गई!

बिश्नोई ने कहा, "सुन्दर बाबू की बदली बम्बई की हो गई है। और कस्तूरी भी चली गई है, शायद!"

"ऐं? क्या कहा? कस्तूरी चली गई है?" कुमार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पर, मैं तो बाहर ताँगा तक ले आया था। मैं तुरंत यह स्थान छोड़ देना चाहता हूँ।" धृति तभी वहाँ भागी-भागी आई और कुमार की बात का अन्तिम भाग सुनकर भी अनसुना करते हुए बोली, "काकी! जान पड़ता है कस्तूरी और रामसेवक भाग गए हैं। रसोई की बगलवाली कोठरी में रखा रामसेवक का सारा सामान गायब है और कस्तूरी की कपड़ों की पोटली भी नहीं है। पीछे 'बाइलेन' की तरफ का छोटा फाटक भी टूटा पड़ा है। शायद बहुत दिनों से खुला न रहने की वजह से 'जाम' हो गया होगा। तभी तोड़ा गया है। काकी यह सब हो गया और तुम कमरे में बैठी रहीं! मैं अभी 'डैडी' को फोन करती हूँ।" धृति सब एक ही श्वास में कह गई और बिश्नोई एवं कुमार की प्रतिक्रिया को जानने की कोई प्रतीक्षा न कर वह ड्राइंग रूम में आकर सुन्दर बाबू को फोन मिलाने लगी।

कुमार माँ का चेहरा देखता रहा और उसी क्षण मौका देखने के लिए कोठी के पिछले भाग की ओर बढ़ गया।

धृति ने पिता को सूचित किया, "पापा! आप शीघ्र घर आइये। जान पड़ता है, रामसेवक भाग गया है, कस्तूरी की पोटली भी नहीं है।"

सुन्दर बाबू को सुनकर कुछ विशेष अचम्भा न हुआ, लेकिन उनकी अर्थ-पूर्ण हँसी सुनकर धृति को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह पूछ बैठी, "आप हँस रहे है?"

"कुछ नही, बिटिया! जाने दो, मैंने ही उन्हें छुट्टी दी है। कुछ चिंता न करो। और देखो, मेरे आने की कोई जरूरत नहीं है। मैं रोज की तरह लौटूँगा।" फोन कट गया। धृति सोचती खड़ी रह गई। यह कैसी पहेली है? चाय-नाश्ता भूल कर वह फिर दौड़ी-दौड़ी विश्नोई के पास आ गई। आश्चर्य से पूछा उसने, "काकी, तुम्हें कुछ मालूम है? पापा कहते हैं, उन्हें मैंने छुट्टी दी है।...."

"हैं! छुट्टी दी है?" कुछ विचार-मग्न होकर विश्नोई ने दोहराया।

कुमार भी वहाँ आकर सोच-विचार में डूबा खड़ा हो गया। "काकी, पापा कहते हैं, कोई चिंता की बात नहीं, जाने दो। मेरे आने की कोई जरूरत नहीं। मै रोज की तरह ही लौटूँगा।"

"रोज की तरह लौटूँगा? तो क्या उन्हें बम्बई नहीं जाना है?"

"बम्बई?" आश्चर्य में डूब गई धृति।

विश्नोई स्वयं आश्चर्य में हो गई, "हाँ! मैंने तो रामसेवक के मुँह से इतना ही सुना था कि बाबूजी आज रात हमेशा के लिए बम्बई जा रहे है और इसीलिए कस्तूरी को छुट्टी दी है।"

कुमार को भी यह सब कुछ बड़ा विचित्र-सा लग रहा था। धृति ने फिर सुन्दर बाबू से फोन पर पूछा, "पापा! क्या आप आज रात बम्बई जा रहे हैं?"

"नहीं बेटा! किसने कहा? मैं कहीं नहीं जा रहा। सब ठीक है?" और अधिक कुछ कहे बिना सुन्दर बाबू ने फोन काट दिया। धृति ने फिर पिता की बात को विश्नोई के सामने दोहरा दिया और कहने लगी, "काकी, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। जरूर इसमें रामसेवक की कोई चाल रही होगी।"

"अरी, वह तो कहीं से रुपया भी लाया था, दो हजार!"

"क्या?" कुमार और धृति ने एक साथ कहा। फिर कुमार ने तनिक खीझकर कहा, "जान पड़ता है माँ, तुम्हें इस राज का पूरा पता है, तुम बताती क्यों नहीं?"

"बेटा, राज की इसमें क्या बात है? असल में बात यह है कि मैं शौचालय में थी, तब 'बाथरूम' के पास खड़े-खड़े रामसेवक और कस्तूरी आपस में बातें कर रहे थे। उन्हें मेरे अन्दर होने का पता न था। रामसेवक ने यही कहा था, कस्तूरी से--बाबूजी आज रात हमेशा के लिए बम्बई जा रहे हैं और तुझे-मुझे हजार-हजार इनाम का देकर छुट्टी दे दी है, इसके साथ ही रामसेवक ने उसे गाँव भाग चलने के लिए फुसलाया था।"

"हाँ, पीछे बाइलेन में कोई तांगा आया था। पहियों के निशान बने हैं।" कुमार ने कहा।

दत्तचित्त होकर धृति ने यह सब सुना और वह अचम्भे से बोली, "पर, पापा तो कह रहे थे कि मैं बम्बई नहीं जा रहा!"

इसी समय सहसा बिश्नोई को उलझन से दूर निकल जाने का मार्ग सूझ गया। मोह नष्ट होने पर स्मृति-लाभ हुआ हो जैसे, विश्नोई लपक कर भीतर कुमार की मेज तक गई और बोली, "ले कुमार, देख तो इस चिट्ठी में क्या लिखा है। रामसेवक सुन्दर बाबू से तेरे नाम से यह चिट्ठी लाया था।"

कुमार भी उत्सुकतावश मेज की ओर बढ़ा और माँ के हाथ से चिट्ठी लेते-लेते व्यग्र भाव से पूछ बैठा, "यह खोली किसने?" उसने धृति की ओर देखा। यह 'देखना' उसके मन के इस संदेह को कि कहीं धृति ने तो नहीं पढ़ी यह चिट्ठी प्रकट करता था। धृति उस क्षण शान्त भाव से अपने कमरे की ओर लौट आई। कुमार अभी उद्विग्न था। कुमार ने पत्र पढ़ा और माँ को उसका भाव सुनाता गया। "कुमार, सुबह टैक्सी में तुमने जो कुछ कहा, उस पर मैं बहुत बार विचार करता रहा। मेरे मन-प्राण को तुम्हारी बातों ने जैसे झकझोर दिया। मैं अपने जीवन को आज पहली बार उन आँखों से देख सका, जिन आँखों से कि दूसरे मेरे जीवन को देखते होंगे। मुझे लगा कि मैं चाहे जीवन में कितना ही स्वतंत्र क्यों न होऊँ! पर, जो कुछ मैं करता हूँ, उसका असर मेरे

पास-पड़ोस वालों पर, मेरे सम्बन्धियों पर, मेरे समाज पर पड़े बिना नहीं रह सकता। व्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर मर्यादाओं को तोड़ना और यह कहना कि समाज को इससे क्या, यह मेरा निजी मामला है; कोरा दम्भ है, कुमार! तुमने जितना कहा मैं उससे कहीं ज्यादा समझा। धृति के लिए मुझे अपने जीवन में, अपने दृष्टिकोण में, परिवर्तन लाना ही होगा। सचमुच यह परिवर्तन शुभ होगा। इसका सब से पहला परिणाम कस्तूरी पर पड़ेगा, मैं आज ही तत्काल युक्तिपूर्वक उसे हटाये दे रहा हूँ। तुम धृति को स्वीकार करो, ऐसा मेरा कोई आग्रह नहीं है। यह तुम्हारा और तुम्हारी माताजी के सोचने का प्रश्न है। पर, इतना कहे देता हूँ कि धृति का जो चित्र तुम्हारे मन पर छाया है, वह धुँधला है। धृति सचमुच सच्चरित्र है। मैं ही वास्तव में उसका पिता होने योग्य नहीं हूँ। मैं शुरू से ही तुम्हारी आदतों को पसन्द करता रहा हूँ, और आज से तुम में मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गई है। इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा है कि अब तुम अपनी माताजी से मकान न बदलने की प्रार्थना करो। ——शुभचिंतक, सुन्दर।"

पत्र पढ़त-पढ़ते कुमार ठगा-सा खड़ा रह गया। उसे लगा कि वह किसी देव-पुरुष का हृदय पढ़ रहा हो। सुन्दर बाबू के प्रति श्रद्धा से उसके नेत्र सजल हो आये। बिश्नाई की आँखो से तो आँसू ही छलछला आये और अपने आँचल से उसने उन्हे पाछ लिया। कुमार ने पत्र माँ को ओर बढ़ा दिया और स्नेह-सिक्त वाणी में धृति को पुकारा, "धृति! आ धृति!" पुकारते हुए वह ड्राइंगरूम की ओर बढ़ा। धृति एकदम उदास, निश्चेष्ट बैठी थी, जैसे हृदय पर भारी पत्थर का बोझ रखा हो। "धृति!" कुमार ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए उठा लिया, "यहाँ अकेली बैठी किसे रो रही है? चल पगली, माँ के पास चल, चाय लगभग तैयार है।" धृति बेमन खिच-सी आई। पर, नेत्रों में पानी आ जाने से आगे का सब कुछ धुँधला-सा दिख रहा था। मन में गहरा कुहरा भर गया आश्चर्य का। समझ न पाई, कुमार का यह व्यवहार किससे प्रेरित हुआ है? ऐसा तो कुमार ने अभी तक कभी नहीं किया था। शरीर में रोमांच हो आया और वह चाहते हुए भी कुमार के हाथ में से अपना हाथ न छुड़ा पाई। कुमार के मन में वही प्रसन्नता थी जो उदास बैठी किसी बहन की उदासी भंग करने वाले भाई को

हो सकती है। बिश्नोई ने भी उन्हें ऐसी ही दृष्टि से देखा और एक बार फिर उसके नेत्रों में जल आ गया। धृति को माँ की ओर लगभग धकेलते हुए कुमार ने कहा, "माँ, लाओ, इसे चाय दो। बेचारी वहाँ गुमसुम बैठी है!···पगली, समझती नहीं, यह मेरी ही माँ नहीं, तेरी भी है।" बिश्नोई ने उसे अंक में भर लिया और अत्यन्त आर्द्र कण्ठ से कहा उसने, "मेरी बच्ची!" बिश्नोई की आँखों से दो आँसू ढुलक गए धृति की पीठ पर और धृति के अश्रुओं से बिश्नोई का आँचल गीला हो गया। मेज के पास बैठकर कुमार ने एक बार फिर सुन्दर बाबू का पत्र उठा लिया और पढ़ते-पढ़ते उसका मन फिर सुन्दर बाबू के चरणों पर अश्रु-फूल चढ़ाने लगा। कोई भीतर से कचोटने लगा कि तू सुन्दर बाबू से क्षमा माँग, उनके चरणों की धूलि लेकर तू धन्य हो जायगा। तब वह माँ से बोला, "माँ, लाओ.. जल्दी लाओ न चाय। बड़ी भूख लगी है।"

"लो, अभी लाई। सुबह दोनों खिचड़ी ही तो खाकर गए थे।"

"आ री, तू यहाँ बैठ धृति! मेरे पास कुर्सी पर।"

लेकिन कुमार की यह वाणी सुनकर धृति बिश्नोई के मना करने पर भी चाय-नाश्ते की तैयारी में उसे सहयोग देने लगी।

कुमार-बिश्नोई के मध्य बैठकर चाय पीते-पीते धृति के मन का कलख जैसे धुल कर बह गया। उसे लगा जैसे वह सचमुच माँ और भाई के बीच बैठकर चाय पी रही हो। अनजाने मन की प्रसन्नता को उसने सच्ची अभिव्यक्ति दे डाली, "काश, अमिता भाभी भी हमारे बीच होतीं!"

कुमार सुनकर पीला पड़ गया। लगभग उत्तेजित होते हुए बोल पड़ा—"धृति! क्या कह रही हो? अब कभी तुम्हारे मुँह से यह बात न सुनूँ।" क्रोधित कुमार चाय अधूरी छोड़कर उठ गया। बिश्नोई दोनों को घूरती रह गई जैसे सच्चाई का उसे कुछ आभास हो गया हो। धृति को अपनी भूल पता चली और वह उठकर कुमार का कंधा पकड़ कह उठी, "भाई साहब, छोटी बहन का ज़रा-सा मजाक भी सहन कर लिया करें!"

बिश्नोई को सहसा हँसी आ गई और धृति कुमार को बाँह से खींचकर फिर कुर्सी तक ले आई। कुमार कह रहा था—"अब ऐसी हँसी मेरे से न करना हाँ,

कहे देता हूँ।"

"चल, जाने दे! क्यों बेचारी को धमकाता है।" बिश्नोई ने दोनों के कपों में थोड़ी-थोड़ी चाय उँड़ेलते हुए कहा। और फिर दोनों को चाय पीते देख एक अपूर्व ठण्डक से उसके नेत्र पसीज उठे। कुमार के कानों में उस क्षण फिर जैसे धृति के वही शब्द गूँज उठे, 'काश! अमिता भाभी भी होतीं।' और उसके आगे एक विशाल शून्य बन गया जिसमें सब कुछ अदृश्य होकर अमिता का खिलखिलाता चेहरा ही रह गया। धृति ने तब कहा, "यह प्याला होठों से ही क्यों लगा रह गया? क्या कोई कविता सूझ आई?"

"हाँ!" भावपूर्ण स्वर था कुमार का।

धृति ने छेड़ा, "तुमने आँखों से ओझल होना जाना,
पर मन की गति को तनिक नहीं पहचाना····।"

और वह हँस पड़ी।

कुमार ने चाय का घूँट भरते हुए भौंहें तानकर आँखों ही आँखों में डाँटा धृति को। इस स्नेह भरी डाँट में तब धृति की हँसी विलीन हो गई। बिश्नोई बोली, "कुमार, जा अब कुछ सब्जी ले आ। क्यों री धृति, क्या-क्या पसन्द है तुझे? और क्या तेरे बाबूजी की पसन्द है?"

"शायद पापा को बरसों से अपनी पसन्द का कोई शाक नहीं मिला है।" धृति के कथन में मातृ-अभाव की पीड़ा झलक रही थी। "उन्हें जाड़े की सब्जियों में टमाटर, मटर और बथुए का रायता, आलू की कचौड़ी बहुत पसन्द है।"

"तेरे मुँह में पानी आ गया दिखता है।" बिश्नोई ने कहा, "आज यही सब चीजें बनेंगी।" चुटकी बजाते हुए कुमार बाहर निकल गया। मुस्काती आँखों से बिश्नोई-धृति एक दूसरे को देखती रह गईं।

: १० :

एलिफेंटा की गुफाएँ देखने, जिस मन-बहलाव के उद्देश्य से उमा बाबू आए थे, वह पूरा न हुआ। यहाँ आकर उन्होंने जो कुछ देखा, वह जीवन में सर्वथा नया था। तरुणावस्था को प्राप्त युवक-युवतियों की टोलियाँ उस सांस्कृतिक मनोरंजन-स्थली में ऐसे ही विचर रहीं थीं, जैसे किसी पाश्चात्य चित्रपट में वॉल-डांस हो रहा हो। कुछ लड़कियों ने चुस्त बदन से चिपकी हुई एकदम पतली मोरी की पैंटें पहनी हुईं थीं, जिनके ऊपर वैसी ही गठी हुई आधी या बिना बाँहों वाली कुरतियाँ थीं। ऐसी वेश-भूषा में प्रायः सभी संधि-स्थल स्पष्ट चमक रहे थे। शेष युवतियों ने स्कर्ट पहने हुए थे। बाल अधिकांश लड़कियों के 'बॉब कट' थे या फिर घोड़े के बच्चे की छोटी-सी दुम की तरह अधखुली-सी चोटियाँ बिखर रहीं थीं। लड़कों में अधिकांश जहाजी मल्लाहों जैसी रंग-बिरंगी जाकटें और पैंटें पहने थे और इन टोलियों के लड़के अत्यन्त भद्दे इशारे करते हुए कूल्हे मटका-मटकाकर ढोलक और गिटार की ध्वनियों के साथ लड़कियों के हाथों में हाथ डाले नृत्य कर रहे थे। इसमें गुजराती, ईसाई, महाराष्ट्रियन, एंग्लो-इण्डियन प्रायः सभी वर्गों के युवक-युवती थे और निःसन्देह बहुत ही खुले दिल से छुट्टी का समय बिता रहे थे। यद्यपि स्टीमर में आते हुए ही उमानाथ बाबू ने इस उच्छृंखल स्वच्छन्दता का एक चौंका देने वाला वातावरण देखा था, तथापि यहाँ आकर एक छोटी-सी क्रीड़ा-नगरी में जो देखा, उससे उनकी तबियत ऐसी खट्टी हो गई कि उन्हें वय-प्राप्त पुत्री के साथ वहाँ चलना दुश्वार हो गया। उनके आतिथेय मिस्टर देसाई भी साथ थे और वह बड़े गर्व से कहते जा रहे थे, "हर रविवार नो बड़ो मजो आवै छै—ये गोवा नो नृत्य है, उमा बाबू। हम तुमकू कल भारतीय विद्याभवन मा, गरवा नृत्य दिखायगा, टिकट का हम बन्दोबस्त कर लिया है। समझा।"

आठवीं शताब्दी में ब्राह्मण-काल के पुनरुत्थान के समय जिस धारापुरी की गुफाओं को खोदकर भारतीय संस्कृति के अदृश्य अध्याय को अमरत्व प्रदान किया गया था, वही धारापुरी आज उमा बाबू को कुरुचि, वीभत्सता और अमर्यादा की ऐसी क्रीड़ास्थली जान पड़ी, जहाँ मानो प्रागैतिहासिक काल के स्त्री-पुरुष परिधान में लिपट उतर आये हों। तभी कूल्हे मटकाकर हाथों को घुमाते हुए नृत्य करने वाले

एक लड़के की ओर इंगित कर देसाई सेठ ने हँसते-हँसते कहा, "देखिये, उमा सेठ ! यह भगवान की नकल उतारे है।"

"कौन भगवान ?"

"अरे, वह अपना फिलम एक्टर।"

"ओह !" उमा बाबू को जैसे किसी ने सोते से जगाया। वह सोचने लगे, "ये लोग फिल्म-लोक के वासी है !"

एक और लड़की तब तनिक लंगड़ाकर—'चम्पई !'—चिल्लाते हुए उस टोली में चक्कर लगाकर किसी-किसी छोकरे के बाल खसोटकर खिलखिलाने लगी और देसाई सेठ ने फिर उमा बाबू से कहा, "जानीवाकर नी चोखी नकल छे।'

उमा बाबू का मन खिन्न हो गया और वह सोचने लगे, "हे त्रिमूर्ति ! तुम्हारा तीसरा नेत्र कब खुलेगा ? तुम्हारी ही छाया में यह क्रीड़ा-नर्तन ?···" अमिता से वह बोले, "बिटिया, तुम उधर से चक्कर लगाते हुए सुधेशु-दिनेश के साथ वहाँ पहुँचो, उस विशाल त्रिमूर्ति की तरफ ओर मै देसाई सेठ के साथ इधर से आता हूँ।" वास्तव में उनके मन ने यह स्वीकार न किया कि वह अमिता के साथ-साथ चलते हुए मनोरंजन-रत युवक-युवतियों की टोलियों के पास से गुजरें। फिर देसाई सेठ जिस निष्कपटता से अपने वकील साहब का मनोरंजन करना चाहते थे, उससे यह भी संभव न था कि वह अपनी आँखें बन्द कर सकें।

अमिता स्वयं पिता के साथ-साथ वहाँ की इस दृश्यावली के बीच घूमते हुए भीतर-ही-भीतर शर्म से गड़ी जा रही थी। उसने अपनी ओर के छात्र-छात्राओं को इस प्रकार छुट्टी मनाते कभी न देखा था। पिता से अलग हो सुधेश-दिनेश के साथ आगे बढ़ते-बढ़ते उसे ओखला, लाल किला और कुतुबमीनार पर मनाई गई वे पिकनिक पार्टियाँ स्मरण हो आईं जिनमें कुमार का सुखद संसर्ग उसे मिला था। राजघाट की वह सुबह की सैरें स्मृति में उभर आईं जो वसन्त आगमन के पूर्व के दिनों में गुलाब, चमेली, मोतिया की भीनी मादक गंध से आच्छादित-सुवासित लाल-लाल बजरी की पटरियों पर कुमार के साथ उसने की थीं।

देसाई सेठ का तार पाकर उमा बाबू निश्चित दिन से एक दिन पूर्व ही चले आये थे, अतः कुमार से वह भेंट न कर सकी थी। न यह जान सकी थी कि

वह बम्बई पहुँचेगा या नहीं। फिर भी प्रातः समाचारपत्र के कालमों में आकाश-वाणी के कार्यक्रमान्तर्गत उसने रात के ९॥ बजे से कवि-सम्मेलन का कार्यक्रम पढ़ा था और एक क्षीण आशा की लहर उसके मन-प्राण पर छा गई थी कि कुमार शायद आ जाये! काश! वह जान लेते कि उनकी लाई हुई गोलियाँ सुधेश-दिनेश ने नष्ट कर दीं, और यह कि उसका जी भी मतलाने लगा है। सोचते-सोचते वह जड़ हो गई थी। चलने में उसकी गति न रह जाती तो सुधेश-दिनेश उसकी अँगुलियों को दोनों ओर से खींचते। "लो दीदी, शरीफा खाओ।" सुधेश ने अपनी पैंट की जेब से शरीफा निकालकर अमिता को दिया। वह बहुत चतुर था। स्वयं खाना चाहता था, इसी भाव से उसने अमिता को दिया कि वह दोनों को बाँट देगी। पर, अमिता के हृदय-मस्तिष्क पर जो धूमिल अनागत लांछन का भय लिये मँडरा रहा था, उससे वह एक उलझन में पड़ गई थी। उसकी हँसी में, वार्ता में, यहाँ तक कि लगभग सम्पूर्ण व्यवहार में कृत्रिमता-सी आती जा रही थी, और वह चाहने लगी थी कि वह सबसे पृथक् रहे, अकेली। कुमार का सान्निध्य ही अपेक्षित हो चला था उसके लिए। कभी आँखों के सामने पार्वती का क्रोध से तमतमाता हुआ चेहरा मूर्त हो जाता, कभी लगता जैसे सहस्रों हाथ एक नवजात शिशु को उठाये उसे इंगित कर अट्टहास कर रहे हैं—यह इसी के पाप का पुतला है। अमिता भीतर ही भीतर इस प्रकार डर रही थी। एक घुन उसे लग चुका था—जो अन्दर-ही-अन्दर खा रहा था। कभी उसे सुनाई पड़ता—'मैं इतना गिरा हुआ नहीं हूँ कि मैं अपनी भूल स्वीकार न कर सकूँ और उमा बाबू भी इतने छोटे दिल के नहीं हैं कि हमें क्षमा न कर दें।'

'और मैं यह कैसे मान लूँ कि भूल केवल तुम्हारी ही थी।' इस वार्तालाप का स्मरण होता तो वह जैसे एक साहस से भर जाती और सुधेश-दिनेश को लेकर आगे बढ़ती। उन्हें बताती, कि यहाँ बौद्ध-विहार था। यहाँ भिक्षु आपस में धर्म-चर्चा करते होंगे!—ओह! वे लोग कैसे संसार से पृथक् होकर असंसारी का जीवन बिताते थे। और फिर यह भव्य निर्माण! कितना कष्ट होगा उनके जीवन में! सब सुख-सुविधाओं से वंचित रहकर केवल निर्माण में लगे रहते होंगे। हाँ, वास्तव

में उनका मन-मस्तिष्क विराट् की भावना से भरा होगा। .... उस अपूर्व स्थिति की कल्पना करने लगी अमिता, जब वे भिक्षु यहाँ इस एकान्त गुफा में रहकर हृदय-गुहा में छिपे अलौकिक परम आनन्द की उपलब्धि कर आत्म-तृप्त हो जाते होंगे। सोचते-सोचते वह पुनः कुमार की स्मृति से विभोर हो गई। मन छटपटा उठा कि यहाँ फोन हो तो आकाशवाणी से पूछ लिया जाय कि कुमार आ रहे हैं या नहीं। पर, मन का चाहा कब होता है! मन का चाहा हो जाय तो क्या कुछ कहने को रह जाय? कुछ बताने को शेष रहे? कुछ लिखने को बच जाय? अमिता आगे बढ़ते-बढ़ते गोलार्द्ध में घूम गई थी और देसाई सेठ के साथ उमा बाबू उसकी आँखों से ओझल हो चुके थे। कभी-कभी आमोद-प्रमोद में उन्मत्त अवकाश मनाने वालों का हो-हल्ला सुनती तो उसकी विचार-शृंखला टूट जाती। लगता जैसे किसी ने विशाल राजसी सितार के बड़े-बड़े तारों को झनझना दिया हो और उनसे एक मरण-संगीत की हृदय-वेधी ध्वनि फूट पड़ी हो। अमिता की ऐसी विचित्र मनःस्थिति का परिणाम यह हुआ कि सुधेश-दिनेश को भी एक शुष्कता अनुभव होने लगी और वे शीघ्र ही त्रिमूर्ति के पास पहुँचकर बाबूजी से मिल जाने के लिए व्यग्र हो उठे। अमिता ने यद्यपि कहा, "बाबूजी अभी वहाँ तक पहुँचे भी न होंगे।"—फिर भी उसे उधर जाना ही पड़ा। त्रिमूर्ति के विशाल आकार को देखकर सहसा ही मन में भय-मिश्रित आदर का भाव जगता था। मूर्ति के दाहिनी ओर ही उस विशाल कक्ष में लड़कियाँ दो कतारों में बँटकर कबड्डी खेल रही थीं। अमिता ने लड़कियों की कबड्डी पहले कभी नदेखी थी, एक अजीब समां था। दूर-दूर कुछ पर्यटक अपने परिवारों के साथ भोजन-नाश्ता कर रहे थे और कुछ थोड़े से दर्शक वहीं खड़े कबड्डी का आनन्द ले रहे थे। अमिता सुधेश-दिनेश के साथ रुक गई। सुधेश-दिनेश को यह तमाशा देखने में बड़ा रस आ रहा था। पर अमिता का मन वहाँ न ठहर सका। दोनों भाइयों को वहीं छोड़ वह त्रिमूर्ति की ओर बढ़ गई। "तुम देखो, मैं मूर्ति के पास हूँ।" त्रिमूर्ति की विशालता का उसके मन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि वह सहसा सहम-सी गई। एक डर से वह काँप-सी गई। अधखुले नेत्र सजल हो आए और मूर्ति के चरणों में नतमस्तक हो वह बुदबुदा उठी, "हे प्रभो! आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं।

जन्म, पालन और मरण आपकी ही छाया में होते हैं। आप अन्तर्यामी हैं, प्रभो ! ···आप सब के मन की जानते हैं। हे त्रिमूर्ति महेश ! मैं आपकी शरण में हूँ ··· मेरी रक्षा कीजिये। मैंने कुमार को हृदय से चाहकर कोई पाप नहीं किया है। कोई भूल नही की है, प्रभो ! कुमार ने भी कोई पाप नहीं किया है। आप हमे इस आपद से बचाइये--हम दोनों की रक्षा कीजिये। प्रभो ! मेरे बाबूजी और माँजी पर कोई लांछन न आने दीजिये। हे, त्रिमूर्ति ! आप सब के रक्षक हैं।"

"अमिता !" उसके कंधे पर पीछे से हाथ रखकर किसी ने एक पीड़ित चीत्कार किया। आँखें खोला अमिता ने तो सामने उमा बाबू थे। वह बिलखकर रो पड़ी और बेसुध-सी उनके चरणो में गिर पड़ी, "मुझे क्षमा करो, पापा ! मुझे क्षमा करो !" और वह अधिक कुछ न कह पाई। उमा बाबू ने उठाकर उसे अंक में भर लिया और गंभीर स्वर में बोले, "मैंने सब सुन लिया है, अमिता ! सब समझ लिया है ····ओह ! नहीं जानता था कि मेरी ही बेटी एकदम इतनी आगे बढ़ जायगी।" सहसा वह अमिता से दूर हो गए, जैसे किसी अग्नि-पिण्ड से भूल-वश छू गए हों।

"बाबूजी !" बेबसी से बिलखकर अमिता ने गरदन नीचे झुका ली।

"अब यहाँ नाटक न करो ! होटल लौट चलो।" गंभीर वाणी से वह बोले। तभी सहसा जोर का शोर उठा, सामने लड़कियों की कबड्डी खत्म हो गई थी और देसाई के साथ सुधेश-दिनेश उमा बाबू व अमिता के समीप आ गए थे। अमिता ने मुँह पोंछा आँचल से और उमा बाबू ने देसाई सेठ से कहा--"चलो, अब तो लौट चले। जी भर गया।"

"अरे, अभी जाना कैसे होगा, सेठ। साँझ पड़े स्टीमर लौटेगा, उसी में सब जन लौटेगा उमा सेठ ! आहा। अभी हरी घास में बैठकर कुछ खायेगा। उधर अपना रामू बैठा होगा न, भूल गया आपको ? साथ में तो टिफिन आया है।"

उमा बाबू भीतर-ही-भीतर अप्रसन्नता से घिर गए। अमिता भी बहुत कुम्हलाई हुई थी। देसाई ने दोनों को कुछ खिन्न जानकर कहा--"यह जगा तो बम्बई का 'बैस्ट' है। आपको क्यों पसन्द नहीं आया ? ···वह जो आपको विक्टोरिया गार्डन में हाथी की बड़ी प्रतिमा दिखाई थी न उमा सेठ, वह इधर से ही

गई है। उसे यहाँ देखकर ही पुर्तगाली लोग इसका नाम ऐलिफेंटा रखा है···"

उमा बाबू को सुनने में कोई रुचि न थी। वह बँधे हुए-से देसाई सेठ के साथ उधर बढ़ चले जिधर रामू के होने की आशा थी। सुधेश पूछ बैठा, "तो देसाई बाबू, इतना बड़ा हाथी वहाँ कैसे गया होगा?"

"अरे!" बालक की चतुराई पर देसाई प्रसन्न हुआ, "नौकाओं से गया होगा।"

"हाथी से नौका डूबी नहीं?" दिनेश ने प्रश्न किया।

"नहीं भाई! नौका में सब को लेकर तैर जाने की ताकत है।"

अमिता को लगा कि कोई नौका हो तो उस पर बैठकर उत्ताल तरंगों से आलोडित सागर के वक्ष पर चली जाय और जहाँ कोई सहारा न मिल सके, वहाँ जाकर छलाँग मारे, अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दे! पर चरण विवशता से बँधे सब के साथ-साथ चल रहे थे। उमा बाबू प्रायः मौन ही थे। देसाई उनके भीतर उठ रहे अन्तर्द्वन्द्व के ज्वार से बिलकुल बेखबर था। पर, अमिता उनकी मनःस्थिति को समझने की चेष्टा कर रही थी। वह स्वयं पछता रही थी, कि मेरे मुँह से ये शब्द क्यों निकल गये? काश! उसके विकंपित हाथ उसका ही गला घोंट देते। हाय, मैं कैसी निर्लज्जता से पिताजी के साथ चल रही हूँ। माँ को अब मालूम हो ही जायगा, वह मुझे जिन्दा न छोड़ेगी। हाय! वह ठीक कहती थी कि सन्तान के हित की बात जितनी माता-पिता सोच सकते हैं, उतनी सन्तान स्वयं नहीं। और फिर उसे कुमार के घुटनों में सिर टेककर अपना रोना याद आया। आस-पास उस मनोरंजन-स्थली में रंग-रेलियों का बाजार-सा लग गया था। पर, अमिता का मन एक ऐसे अंधकार से घिरता जा रहा था कि जिसमें कुछ नहीं सूझ पाता। उमा बाबू के समक्ष भी बेटी के भविष्य सम्बन्धी अनेक प्रश्न आ रहे थे। समस्याएँ उठ रही थीं। वह लगभग किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गए। फिर सहसा उन्होंने अपने मन से सब कुछ निकाल फेंका, सोचा—"इस समय यह सब कुछ भूल जा, होटल चलने पर सोच लेना।" वह देसाई सेठ से बातचीत में लग गए। अमिता सुधेश-दिनेश को साथ लिये पीछे-पीछे आ रही थी। वह भी भाइयों के कौतूहलपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देते हुए उस क्षण को भूल जाना चाह रही थी, जब त्रिमूर्ति की शरण में खड़े होकर वह पिता के चरणों में गिर पड़ी थी।

रामू वहीं बैठा मिल गया जहाँ उसे देसाई सेठ बैठा गया था। उसे पानी लाने के लिए भेजकर देसाई सेठ ने स्वयं दरी बिछाई और उमा बाबू के यह कहने पर भी कि 'इच्छा नहीं है' उसने टिफिन खोलकर दरी के ऊपर बिछे 'टाइम्स' पर डिब्बे सजाने शुरू किये। पीले चावल, सेव-गठिया, छोटी-छोटी पूड़ियाँ, अचार और चित्तीदार केले, सन्तरे; और इन सबकी मिली-जुली क्षुधा जगाने वाली सुगन्ध फैल गई! सुबह हल्का-सा नाश्ता करके ही चले थे, उमा बाबू। भूख लग आई। खाते रहे और एक सोच में घिर जाने से बार-बार बचते रहे। अमिता को भी इस प्रकार संबोधित किया उन्होंने जैसे सब कुछ भूल चुके हों। उन्हें कभी अमिता-कुमार की नीलकण्ठ यात्रा स्मरण हो आती, कभी महेश आदि का तिरस्कृत होकर लौटना स्मरण हो आता और कभी रेशमी-जगतू के मुकदमे में अपनी जीत। अमिता ने थोड़ा-सा ही खाया था कि उसका जी भारी हो गया। घबराहट अनुभव करती हुई वह न चाहते हुए भी पिता और देसाई की ओर पीठ कर दरी के एक किनारे पर करवट से लेट गई। पिता ने पूछा तो कह दिया, "जी घबड़ा रहा है। यह तेल का गठिया मुझे अच्छा नहीं लगता।"

रामू उधर स्टोव पर चाय बना रहा था। देसाई ने कहा, "अभी गरम चाय का कप लेना, ठीक हो जायगा, नहीं तो सन्तरा खाओ।"

अमिता ने लेटे-लेटे ही सन्तरा छील डाला। सुधेश-दिनेश भी उठकर उधर चले आए जिधर अमिता का मुँह था। उन्हें सन्तरे की फाँकें बाँटते हुए अमिता ने स्वयं दो-चार फाँकें खाई होंगी कि उसका जी जोर से मिचलाने लगा। उबाकियाँ लेते हुए वह बेचैनी से उठ खड़ी हुई और कुछ दूर हटकर उसने जो कुछ खाया था, सब उलट दिया। बहुत ही घबराई हुई वह फिर दरी पर आ लेटी। देसाई को तब जाने क्या हुआ, सहानुभूति दिखाते हुए उसने वकील साहब से धीरे से पूछा अंग्रेजी में—"Is she carrying ?" (क्या इसे दिन चढ़ रहे हैं?)

अंग्रेजी में ही वकील साहब ने दृढ़ता से कहा—"No ! no !! she is unmarried still." (नहीं, नहीं! वह तो अभी तक अविवाहित है।) अत्यन्त धीमे होते हुए भी अमिता ने उनकी यह बातें सुन लीं और आँचल से मुँह छिपाकर लेटे-ही-लेटे ही रोने लगी।

तभी उमा बाबू बोले, "दरी थोड़ी उधर और सरका लो, रामू की तरफ। फिर चाय पीकर कहीं और बैठेंगे।"

"हाँ, हाँ····!" उसी क्षण देसाई सेठ और सुधेश-दिनेश सब उठ खड़े हुए। अमिता भी मुँह फेरे उठी। फिर रामू ने डिब्बे समेटकर दरी स्टोव की ओर खींच ली। जब दरी पर फिर बैठे उमा बाबू तो उनका चेहरा देसाई के प्रश्न से अपमानित हुए 'अहं' की लाली से तिलमिला रहा था और दाँत आपस में किटकिटा उठे थे। देसाई सेठ ने कहा—"रामू, चाय उतारकर पान ला कहीं से देखकर। देख कोई भैया होगा उधर में।"

रामू कुछ देर बाद पान लेकर लौटा तो अमिता सब को चाय दे रही थी। उसने स्वस्थ मन से चाय देकर देसाई सेठ को यह जतलाने की चेष्टा की कि उनकी धारणा निर्मूल है। पर, वह जानती थी कि देसाई सेठ को धोखा देकर भी वह स्वयं को और उमा बाबू को धोखा नही दे सकती।

मन तो चाह रहा था कि पृथ्वी फट जाय और वह उसमें समा जाय। उमा बाबू के मन में एक आशंका थी कि कहीं देसाई सेठ की बात ही सच हुई तो? उनका मन भी उस समय बिलकुल उखड़-सा गया। कुछ समय और बीता। फिर लौटने की बेला आ गई। तब तक उमा बाबू ने अमिता से कोई बात नही की और देसाई सेठ को साथ लिये प्रायः उससे कुछ अन्तर पर ही चलते रहे। नौका भर गई और स्टीमर की ओर चली। तब सहसा एक दुर्घटना होते-होते बची। नौका से समुद्र में कुछ फासले पर खड़े स्टीमर पर चढ़ते हुए अमिता का हाथ स्टीमर के किनारे पर खड़े देसाई सेठ के हाथ से छूट गया और वह गिर पड़ी। पैर नौका पर न टिककर स्टीमर और नौका के बीच की झिरी में चला गया। उमा बाबू के आगे खड़े एक महाराष्ट्रियन ने झुककर अमिता की बाँह न पकड़ी होती तो वह सीधी समुद्र में गिर जाती और फिर न जाने क्या होता? एक शोर मच गया। "सँभालो! सँभालो!" उमा बाबू क्षण भर में पसीने से नहा गए। देसाई सेठ उधर घबड़ाये हुए लटके-से रह गए। सुधेश-दिनेश तो चीखकर रो पड़े थे। कुछ क्षणों की स्तब्धता के बाद नौका वाले यात्री फिर स्टीमर पर चढ़ने लगे, पर नाव को कुछ ऐसे ढंग से घुमा दिया गया था कि स्टीमर और नौका

के बीच अब कोई झिरी न रह गई थी।

उमा बाबू कुछ भी बोल नहीं पा रहे थे। उन्हें विश्वास हो गया कि अमिता की यह आत्महत्या की ही चेष्टा थी। वह बार-बार उस महाराष्ट्रियन युवक के प्रति कृतज्ञता से झुके जा रहे थे। अमिता स्वयं भी बहुत घबड़ा गई थी, हालाँकि उसने जान-बूझकर कुछ भी नही किया था। फिर भी वह इस क्षण यही सोचने लगी कि यदि मैं समुद्र में गिर ही जाती तो···। पर, इस कल्पना से भी वह सिहर उठी थी। आत्महत्या करना भी इतना सरल नही। उमा बाबू को उस क्षण पुत्री पर दया हो आई। वह उसे सान्त्वना देना चाहते थे, धैर्य देना चाहते थे और चाहते थे कि वह निश्चित हो जाय एवं यह समझ ले कि जो कुछ वह कर बैठी है, उससे पिता रुष्ट होकर भी उसे क्षमा कर चुके हैं। पर, देसाई की उपस्थिति के कारण उस लौटते हुए स्टीमर के डैक पर यह संभव नही था कि वह अमिता से कुछ कहते जबकि देसाई सेठ चुप ही नही रहता था। वह बराबर कुछ-न-कुछ बोल ही रहा था। उमा बाबू के लिए यह भी आवश्यक था कि वह उसकी बातों की उपेक्षा न करते! एलिफेंटा की गुफाएँ पर्वतीय प्रदेश में छुप गई थीं और अब चारों ओर समुद्र से घिरा एक गिरि-खण्ड ही दिखाई दे रहा था। ऊपर नीलाकाश जैसा स्वच्छ था, नीचे वैसा ही नील गहन वारिनिधि। तरंगों के आलोड़न से उछलने-वाला वही जल कभी-कभी मोती-सा उज्ज्वल चमक रहा था। उमा बाबू भी इसी तरह की एक गहराई में डूबे थे और अपनी दूरदर्शी बुद्धि से कुछ उज्ज्वल सीप खोज लाना चाह रहे थे, जो भविष्य में अमिता के शृंगार बन सकें, जो उसके जीवन-मार्ग पर लांछन के अंधे मोड़ न आने दें। और स्टीमर समुद्र की लहरों को चीरता हुआ बढ़ता जा रहा था। दूर से ही ताजमहल होटल के ऊँचे गुम्बद और 'गेटवे आफ इण्डिया' चमकने लगे थे। वेलार्ड पियर गोदी की ओर चिमनियों से निकलने वाला धुआँ आकाश में एक काली रेखा बना रहा था जैसी किसी जाड़े की सुबह में दौड़ते हुए रेल-इंजिन का धुआँ बनाता चलता है। देसाई सेठ स्वभाव-गत वाचालता से हरेक चीज का परिचय देता जा रहा था, इस ढंग से कि आस-पास वाले भी जान लें कि वह एक 'टूरिस्ट' का 'गाइड' है। उमा बाबू को यद्यपि उसका यह तौर-तरीका बिलकुल पसन्द नहीं आया था, तथापि वह इससे छुटकारा

भी तो न पा सकते थे। अमिता कभी-कभी छोटे भाइयों से बोलती थी, अन्यथा मौन ही चली आ रही थी। पिता समीप ही थे, फिर भी वह ऐसी स्थिति नहीं आने दे रही थी कि उनसे सामना हो। एक ऐसी लज्जा उसके मुँह पर थी जो गौने के बाद मायके लौटने वाली लड़की के चेहरे पर होती है। लेकिन इस लज्जा से भी अधिक उसकी मुखाकृति पर भय के चिन्ह बन-मिट रहे थे। मन पलायन माँग रहा था पर वह बंधन में बंदिनी की भाँति पिता के साथ आ रही थी। बेलार्ड पियर पर बाहर आते ही जब देसाई सेठ विदा हुआ और उमा बाबू सुधेश,-दिनेश और अमिता के साथ अपने होटल जाने के लिए बेबी टैक्सी में बैठे तो अमिता का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा।

चारों ही टैक्सी में पीछे बैठ गए। उमा बाबू और अमिता के बीच सुधेश था। दिनेश पिता की गोदी में बैठ गया था। उमा बाबू ने कहा, "सी व्यू होटल चलो, चर्च गेट।"

टैक्सी चल पड़ी। लगभग तीन मिनट तक कोई न बोला। दिनेश ने मौन तोड़ा, "पापा, कल फिर स्टीमर में चलोगे?"

थकानवश सुधेश कुछ ऊँघने लगा था। उसी अवस्था में वह धीरे-धीरे बोला, "नहीं पापा! हम समुन्दर पर नहीं जायेंगे। दीदी फिर डूबने लगी तो?"

"चल पगले! मैं कोई डूबती थी? मेरा हाथ ही छूट गया देसाई सेठ से।"

उमा बाबू को सुनकर सहसा विश्वास न हुआ। कुछ क्षण फिर मौन रहा। फिर गंभीर वाणी में उमा बाबू ने अंग्रेजी में बेटी से वार्तालाप आरंभ किया।

"एक भूल को दबाने के लिए दूसरी भूल करना, वह भी जान-बूझकर, नादानी में शुमार होता है।"

अमिता चुप रही।

उमा बाबू फिर बोले, "तुम्हारी माँ ने मुझसे दो-तीन बार कहा। उन्हें तुम्हारे लक्षण देखकर कुछ संदेह हुआ था। पर मैं ही उसे रोकता रहा। बेटा, जान पड़ता है, मामला काफी आगे बढ़ चुका है और अब हमें कोई रास्ता ऐसा निकालना होगा कि कोई बात बिगड़े नहीं।"

अमिता की गरदन लज्जा के भारी बोझ से नीचे झुकती जा रही थी और वह मन-ही-मन थोड़ी आश्वस्त हो चली थी, इसलिए कि उमा बाबू जो कुछ कह रहे थे वह उसे अभय देने के लिए पर्याप्त था. तथा उनका क्या कदम होगा, यह भी अभी पूर्णतः स्पष्ट नही हुआ था।

अमिता ने लगभग रुँआँसी होकर कहा, "बाबूजी, मे सत्य कहती हूँ, मैंने आत्महत्या की चेष्टा नही की थी!····"

सुधेश-दिनेश को यह वार्तालाप नही रुचा, क्योंकि उनकी समझ से परे था, अतः वे दोनों एक-दूसरे को टैक्सी के शीशे में से बाहर की वस्तुएं दिखाने लगे। उमा बाबू किंचित् गंभीर स्वर में कहने लगे, "मैं मानता हूँ, तुमने आत्महत्या की चेष्टा नहीं की, पर जो कुछ तुम से बन गया है, वह तो घर भर की हत्या करने जैसा ही है।" उमा बाबू से यों पहली बार अन्तर की मर्मान्तिक पीड़ा व्यक्त हुई।

अमिता कुछ बोल न सकी। उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। उमा बाबू ने उसका मार्मिक दुःख की छाया से मुरझाया हुआ चेहरा देखा और फिर सधे हुए शब्दों में बोले, "बेटी, मैं वकील हूँ। बहुत से अपराधियों की मैंने रक्षा की है, क्योंकि मैं जानता हूँ, जान-बूझकर कोई अपराध नहीं करता, उसे स्थितियाँ विवश कर देती है। हमारी आज की सामाजिक व्यवस्था में वह लाचार हो जाता है और जब वह अपराधी घोषित कर दिया जाता है तो उसके हृदय में पछतावे के बादल घुमड़ते हैं और नेत्रों से सच्ची वेदना बरसने लगती है। तुम तो मेरी पुत्री हो, मेरी सबसे बड़ी सन्तान! तुम्हारी रक्षा भी मैं करूँगा। तुम निर्भय रहो। और जैसा मैं कहूँ, वैसा करो। तुम्हारा सब मंगल होगा। बेटा! सन्तान का बड़े-से-बड़ा अपराध भी माता-पिता के लिए क्षम्य है। 'गिरि निज सिरनि सदा तृण धरहीं।···'

अमिता ने अपना सिर अब घुटनों में छिपा लिया था। सुधेश-दिनेश ने उसकी ओर ध्यान से देखा और पूछ बैठे—"पापा! दीदी क्यों रो रही है?"

टैक्सी ड्राइवर ने भी पीछे दृष्टि फेंकी। उमा बाबू ने अंग्रेजी में ही कहा, "अमी, रो मत। रोने से तुम अपनी और मेरी स्थिति को पेचीदा बना दोगी

अब साहस का संचय कर और आगे जीवन में जो कुछ आये उसका सामना रोकर कभी मत करना। मैं वैसा पिता नहीं हूँ, जो केवल धैर्य के सहारे अपनी संतति को कठोर संसार के पारावार में असहाय छोड़ देते हैं। मैं तुझे विपदा से सकुशल बाहर ले आऊँगा।"

अमिता कुछ सँभली और सोचने लगी, "बाबूजी, कहीं कुमार पर तो रुष्ट न होंगे।.... माँ से वह अब कैसे मुँह छुपायेगी? बढ़ते हुए पेट को लेकर वह कैसे जियेगी?" सोचते-सोचते उसका बायाँ हाथ दाहिनी बगल के नीचे आ गया और दायीं हथेली अर्द्धमुख को ढंककर मस्तक पर आ ठहरी। नेत्र जड़ हो गए जैसे पत्थर के। 'बाबूजी साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि वह क्या करेंगे? उन्होंने क्या सोचा है? हे भगवान्, यह क्या हो गया? यह क्या हो रहा है?....क्या होगा अब?' पिछले दिनों की घटनाएँ बारी-बारी से सामने आतीं और अदृश्य हो जातीं।

टैक्सी फ्लोरा फाउण्टेन से घूमकर चर्च गेट स्ट्रीट की ओर मुड़ रही थी। सामने से समुद्र की ओर से शीतल पवन के झोंके आते अनुभव हुए। सुधेश बोला, "दिनेश, देख अब होटल आने वाला है।"

पर 'सी व्यू' जाने से पहले ही उमा बाबू ने टैक्सी 'कस्मोपोलिटन' के सामने रुकवा दी और बच्चों से बोले, "यहाँ का खाना मुझे अच्छा लगता है। लगे हाथ खाते चलें। तुम लोग थक गए होगे। लौटकर सो जाना।"....धीरे से वह अमिता से बोले, "बेटा, अन्दर जाकर 'वाश बेसिन' में मुँह धो आओ! थोड़ा हल्का-फुल्का खा लेना।"

अमिता 'वाश बेसिन' के ऊपर लगे दर्पण में अपना मुँह देखकर बाल ठीक करने लगी। पर, जितना वह अपना मुँह धोने की कोशिश करती, दर्पण की अमिता उसे उतनी ही उदास, मुरझाई हुई दिखाई देती। उसे लगा जैसे उसका मुँह पीला पड़ गया है, वैसा ही जैसा उसने एलिफेंटा में आमोद मनाने वाली कई लड़कियों का देखा था। एक बार मन में फिर भय का संचार हुआ और वह शीघ्रता से बाहर आकर उमा बाबू के पास बैठ गई।

भोजन करते-करते आठ बज चुके थे। अमिता की घबड़ाहट शनैः शनैः कम

हो गई थी और उसने भरपेट खा लिया था। 'फ्रूट सलाद उसे बहुत अच्छा लगा। और उसमें पड़ी ठण्डी आइसक्रीम खाते-खाते तो एक लकीर बँध गई। जी नहीं मतलाया। 'सी व्यू' आते-आते उन्हें पौने नौ बज गए; क्योंकि उमा बाबू मैरिन लाइन पर पड़ी बेंचों में से एक पर आ बैठे थे। सुधेश-दिनेश ने भरे पेट होने पर भी नारियल पिया था। अमिता से कहा भी दिनेश ने, "दीदी, पेट हल्का हो जायगा, तुम भी पीलो।"

अमिता के मन-प्राण में एक ऐंठन-सी हुई--'काश! दिनेश की बात सही हो सकती।' 'सी व्यू' लौटने पर वह उदासी से घिरी अपने पलँग पर लेट गई और एक पुराना 'डाइजेस्ट' उलटने-पुलटने लगी। पढ़ने में तो मन था ही नहीं। सुधेश-दिनेश भी एक पलँग पर लेट गए और उमा बाबू ने अपने पलँग के समीप रखा रेडियो खोल दिया। "नक़्श" की गज़ल आ रही थी---

कलियों ने जब चमन में हँसने की आरज़ू की।
रोने लगीं बहारें दुनिया-ए रंग-बू की॥
शामे फ़िराके ग़म की फैली हुई सियाही--
नज़रों ने जुल्मतनों ने जलवों की जुस्त जू की॥
कितने ही रँग यों तो क़ौसे कज़ाँ ने बदले--
रँगत न पाई फिर भी उस हुस्न-ए शोला रू की॥
पिछले पहर जो मेरी आँखों से अश्क बरसे--
तारों ने आसमाँ पर हँस-हँस के गुफ़्तगू की॥

उमा बाबू 'ईज़ी चेयर' पर बैठे गज़ल सुनते रहे। पर, मुद्रा उनकी गंभीर थी वह विचारमग्न थे। तभी देसाई सेठ आ गए। उनके साथ कुछ फाइलें भी थी। अगले दिन की पेशी से पहले कुछ महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श करना आवश्यक था; क्योंकि फिर कचहरियाँ बन्द होने वाली थीं। उनके आने पर इसलिए रेडियो बन्द कर दिया गया। अमिता को नींद नहीं आ रही थी। वह रेडियो का बन्द किया जाना सहन न कर पाई। बाबूजी से कहे भी कैसे कि आकाशवाणी पर कुछ समय बाद ही अभी कवि-सम्मेलन होने वाला है और वह जान लेना चाहती है कि उसके कुमार आए हैं अथवा नहीं। देसाई सेठ का आगमन भी इसलिए उसे अरुचिकर

प्रतीत हुआ। वह मन मारकर उठ बैठी और खिड़की से बाहर 'मैरिन लाइन' का दृश्य देखने लगी। हल्की शीतल हवा की लहरें समुद्र से इसी ओर आ रही थीं। सड़क पर मोटरों का ताँता लगा था। और पटरी पर घूमनेवालों की भीड़ थी। दूर दायीं ओर चौपाटी की बत्तियाँ दीख रही थीं। पर, अमिता का मन जहाज के पंछी की तरह बार-बार रेडियो के इर्द-गिर्द मँडराने लगता। उसे खोलने के लिए छटपटा उठता। कुछ समय बीतने पर देसाई सेठ चले गए और एक मानसिक थकान अनुभव करते हुए उमा बाबू ने स्वयं ही रेडियो खोल दिया। बटन दबाकर बैरे को बुलाया और उससे दूध लाने को कहकर पलँग पर लेट गए। रेडियो से कविता के स्वर निःसृत हो रहे थे --

पावस की रिमझिम बेला में हममें अपने स्वप्न सजाये।
जैसे बारिद अपने उर में चंचल चपला चतुर चुराये॥
बीत गए जीवनहारी क्षण जिनमें गहरी विकल प्रतीक्षा।
पलक कपाटों ने प्राणों की, की थी जब निशि-वासर रक्षा॥
मुखर कपोती ने फिर अपना अरमानों का नीड़ सजाया।
मेघों के घूँघट से चन्दा आज नया अमृत छलकाये॥
पावस की रिमझिम बेला में हमने अपने स्वप्न सजाये।
जैसे बारिद अपने उर में चंचल चपल चतुर चुराये॥
विरहातप से झुलसा जीवन अधरों की मुसकान बन गया।
नव पल्लव परिधा पहनकर स्वर्ण सवेरा आज खिल गया॥
जो सुषुप्त निष्प्राण बने थे, फूट गये अंकुर चेतन हो--
जड़-चेतन का कण-कण अभिनव जीवन का वरदान लुटाये॥
पावस की रिमझिम बेला में हमने अपने स्वप्न सजाये।
जैसे बारिद अपने उर में चंचल चपला चतुर चुराये॥
निर्जन, एकाकी, सूना मन, मोर बना उन्मन मतवाला।
प्रेम-पियूष लुटाकर किसने मोहा, बरबस जादू डाला॥
लोचन दो रतनार कजीले स्नेह-समर्पण में झुक जाते।
पा अपना श्रृंगार सनेही छबि चुप मन्द मधुर मुसकाये॥

पावस की रिमझिम बेला में हमने अपने स्वप्न सजाये।
जैसे बारिद अपने उर में चंचल चपला चतुर चुराये ।।
इस बेला में जो भी पाया क्रूर नियति कुछ देख न पाये।
मन में मधुर मिलन की स्मृति निर्मल लहर सदा लहराये ।।
श्वेत श्याम उन्मुक्त जलद सम जीवन हो स्वच्छन्द हमारा।
जिस क्षण का अभिसार मिले वह नश्वर क्षण शाश्वत बन जाये ।।
पावस की रिमझिम बेला में हमने अपने स्वप्न सजाये।
जैसे बारिद अपने उर मे चचल चपला चतुर चुराये ।।

"क्या कुमार की आवाज नही है?"

अमिता ने कहा, "हां पापा! उनकी ही मालूम देती है।"

और दूसरे ही क्षण वाचक का स्वर आया,--"ये थे दिल्ली के कुमार शुक्ला। अब मधुरजी अपनी रुबाइयाँ सुनाएँगे।"

"अच्छा, कुमार यही है?"--एक क्रिया-शक्ति से भर गए उमा बाबू और कमरे से बाहर निकल गए। अमिता चिंतित हो उठी, "बाबूजी कहाँ गए?" पाँच मिनट बीतते-बीतते उमा बाबू ने लौटकर कहा, "रेडियो फोन कर आया हूँ। कुमार को यही बुलाया है। रूम नम्बर और पता दे दिया है। खाने के लिए भी मैनेजर को बोल दिया है।"

अमिता ने सुना तो कलेजा धक से रह गया--'हाय! बाबूजी उनसे क्या कहेंगे? वह क्या सोचेंगे? मैंने उन्हे भी कहीं का न छोड़ा।'...और वह खामोश खड़ी उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगी जब कुमार आकर 'बैल' देगा। रेडियो बन्द कर दिया उसने, तो उमा बाबू बोले, "क्यों? क्यों? सुनो, अभी तो और कविताएँ आएँगी। तुम्हारी तो पसन्द का कार्यक्रम है।" रेडियो से फिर स्वर फूट पड़े। पर, अमिता के कान तो मानो बहरे हो चुके थे। पीठ मोड़े वह पलँग पर लेटी रही।

धीरे-धीरे ग्यारह बज चुके थे। पर, कुमार अभी तक नहीं आया था।

अमिता तो बेचैन थी ही। पर, उमा बाबू की विकलता भी कम नहीं थी। दुबारा आकाशवाणी पर फोन करना उन्होंने उचित नहीं समझा और कमरे की बत्तियाँ बुझाकर सोने की तैयारी करने लगे। लेटते-लेटते वह जैसे अमिता को सुनाने के भाव से बुदबुदाए, "शायद सुबह आए। क्या तुम्हें कुछ पता है, वह कितने दिनों के लिए यहाँ आया है?"

अमिता जैसे सोती-सोती जागी, "नहीं, मुझे पता नहीं।"

उमा बाबू ने पलँग पर लेटकर हल्की ऊनी चादर ओढ़ ली और 'बैड स्विच' दबा दिया। उन्हें स्वभावानुसार जल्दी ही नींद आ जाती थी। लेकिन कमरे की इस नीरव शान्ति में भी अमिता के भीतर भारी अशान्ति मची हुई थी, उसकी आँख नहीं लगी। कमरे में एकदम अँधेरा नहीं था। बाहर की गैलरी में जल रहे लट्टुओं का प्रकाश रोशनदान के शीशे पर पड़ रहा था। मुख्य द्वार में भी कमर से ऊपर शीशे ही लगे थे। इससे हल्का-हल्का ऐसा प्रकाश था कमरे में कि छायाएँ पहचानी जा सकती थीं। नीचे से मेरिन लाइन की ओर से आने वाली या उधर जाने वाली मोटरों के सरपट दौड़ने से टायरों की सरसराहट कभी-कभी स्पष्ट सुनाई दे रही थी और उनकी रोशनी चर्च गेट की ओर मुड़ते हुए किसी कोने की बिल्डिंग के शीशों पर पड़कर इस कमरे के शीशों पर भी प्रतिबिम्बित हो जाती थी। और निरंतर आ रहा था समुद्र की उत्ताल तरंगों का भयावह रोर! हर गूँज के साथ तरंगों के थपेड़ों से पुश्ते की दीवार जैसे रह-रहकर चीत्कार कर उठती थी। वैसा ही एक चीत्कार अमिता के भीतर मचा हुआ था और वह आँखें फाड़े पड़ी थी। कल्पना के पक्षी भी बेचैनी के नीड़ में सो गए थे। संकल्प-विकल्प का चक्र भी इसलिए गतिहीन हो गया था। शून्य से घिरी अमिता निश्चेष्ट, निष्क्रिय-सी पड़ी थी, दिल-दिमाग से खाली!

कोई पौने बारह बजे होंगे, दरवाजे पर किसी ने आहिस्ता से दस्तक दी। लेटे-लेटे ही अमिता ने गरदन उठाई। शीशे पर जो छाया-चित्र चमका, वह कुमार का था, अमिता ने पहचान लिया। हृदय का स्पन्दन तीव्र हो गया। आहिस्ता से उसने कहा, "आई!" और एक बार उमा बाबू के पलँग की ओर

ध्यान से झाँककर उसने आगे बढ़ चटखनी इतनी सावधानी से खोली कि आवाज़ तक न हुई। कुमार सामने था।

"कुमार!" लगभग विह्वल स्वर में उसने कहा और कुमार की छाती पर सिर टेक दिया। वह बहुत भयभीत थी।

कुमार ने आगे बढ़ उसकी पीठ पर हाथ रखा। पर, अगले क्षण ही कुछ सतर्क हो वह एक कदम पीछे हटकर कानाफूसी के स्वर में पूछ बठा, "बाबूजी सो गए है?"

"हाँ कुमार!" अमिता एक अकिंचन असहाय नारी की तरह अत्यन्त करुण स्वर में बोली, "उन पर सब कुछ प्रकट हो चुका है। तुम मेरे साथ इसी समय दूर चले चलो, कुमार! नही तो मै प्राण दे दूँगी।···· मै गोलियाँ नहीं खा सकी कुमार,····मै नही खा सकी···!" अमिता का कण्ठ गीला हो गया।

कुमार सुनकर अवसन्न, किकर्तव्यविमूढ़, हत्प्रभ-सा रह गया। "अमिता, यह सब कैसे हो गया? समय से पहले कैसे हुआ?"

"कुमार!" अमिता का कण्ठ ऐसा भर्राया हुआ था कि वह स्वर कानाफूसी का स्वर न रहा।

कुमार कह रहा था, "लेकिन यह नही हो सकता। बाबूजी···हमें क्षमा कर सकते हैं, अमी!" कुमार ने उसके कण्ठ पर हाथ रखा और एक कदम कमरे की ओर बढ़ते हुए उसने जैसे अमिता की एक आशा को निराशा बना दिया। कण्ठ से उसका हाथ अमिता के कंधे पर आया, फिर वह उसकी हथेली हाथ में लेकर कमरे के भीतर एक कदम और बढ़ गया।

"कौन?·····कुमार आ गए क्या?" कहते हुए उमा बाबू जग गए। "आओ, आओ।" वह कहते रहे और अमिता ने धड़कते हृदय से बत्ती जला दी। "अभी लेटा ही था। आँख लगी ही होगी। पर, माई डियर! बड़ी देरी कर दी?"

कुमार आश्वस्त स्वर में बोला—"बाबूजी! पार्टी में देरी हो गई, बहुतेरा पीछा छुड़ाना चाहा। पर, यहाँ एक मिसिज खेतान हैं, उनका कुछ साहित्यकारों से अच्छा परिचय है। उन्हीं की ओर से 'वोल्गा' में डिनर

पार्टी थी। न चाहते हुए भी बँधना ही पड़ा!"

"ठीक!" उमा बाबू ने गंभीरता से कहा और एक अर्थपूर्ण दृष्टि फेंकते हुए उन्होंने पूछा, "तुम कविताएँ कैसे लिखते हो कुमार?"

कुमार ने विनय-भाव से गरदन झुकाते हुए कहा, "बाबूजी, यह तो मैं स्वयं भी नही जानता! न जाने हृदय, मस्तिष्क और लेखनी में कौन अज्ञात शक्ति एक सूत्र उत्पन्न करती है कि कविता बन जाती है। हाँ, सबसे पहली कविता मैंने उस दिन लिखी थी जब माँ ने पिताजी के निधन की बात सुनाते हुए अपने आँसुओं को रोकने की असफल चेष्टा की थी····"

"सूत्र मिला! शायद तुम कहना चाहते हो कि वेदना ही कविता की जननी है।"

"हाँ, यह एक सीमा तक सही है, बाबूजी।"

"कुमार!" उमा बाबू ने पलँग के पास ही नीचे रखे स्लीपरों में पैर डालते हुए कहा, "मैंने यहाँ भी तुम्हारे लिए खाना रखवा दिया था। बगल वाले कमरे में थाली रखी है न, अमिता?···· कुछ भूख हो तो खा लो, क्योंकि ऐसी पार्टी में खाया कम जाता है, लोगों की तारीफ करने में या अपनी ही तारीफ के पुल बाँधने में समय अधिक खर्च होता है।" मन्द-मन्द हँस पड़े उमा बाबू, "मुझे भी अनुभव है ऐसी पार्टियों का।"

अमिता का हृदय अब तेजी से नहीं धड़क रहा था, और कुमार भी भीतर मन में यह सोच रहा था, कि उमा बाबू सब जान जाने पर भी शायद अनजान बने हैं। यही उनकी महानता है। उसके मन में एक श्रद्धा उत्पन्न हो चली थी। उनकी हँसी का स्वागत करते हुए कुमार बोला, "लेकिन, बाबूजी! मैं अपनी या दूसरों की तारीफ के मामले में काफी 'रिज़र्व' रहता हूँ। फिर आजकल के कवियों और कवि-सम्मेलनों से दूर रहना ही भला है।"

कुमार ने चाहे किसी भाव से यह बात कही हो, उमा बाबू को तो अक्षरशः सत्य मालूम हुई और बीच में ही वह कह उठे, "खास तौर से तब जब कि लड़कियाँ इस 'फील्ड' में आगे आ रही हों·····"

कुमार को उनकी बात कुछ अस्पष्ट लगी, इसलिए उसकी पेशानी पर

कुछ रेखाएँ खिंच गईं। तुरन्त ही उमा बाबू आगे बोले, "मेरा मतलब है, जहाँ लड़कियाँ 'फ्रीली मिक्स' (freely mix) हों, वहाँ कभी-कभी कवि अपने रास्ते से कुछ बहक जाते हैं।"

"नहीं, बाबूजी!····" कुमार बात के प्रवाह में कह उठा, "कुछ माने हुए कवियों का तो खयाल है कि नारी के संपर्क में आकर ही कविता मुखर होती है।"

उमा बाबू ने गरदन हिलाई जैसे अनुभवी वकील ने अपराधी पकड़ लिया हो और कुमार सम्हल गया, "लेकिन जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं वेदना को ही कविता की प्रेरणा मानता हूँ, बाबूजी!"

"हुँ, हुँ, हुँ", ओठ खोले बिना उमा बाबू एक कृत्रिम हँसी हँसे। अमिता पर जो कुमार की निगाह गई तो वह हाथ से स्पर्श पाई हुई छुई-मुई की तरह कुम्हला गई थी।

शीघ्र ही उमा बाबू उठते हुए बोले, "आओ, खाना न खाओ तो कुछ मिठाई तो खा ही लो····" उन्होंने कुमार और अमिता पर एक अर्थभरी दृष्टि डाली जिससे कुमार और अमिता दोनों ही उनका यह भाव समझ गए कि बाबूजी मिठाई खिलाने के उतने इच्छुक नहीं हैं, जितने कि उस ओर कुमार से एकान्त-वार्ता करने के। कुमार उनके साथ बगल वाले कमरे की ओर बढ़ चला। अमिता वहीं अपने पलँग पर बैठी रह गई, बेबस। एक शून्य से घिरी, एक बड़े प्रश्नवाचक में लिपटी हुई।

"कुछ रसगुल्लों की जगह तो होगी ही।"

"वैसे तो, बाबूजी, खूब खाकर आया हूँ। और डेरे पर लौटने की जल्दी भी है।"

"अच्छा? कहाँ ठहरे हो?"

"आज ही दोपहर बाद 'डी––लक्स' से पहुँचा था। सेन्ट्रल के रिटायरिंग रूम में ही ठहरने का विचार था। कल तो लौट ही जाना चाहता हूँ।"

इतनी वार्ता के पश्चात् अमिता को और कुछ नहीं सुनाई दिया। वह बेचैन हो उठी। न बैठते ही बनता था, न लेटते ही।

"यहाँ भी 'काट' (पलंग) का बन्दोबस्त है, यहीं सो रहना।"

इससे पूर्व कि कुमार स्वीकारात्मक उत्तर दे पाता, उमा बाबू बोले, "मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं, इसलिए मैं तुम्हें इधर ले आया हूँ····" कुमार ने अपनी काली शेरवानी के पेट के ऊपर वाले दो-तीन बटन खोले और वह कुछ इत्मीनान से कुरसी पर उमा बाबू की ओर देखता उसी प्रकार बैठ गया जैसे कोई शिष्य दत्तचित्त होकर गुरु के समीप बैठ जाता हो। उसके मन में न तो कोई डर की भावना थी, न उसकी हृदय-गति तीव्र हुई थी। वह इस बात पर जैसे यकीन किए बैठा था कि उमा बाबू का दृष्टिकोण इस मामले में पूर्णतः सहानुभूतिपूर्ण होगा। उमानाथ तब बोले, "संयोग से यह भी अच्छा ही हुआ कि तुम यहाँ मिल गए, अन्यथा मेरे लिए समस्या कुछ टेढ़ी होती।" उत्तरोत्तर गंभीर वाणी में उमा बाबू कहने जा रहे थे—"मैं तुम्हें शायद बोलने का अवसर कम दूँगा और अपनी बात तुम्हारे सामने विस्तार से कहूँगा।" कुछ रुक कर वह आगे बोले—"कुमार! मैं वकील हूँ और इस नाते मेरे पास बहुत से मामले आते हैं। तरह-तरह के लोगों के सम्पर्क में अब तक आया हूँ और तरह-तरह की सामाजिक घटनाओं व राजनीतिक पैंतरेबाजियों की पेचीदगियों को मैंने भीतर से जाना है। साथ ही आजकल के जमाने का भी मुझे अनुभव हुआ है। कब और कैसी हवा बहती है, इसका ज्ञान शायद तुम्हें इतना नहीं, जितना हमें होता है, कुमार! आज बहुत सी बातें ऐसी हो रही हैं, जो कभी सुनी-देखी नहीं गईं। जैसे विधवाओं का किसी मर्द को कर लेना या समाज-शास्त्र के किसी अधेड़ कुँवारे प्रोफेसर का अपनी ही कन्यावत् छात्रा से प्रेम-विवाह कर डालना या···· बहुत सी बातें हैं, कुमार! बेटे का बाप को विष दे देना, क्योंकि बाप उसे मनपसन्द लड़की से शादी नहीं करने देता! वगैरह, वगैरह और इससे कुछ मुख्तलिफ एक और तरह की हवा भी बह रही है। हमारे पास ही एक ऐसा मुकदमा आया था····जगतू और रेशमी का मामला था एक।····" और फिर वकील साहब ने उस मुकदमे का किस्सा विस्तार से सुनाकर यह भी समझाया कि किस तरह उन्होंने जगतू को निर्दोष साबित कर दिया था।

कुमार यद्यपि उमा बाबू से पहले भी कई बार मिला था, तथापि इतना खुल कर उन्होंने शायद ही कभी कोई बात कही हो। फिर भी उसे आश्चर्य नही हो रहा था, क्योंकि अमिता ने द्वार खोलते ही जो कुछ सूचना दी थी उसी के प्रकाश में वह चुप बैठा वकील साहब का निष्कर्ष-निर्णय जान लेने को उत्सुक था। उमा बाबू ने आगे कहा, "मैं समझता हूँ, गाँवों में ऐसे किस्से तब होते है, जब वहाँ शहर से या शहर की हवा लेकर लोग लौटते है। और कुमार, शहर की सभ्यता-संस्कृति अब भारत की पुरातन सस्कृति शायद नहीं रह गई है। सदाचार की परिभाषा आजकल तेजी से बदल रही है। पाश्चात्य सभ्यता, जो छात्र-छात्राओं को सभी मर्यादाएँ तोड़कर जीवन को उच्छृंखल बनाना सिखाती है, के वातावरण में पड़ने वाले आज के युवक-युवती विश्वविद्यालयों से ही शायद माँ-बाप बनकर निकलने लगे हैं···· उनकी जबानों पर ऐसे शेर होते है——

आशिकों को रस्मे ऐशे दुनियावि रायज नही,
कैस कब दूल्हा बना लैला कहाँ ब्याही गई।।"

शर्म से गरदन झुक गई कुमार की और उमा बाबू ऐसे ही कुछ जोश में बोलते जा रहे थे जैसे किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष जिरह कर रहे हों, "ऐसा जमाना आ गया है कि अखबारों में रोज बलात्कार के समाचार पढ़ने को मिलते है, नाले-मोरियों में, कूड़ाघरों के समीप, टाट-बोरों में लिपटे नाजायज बच्चे बरामद होते है, पुलिस में रिपोर्ट होती है। उस दिन ही हमने पढ़ा था, इलाहाबाद में युनिवर्सिटी ग्राउण्ड के बाहर मेन रोड के साथ ही पटरी पर एक बच्चा मटके मे पड़ा मिला था पुलिस को। कुमार! जब हम पढ़ते थे, अँग्रेजो का जमाना था; फिर भी एक घण्टा (पीरियड) मजहब का होता था। गीता और धर्म की प्रेरक पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। आज····आज क्या पढ़ाया जाता है, तुम ही जानो! संस्कृति और सांस्कृतिक प्रोग्रामों के नाम पर क्या-क्या हो रहा है, तुमसे छिपा नहीं है। शायद····" एकदम शान्त, गंभीर होकर कहा उमा बाबू ने, "तुम भी ऐसे ही किसी सांस्कृतिक प्रोग्राम के शिकार हुए हो।" कुमार पर घड़ों पानी पड़ गया। "लेकिन,

मेरे बच्चे! अब एक गलती कर बैठने के बाद मैं नहीं चाहता कि तुम या अमिता कोई दूसरी गलती भी कर बैठो। यह न समझना कि तुम्हारी इन गलतियों के असर से हम बच जायेंगे। नहीं, माई डियर, हम पर भी इसका असर है। हम जानते हैं कि कसूर 'रेशमी' की ही तरफ से ज्यादा हुआ करता है। खैर! माई डियर! अमिता और तुम्हारे जीवन का प्रश्न अब आपस में बँध गया है। तुम दोनों साथ ही डूबोगे, साथ ही तैरोगे। कोई दूसरा पिता शायद अमिता के प्रश्न को तुम्हारे प्रश्न से अलग कर सकता था। पर, कुमार! माई डियर, मैं तुम दोनों को ही एक नया, लहलहाता जीवन बिताते देखना चाहता हूँ। पार्वती ऐसी स्थिति में शायद अमिता का मर जाना भी दुःखपूर्ण न मानती। लेकिन कुमार! मैं कह चुका हूँ, मैं अमिता की और तुम्हारी रक्षा करना चाहता हूँ और उस तीसरे अंकुर की भी, जो शायद नये इतिहास का निर्माण करेगा!" कहते-कहते भाव-प्रवण हो आये उमा बाबू। "अमिता आज अपने आपको समुद्र के हवाले कर देना चाहती थी। यही इस बात का सबूत है कि भूल का मौका शायद उसने दिया। और कुमार! मैं अमिता को जानता हूँ, उसकी इच्छा के विरुद्ध जब कोई बात हो जाती है तो वह अपने पापा से जरूर कहती है। पर, आज तो उसने 'त्रिमूर्ति' के समक्ष अपना हृदय खोलकर रखा है। तभी तो मैं इसे जान सका। सच्चे हृदय से अपराध स्वीकार करने वाले को ईश्वरीय क्षमा मिलती है। मैं तुम्हारी सिविल मैरिज करा सकता हूँ—मुझे इस बात की चिंता नहीं कि तुम 'शुक्ला' हो और मैं 'शुक्ला' नहीं हूँ। आज अन्तर्राष्ट्रीय विवाह हो रहे हैं, अन्तर्जातीय तो बहुत साधारण बात है। मुझे इस बात की भी चिंता नहीं कि पार्वती दकियानूसी है और वह इसे पसन्द भी नहीं करेगी। मैं इस बात से भी चिंतित नहीं कि समाज मेरी नुक्ताचीनी करेगा! कुमार, इन बातों से मैं आगे बढ़ गया हूँ। चिंता एक और है, वह है कि मैं तब तक के लिए अमिता को घर से दूर रखना चाहता हूँ जब तक कि····समझे? और यह तभी हो सकता है, माई डियर, जबकि उसकी सार-सँभाल का पूरा जिम्मा तुम अपने पर लो। हाँ···वह काम होने के एक मास बाद जब अमिता के बदन में कुछ ताकत आ जाय,

तुम कोर्ट में हाजिर होकर सिविल मैरिज कर लेना। मैं खुद करा दूँगा, कुमार! यह काम हो अब भी सकता था, लेकिन अब डर है कि अमिता का पीला चेहरा और उसकी चाल-ढाल भरी अदालत में कोई भेद न खोल दे।"

उमा बाबू कमरे में टहलते-टहलते कानाफूसी के स्वरों में, किन्तु पूरी दृढ़ता से कह रहे थे, "मैरिज के कुछ दिनों बाद ही तुम वहाँ से अपना बच्चा भी ला सकोगे। पर, तब तक बिलकुल एकान्त में, यानी अपने लोगों से दूर ही रहना होगा। दूर-दूर नयी-नयी बस्तियाँ बस गई हैं, दिल्ली में अब। कोई कठिनाई न होगी!···पार्वती का आज पत्र आया है। वह अपने भाई के यहाँ कल तक चली जायगी। इस बीच ही उसे सूचित कर दिया जायगा कि अमिता होस्टल में है, क्योंकि घर पर पढ़ाई ठीक नहीं होती थी। इसी तरह तुम्हें अपनी माँ का और अपना प्रबन्ध भी करना होगा! रुपये के लिए कभी किसी का मुँह न देखना, कुमार! मेरे पास आने में कभी न डरना। समझे, माई डियर। मुझ पर विश्वास करो। मैंने अपने दिमाग पर बेहद जोर डालकर यह सब रास्ता ढूँढ़ निःकाला है। सिर्फ अपनी अमिता की ही खुशी के लिए नहीं, वरन् तुम्हारी खुशी के लिए भी।···और इसलिए कि मैं भ्रूण-हत्या नहीं चाहता, कुमार! विधि के विधान को मैं नहीं बदलना चाहता!" एक दीर्घ निश्वास छोड़कर उमा बाबू थके-से कुर्सी पर बैठ गए। माथा दाहिनी हथेली पर आ ठहरा।

कुमार बैठा रह गया जैसे किसी ने 'मिसमरेजम' किया हो। परास्त खिलाड़ी की जैसी निराशा के स्वर में उमा बाबू बोले, "कुमार! This university education needs a complete change to save the country from utter chaos!" (देश को संपूर्ण विनाश से बचाने के लिए विश्व-विद्यालय शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है)।

और फिर वह शान्त हो गए। कुमार ने थाली के पास प्लास्टिक की छोटी तश्तरी से ढका रखा पानी का गिलास उमा बाबू की ओर सरका दिया। और आदर भाव से कहा उसने, "बाबूजी! मैं अपनी भूल स्वीकार कर चुका हूँ। अमिता से पहले ही मैंने कहा था कि बाबूजी इतने छोटे दिल के नहीं कि

हमें क्षमा न कर दें।....." उमा बाबू के पैर छूते हुए कुमार ने आर्द्र कण्ठ से कहा, "बाबूजी! अमिता की ही तरह मैं भी आपका ही हूँ। जो बातें बच्चों को यूनिवर्सिटी में नहीं सिखायी जाती, वह घर में माता-पिता सिखाते हैं। मैं अभागा हूँ कि मेरे सिर से पिता का साया जल्दी ही उठ गया। पर, जब से मैंने अमिता को अपना माना है, तब से ही सच मानिये, मैंने आपको पिता-तुल्य करके ही देखा है।.... मेरी माँ मुझसे भी बहुत आशाएँ रखती है और आपकी बात स्वीकार करते हुए भी मैं अभी उसे अपने विषय में कुछ भी बता नहीं सकूँगा। वह शायद इसे सहन न कर सके। इसमें उसका दोष भी क्या है। हमारे समाज की पुराने खयालात की स्त्रियाँ, जिनका मस्तिष्क, एकदम अपढ़ होने के नाते, बिलकुल विकसित नहीं हुआ है, कुएँ के मेढ़क की भाँति एक सीमित संसार में ही रहती हैं और उससे बाहर की हर चीज उनके लिए पाप होती है, अछूत होती है और उधर दृष्टि करना भी नरक ले जाने के लिए काफी होता है। ....लेकिन बाबूजी, समय आने पर, मैं विश्वास रखता हूँ, मेरी माँ मेरी बात मान लेगी, क्योंकि वह मेरी माँ है!"

"ठीक है! कुमार, माई डियर। मेरी भी लव मैरिज ही है, पर हमने तुम्हारी तरह मर्यादाएँ तोड़ने की कोई जल्दी नहीं की।" उमा बाबू ने पानी पी लिया--"लेकिन, पार्वती उतनी 'एक्टिव' (सक्रिय) कभी नहीं थी, जितनी आजकल की लड़कियाँ देखी जाती हैं।" मुस्कान से उमा बाबू का चेहरा खिल उठा। पर कुमार पूर्ववत् गंभीर था। अब उमा बाबू ने कहा, "अच्छा, अब तो एक रसगुल्ला खा लो।"

"नहीं, बाबूजी!" कुमार ने आर्त वाणी में कहा, और उठकर उसी कमरे की ओर चला जिसमें से कि वे दोनों इधर आये थे।

"तो अब सो रहो। सुधेश-दिनेश के उस ओर तुम्हारे लिए पलँग बिछवा दिया गया था।"

अमिता तब भी मंद प्रकाश में सिर लटकाए चिंतित, व्याकुल बैठी थी। उसने उड़ती निगाह से दोनों की ओर देखा और उसे लगा जैसे पिताजी की

सभी समस्याओं का बोझ कुमार पर आ गया हो। पिता का मुख शान्त था कुमार का गंभीर, चिंता की रेखाओं से आक्रान्त!

: ११ :

पार्वती भाई राधिकानारायण के यहाँ, कोटा, आई तो थी एक सप्ताह के लिए ही और उसका विचार था, कि बम्बई से जब 'वे' लौटेंगे तो उनके साथ ही वह भी लौट आयेगी। पर, राधिका बाबू के यहाँ बहन लगभग बारह वर्ष बाद आई थी, तब भारत में देशी राज्य थे और अब राज्य मिटकर राजस्थान का बड़ा राज्य बन गया था। विकास की नाना योजनाएँ चल रही थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश का रूप द्रुत गति से परिवर्तित हो रहा था। देश की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए सरकारी नेतृत्व में जनता फिर आगे बढ़ रही थी। राधिका बाबू ने बहन को राज्य के विभिन्न स्थलों की सैर कराने के उद्देश्य से अधिक ठहरने का आग्रह किया। लीला ने भी ननद को बड़े प्यार और आदर से एक माह तक ठहरने के लिए कहा और भतीजा कुँवर, जो दोहद से पन्द्रह दिन की छुट्टी पर आया था, अपने अवकाश-काल में बुआजी से वहीं रहने के लिए गिड़गिड़ाहट के स्वर में कई बार प्रार्थना कर चुका था। राधिका बाबू के भी एक वय-प्राप्त कन्या थी, निर्मला। वह तो बुआ के बिना रहना ही पसन्द नहीं करती थी। हर समय बुआ के इर्द-गिर्द रहना, बिना कहे उनके छोटे-बड़े काम कर देना, संध्या को उनके पैर दबा देना, बालों में तेल लगाना आदि वह अपना सौभाग्य समझती थी। बेटी चाहे स्वयं अपने घर में 'दादी' का पद भी पा जाय, पर बाप का घर बाप का ही होता है! इतनी उम्र निकल जाने पर भी भाई-बाप के यहाँ आकर जो स्वतंत्रता, राहत की साँस नारी लेती है, वह कई बार अपने घर में अकेली रहने पर भी नहीं ले पाती। पार्वती भी अपने भाई और उसके परिवार से स्नेह-आदर पाकर ऐसे संकोच से घिर गई कि

उसने उमा बाबू को लिखवा दिया कि 'वह लौटते हुए सुधेश-दिनेश को भी कोटा छोड़ते जायँ, मैं कुछ दिन और ठहरकर आऊँगी।' अमिता की परीक्षाएँ दिनानुदिन निकट आ रही थी, इसलिए उसके विषय में वह जान-बूझ कर मौन रही।

सुधेश-दिनेश और अमिता के साथ जिस दिन उमा बाबू दिल्ली लौटते हुए कोटा से गुजरे, उस दिन वहाँ किसी को आशा न थी कि वह सीधे निकल जायेंगे। यह तभी पता चला जब कि गाड़ी आ गई और राधिका बाबू के देखते-देखते उमा बाबू ने कुली से केवल एक छोटा बक्सा उतरवाकर सुधेश-दिनेश को उनके मामा के सिपुर्द कर दिया। अमिता खिड़की के पास ही ऊनी शाल में लिपटी हुई बैठी थी। उसने अपने घुटने ऊपर तक मोड़े हुए थे और उन पर शाल इस ढंग से लपेट रखी थी कि केवल उसकी गरदन और मुँह ही खुले थे। राधिका बाबू के खिड़की के समीप आते-आते उसने बिना हाथ जोड़े ही मौखिक नमस्कार किया और मुरझाई हुई वाणी में कहा—"मामाजी, मेरी तबियत ठीक नहीं है, इसी से सीधी जा रही हूँ। फिर पढ़ाई का जोर रहेगा।"

तब तक उमा बाबू ने कहा, "मैं भी इसीलिए 'जर्नी ब्रेक' नहीं कर रहा कि वहाँ कुछ जरूरी 'केस' देखने है। यह धंधा ही ऐसा है कि हर समय मस्तिष्क को सक्रिय रखता है।" वह हँसे।

"पार्वती भी इसीलिए नहीं आई कि उसे आपके 'ड्राप' होने की आशा थी, वरना वह जरूर आती।"

सुधेश-दिनेश तब तक नमस्कार करके अपने मामाजी की अँगुली पकड़ चुके थे।

राधिका बाबू ने कहा, "ठीक है, खाली दिमाग तो शैतान का कारखाना बन जाता है।" दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

गाड़ी का बैरा तभी भोजन के दो थाल दे गया। और गाड़ी ने सीटी दे दी। राधिका बाबू ने कहा—"अरी, अमी, तू दस दिन ठहरकर आ जाना, फिर अपनी माँ के साथ ही लौटना।"

अमिता का उत्तर मुँह से बाहर न आ सका। उमा बाबू बोले, "हज़रत! आप ही दिल्ली आइये न? आप भी क्या हमारे पीछे से पहुँचे।"

"देखिये, वहाँ से लाना हमारा फर्ज था और ले जाना फर्ज है आपका।" राधिका बाबू ने अपनी हँसोड़ प्रकृति के अनुसार उत्तर दे दिया।

"और निर्मल-कुँवर का क्या हाल है?"

"कुँवर तो दोहद में ओवरसियर है ही। निर्मल इण्टर फाइनल दे रही है। कोई लड़का बताइये, चिंता के मारे उसकी माँ को तो नींद ही नहीं आती।" आहिस्ता से वह बोले, "अमिता का सम्बन्ध भी अब जल्दी करें। उसके लिए बहन भी अब बहुत चिंतित है।"

"देखिए!"

गाड़ी ने दूसरी सीटी दी। गार्ड की ह्विसल भी सुनाई दी और गाड़ी ने कोटा छोड दिया। सुधेश-दिनेश ने पिता को 'टाटा' कहा और दीदी को चिढ़ा कर अँगूठा दिखाया। अमिता के अधरों पर धीमी हँसी बिखर गई। चलती गाड़ी में ही जब एक युवक उसी डिब्बे में चढ़ा तो सहसा दिनेश ठिठक गया और चिल्लाया, "अरे, कुमार दादा! क्या तुम कोटा आये थे?"

कुमार उनकी ओर देख भर पाया। उत्तर में मुस्करा भर दिया वह।

सुधेश-दिनेश की भौंहें आश्चर्य से उस क्षण ऊपर तनी रह गईं। राधिका बाबू ने जब अँगुली पकड़कर आगे की ओर खेंचा और पूछा, "ये कौन है कुमार?" तब वे आगे बढ़े। दिनेश ने उत्तर दिया—"ये हमारे सामने वाले बँगले में रहते हैं, दीदी के friend (फ्रेण्ड) हैं, मामाजी।"

"अच्छा!" राधिका बाबू ने सुना तो बड़ा अटपटा-सा लगा। विशेष तौर से उस युवक का उस डिब्बे में बिना सामान के इस प्रकार चढ़ना उनके आश्चर्य को बढ़ाने के लिए काफी था और सुधेश-दिनेश का विस्मित होना यह भी बता रहा था कि कुमार बम्बई से अब तक उनके सामने नहीं आया था सचमुच वह उमा बाबू के परामर्श से अब तक दूर ही रहा था। 'सी व्यू' होटल से भी वह भोर के तारों की छाँह में ही निकल आया था। पर सुधेश-दिनेश की आँखों से बचने का जो उद्देश्य था, वह यहाँ आकर निष्फल हो गया।

वे दोनों बालक अपने मामाजी के साथ 'बेबी हिन्दुस्तान' में बैठे नगर की ओर आ रहे थे, माँ से मिलने की कल्पना से लगभग विभोर थे। बीच-बीच में राधिका बाबू उनसे बम्बई के बारे में प्रश्न पूछ रहे थे। पर, वे बालक उल्टे माँ के ही विषय में प्रश्न कर बैठते।

"अच्छा, मामाजी, ममी हमें याद करती है न?'

"ममी या मामी?" राधिका बाबू ने जान-बूझकर कहा।

"दोनों, दोनों!" दिनेश-सुधेश ने जल्दी से कहा।

"हा, हाँ! क्यों नहीं? दोनों खूब याद करती हैं। आज तुम्हारे लिए मिठाइयाँ बनाई है, तुम्हारी मामी ने।'

"अच्छा? मामाजी, आपने बम्बई का समुद्र देखा है?"

"मैंने तो भाई नक्शे में ही देखा है।" राधिका बाबू मुसकराये।

"अजी, वाह! नक्शे में भी कोई समुद्र आ सकता है?"

और ऐसी ही बातें होती रही बच्चों की अपने मामाजी से! तब आ गया राधिका बाबू का बंगला, 'नयापुरा' में बना नया बँगला।

पार्वती ने दोनों पुत्रों को स्नेह से हृदय से लगा लिया। मामी ने उनके सिर पर प्यार भरा हाथ रखा। और निर्मल ने कहा, "अरे! दिनेश, तू अब बहुत लम्बा हो गया है?"

कुँवर ने आत्मीयता की मुस्कान और हँसती हुई आँखों से दोनों की ओर देखा। तभी पार्वती की मुद्रा पर आश्चर्य एवं प्रश्न उभरते देख राधिका बाबू ने कहा, "उन्हें कुछ जरूरी 'केस' देखने थे और अमिता की पढ़ाई का जोर है, इसीलिए उतरे नहीं।"

एक साथ ही निर्मल बोली, "अभी बहन बड़ी निर्मम हो गई हैं अब। खतों के जवाब भी नहीं देती।"

सुधेश कह उठा, "ममी, कुमार दादा भी उसी डिब्बे में गए हैं।"

"कौन है ये कुमार?" राधिका बाबू ने पूछा।

पार्वती सुनकर चकित, स्तम्भित रह गई। सहसा कोई उत्तर देते न बना। मुँह से फुसफुसाहट के स्वर में इतना ही कहा, "निर्मल के फूफाजी तो दिन

पर दिन बड़े आजाद खयालात के होते जा रहे हैं। ऐसी ही आजादी बेटी को दे रखी है।" सभी की आश्चर्य भरी दृष्टियाँ पार्वती पर थीं। और वह कह रही थी, "कॉलेज में शायद अमिता के साथ ही पढ़ता है, कवि है। ऐसे मुग्ध हुए है उस पर कि जहाँ जाते हैं, वहीं साथ ले जाते है।"

कुँवर के मुँह से सहसा निकल गया, "दिल के भी तो कवि नही हैं, बुआ?"

राधिका बाबू ने पुत्र को टेढ़ी निगाह से घूरा। वातावरण तब गंभीरता में बदल गया। पार्वती सुधेश-दिनेश को संबोधित करते हुए बोली, "चलो रे! तुम दोनों नहा लो। फिर खाना खा लेना। तुम्हारी मामी ने आज तुम्हारी पसन्द के अरहर की दाल और चावल बनाए है।"

राधिका बाबू भी बाहर की ओर जाते-जाते बोले—"अच्छा, मैं चलता हूँ आफिस से एक-डेढ़ घण्टे की छुट्टी ले आया था।"

"आपका आफिस बड़ा आया? मुफ्त की तनख्वाह मारते है सरकार से।" अब तक चुप खड़ी लीला ने पति पर कटाक्ष किया, "जहाँ एक एसिस्टेंट की जरूरत है, चार-चार रख छोड़े हैं। काम ही क्या है? थोड़ा और ठहर जाओ, 'लंच' का समय तो हो चला, आज मुझे टिफिन नहीं भेजना पड़ेगा? खाकर चले जाइये।"

"काम कम है तो क्या कुर्सी तोड़ने के लिए वहाँ हाजिर भी नही रहे?" राधिका बाबू कहकर सीढ़ियाँ उतर गए।

पार्वती सुधेश-दिनेश के आगमन से उतनी प्रसन्न नहीं हो पाई, जितना कि उसे होना चाहिये था। उनके आते ही अमिता को लेकर जो अप्रत्याशित प्रसग चल उठा, उसके लिए वह कदापि तैयार न थी और कुँवर के मुँह से अनजाने में जो कटाक्ष हुआ था, उसने तो पार्वती के हृदय को वेध दिया था। लीला ने सब को खाना खिलाने के बाद जब उसकी और अपनी थालियाँ परोसीं तब पार्वती ने दो-तीन बार कहा, "आज तो भूख उड़ गई है।"

"मैं समझती हूँ बीबीजी, थोड़ा-सा खा लो, मेरी भूख भी आजकल ऐसे ही उड़ जाती है। जहाँ निर्मल की चढ़ती हुई आयु देखती हूँ, तो फिक्र मे घिर जाती हूँ। हर समय की तो चौकसी, फिर आजकल लड़के वालो के

दिमाग आसमान पर है। कोई कहता है, हमारे लड़के को जर्मनी भेज दो, वहाँ से लौट आयेगा तब शादी करेंगे···"

"चाहे वहाँ से किसी मेम को ही पकड़ लाये ? पैसा तुम खर्च करो।" पार्वती ने आसन पर बैठते हुए व्यंग्य भरे स्वर में कहा।

"हाँ, हाँ, बीबीजी, याद आया। अरे वह जो नन्दू चाचा है न अपने, उनके पड़ोस में एक रोहतगी रहते है, उनका लड़का तो शादीशुदा था। दफ्तर की तरफ से ट्रेनिंग को गया था ईराक। मुसलमानी ले आया और हिन्दुआनी बनाता है, अलग मकान में रखा है। पहली उसकी जान को रोती है, बेचारी! बस, पूछो मत बीबीजी, बेटी वालों की मुसीबत·····"

"बहन! यही तो फिक्र है। अमिता तो हमारी बिलकुल नही सेटती और उन्होंने तो उसे ऐसा सिर पर चढ़ा रखा है कि चाहे जहाँ सम्मेलनों में गाने के लिए भेज देते है!"

"और वह चली जाती है?"

"क्या बताऊँ। एक बार कालेज की किसी पार्टी में इनाम ले आई थी बस, तब से उन्होंने ऐसा बढ़ावा दिया है कि कतई बेकाबू होती जा रही है।"

खाते-खाते ननद-भावज का वार्तालाप चलता रहा। लीला ने कहा, "ये तो हमारी निर्मल को बड़ा डाँट-डपटकर रखते है। सच पूछो तो, आजकल तो मरा लड़के-लड़कियों को साथ-साथ पढ़ाना भी गलत है।"

"अरी बहना, पढ़ाई से ही क्या होता है? आजकल तो सिनेमा देखकर लड़के-लड़कियाँ सब सीख जाते है। मरे छोटे-छोटे पैंदड़े गाते फिरें है 'गोरे गोरे गाल—ओ, तेरा क्या कहना।' पार्वती ने कुछ ऐसे ढंग से मुँह बनाकर कहा कि लीला खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसे हँसते देखकर वह स्वयं भी उसके साथ ज़ोर से हँस पड़ी। हँसी दबते-दबते लीला ने फिर कहा, "सचमुच बीबीजी, सिनेमा से बड़ा बेड़ा गरक हो रहा है। और तो और, धार्मिक फिलम में भी तो ऐसा-ऐसा दिखावे हैं कि शर्म लगे है। मै तो कई महीने से गई ही नहीं। निर्मल भी कभी जाती है तो पहले वे देख आते है। बीबीजी, तुम्हारी निगाह में कोई है लड़का? अमिता के लिए कोई देखा या नहीं?"

पार्वती फिर खिन्न हो गई और उदास भाव से उसने महेश का किस्सा सुनाया। तब लीला बोली, "बीबीजी, ऐसी नुमाइश लगाना तो मुझे भी पसन्द नहीं। हाँ, अमिता वहाँ नहीं जाना चाहती और लड़का तुम्हें पसन्द है तो निर्मल का फोटो लेती जाना अब की बार?"

"ले जाऊँगी, पर मेरी अक्ल तो एक ही बात से बहुत हैरान है। पहले तो वह लड़का इन्कमटैक्स का इम्तहान दे रहा था। अब सुना है पुलिस में बड़ा अफसर होने वाला है और दहेज में कार भी चाहते हैं अब।"

लीला भी चिंताग्रस्त-सी हो गई। दोनों ननद-भाभी उस समय भर-पेट खाना न खा सकीं। राधिका बाबू का टिफिन चला गया था और सुधेश-दिनेश खाकर सो रहे थे। कुँवर अपने मित्रों में चला गया था। निर्मल अपने कमरे में लेटी हुई पढ़ रही थी। रसोई में से उसे देखा जा सकता था। उस ओर ही इंगित करते हुए लीला ने कहा, "पढ़ने में तो, बीबीजी, यह बहुत तेज है। काम भी सब आता ही है घर का। पर जिस दिन हाथ पीले हो जायँ, उस दिन ही चैन की साँस आयेगी।"

"और क्या!" पार्वती ने अनुमोदन किया, "पर, आजकल पढ़-लिखकर बहुत सी छोकरियाँ यों भी कहती फिरें हैं कि हम शादी नहीं कराएँगी। उन्हें भी दोस्त बनाने में आनन्द आता है।" मंद हास बिखर गया पार्वती के ओठ पर और उसने थाली सरका दी। लीला उठकर उसके हाथ धुलाने लगी।

"बीबीजी," उसने कहा, "यह भी आप ठीक ही कह रही हैं। ऐसा जमाना आया है कि पहले कभी सुना भी नहीं था। इस बार मैंने एक पर्चे में ऐसी ही लड़की की कहानी पढ़ी थी। अट्ठाईस साल की होने पर भी उसने शादी नहीं की। कालेज में एम० ए० पास करके ऐसा दिमाग बिगड़ा कि किसी बारह सौ रुपये कमाने वाले अफसर की इंतजार में बूढ़ी माँ को सालती रहती थी। फिर एक दिन, बीबीजी, उसे सहेली के चौदह साल के भाई के साथ कमरे में बन्द पकड़ा गया। राम ही जाने, क्या कर रहे थी!"···कहते-कहते लीला का स्वर दब गया।

राधिका बाबू का चपरासी जब डिब्बा वापस करने आया तो उसने कहा, "बाबूजी शाम को खाना नहीं खायेंगे। एक जगह दावत है, वहीं

जायेंगे। लीला तब पार्वती के पास ही बैठी थी और दोनों इस प्रतीक्षा में थीं कि सुधेश-दिनेश उठ जाएँ तो महाराजजी के दर्शन कर आएँ। यह महाराजजी एक पहुँचे हुए महात्मा के रूप में प्रसिद्ध थे और कुछ ही दिनों से चम्बल के किनारे आकर ठहर गए थे। नगर में उनके चमत्कारों की चर्चा थी और यह प्रसिद्ध हो गया था कि महाराजजी किसी व्यक्ति का मुँह देखकर ही उसके प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं, शंकाओं का समाधान कर देते है। इन्होंने ही एक बार राधिका बाबू को बतलाया था कि आपकी पुत्री का विवाह किसी पुलिस अफसर से होगा--डेढ़ साल के भीतर-भीतर। इसी कारण लीला ने अपनी ननद से आग्रह किया था कि वह महेश के लिए निर्मल का फोटो लेती जायँ। राधिका बाबू की सूचना पाकर उन्हें और भी तसल्ली हो गई।

"महाराज के पास से लौटने में यदि देरी भी हो गई तो चिंता नहीं रहेगी।" पार्वती से लीला ने कहा।

पार्वती स्वयं भी पहुँचे हुए महात्माओं में श्रद्धा रखती थी और दिल्ली के एक महिला आश्रम में तो वह बराबर रविवार के रविवार सत्संग में भी जाया करती थी। तीन बजने को थे। इसीलिए पार्वती ने चाहा कि दोनों भाई उठ जाएँ तो वह लीला को साथ लेकर चम्बल के किनारे जा पहुँचें--महाराज के दर्शन करे और अपनी शंकाओं का संतोषप्रद समाधान कराकर लौटें।

लीला ने तब कहा, "मैं पीछे क्वार्टर तक जा रही हूँ। बुधसिंह को कह आऊँ कि वह ज्यादा खाना न बनाये। आप साड़ी बदल लो, बीबीजी।"

लीला के जाते ही पार्वती ने कुछ ऐसी अधीरता-सी अनुभव की कि सुधेश और दिनेश को उसने जगा दिया।

कुछ समय पश्चात् ही ताँगा आ गया और दोनों ननद-भावज 'अधर शिला' की ओर चल दीं। उसके निकट ही एक प्राचीन मन्दिर में वह महाराज आसन लगाए हुए थे।

पार्वती ने दूर से ही देखा--"महाराज के लिए खपच्चियों से आड़ खड़ी करके फूस छवाकर कुटी बनाई गई थी। प्रवेश-द्वार से तनिक दूर पर मोटे-मोटे दो-तीन लक्कड़ जल रहे थे और उनके समीप ही तीन श्वेत वस्त्रधारी और

लम्बी-लम्बी जटाओं वाले साधु बैठे थे। उनमें से एक चिलम भी पी रहा था। पार्वती को यह अच्छा न लगा। उसने लीला से तुरन्त कह भी दिया, "यह तो चिलम पीने वाले हैं।"

सब लोग ताँगे से उतर आये। पार्वती लीला के पीछे-पीछे सुधेश-दिनेश को पकड़े हुए अन्दर की ओर बढ़ी। एक ऊँची चौकी पर महाराज का आसन लगा था और उस पर भी शेर की खाल बिछी थी। उसी पर महाराज बैठे थे। दाढ़ी छाती तक बढ़ी हुई थी, लटें भी दोनों कंधों पर बिखर रही थीं। नेत्र विशाल और रतनारे थे। नासिका लम्बी और नुकीली थी। ओठ साँवले थे, जब कि झुर्री पड़े गाल भी चमकदार थे। उन पर चिकनाई थी। आयु ६५ से ऊपर ही होगी। उनके पास ही फर्श पर बिछी हुई चटाई पर दो-तीन और व्यक्ति बैठे थे। उनमें दो लाल और गुलाबी पगड़ियाँ बाँधे हुए और लाँगदार धोती व कुर्ती पहने हुए पास ही के ग्रामीण लोग थे। जान पड़ता था जैसे वह महाराजजी से अपने प्रश्नों के उत्तर पा चुके हों। उनमें से तब एक अँगोछे में से कुछ फल खोलकर उनके आसन के पास रख रहा था। लीला को देखते ही महाराज ने चौड़ी मुस्कान के साथ स्वागत किया, "आओ, बाबूजी नहीं आये? यह कौन तुम्हारी ननद है?"

पार्वती को, बिना बताए ही, महाराज के यह सम्बन्ध खोल देने पर आश्चर्य हुआ। तब महाराज ने अपने एक शिष्य की ओर संकेत करते हुए उन ग्रामीणों को संबोधित किया, "देखो भाई! अब तुम चेतनानन्दजी से, जो मैंने कहा है, उसकी विधि ठीक से समझ लो, एकान्त में जाकर।"

ग्रामीण संकेत पाकर बाहर चले गए। पार्वती, लीला और सुधेश-दिनेश तब चटाई पर सँभलकर बैठ गए। लीला ने बैठते हुए दूर से ही महाराज के चरण स्पर्श करने का उपक्रम किया और पार्वती ने भी लगभग उसका अनुकरण करते हुए उनकी बगल में एक कागज का थैला रख दिया जिसमें बादाम थे।

"कहो! सब ठीक है?" महाराज ने पूछा।

"आपके चरणों की कृपा है।" विनय-भाव से लीला ने उत्तर दिया।

फिर मौन छा गया। महाराज ने तब एक क्षण उन सबके चेहरे देखे और लीला को संबोधित करते हुए बोले, "यह तुम्हारी ननद चिलम पीने वाले साधुओं से अप्रसन्न है।"

पार्वती की गर्दन नीचे झुक गई, उसे लगा कि यह तो हृदय की बात जानने वाले हैं, कहीं कुछ ऐसी-वैसी बात न बोल दें।

"अरी बेटी, चिलम की भी एक लत होती है, पर इसका आत्मज्ञान से क्या विरोध? कमल के आस-पास कीच होती ही है। पर, उससे कमल का मूल्य नहीं घटता, उसका रूप नहीं बिगड़ता। समझी!"

पार्वती को तर्क पूर्णतः सन्तोषजनक प्रतीत नहीं हुआ, तथापि वह महाराज के प्रति अधिक श्रद्धालु होती जा रही थी। एकाएक सुधेश-दिनेश की ओर देखकर महाराज फिर बोले, "कहो बच्चा, बम्बई की सैर में मजा आया न? और वह तुम्हारी बहन तो समुद्र में डूब रही थी? क्यों?"

महाराज की वाणी में रहस्य और गांभीर्य का सम्मिश्रण था। दोनों बालकों की आँखें फटी रह गईं और वे एक साथ लगभग भय और विस्मय के स्वर में बोले, "हाँ ममी! दीदी एलिफेंटा से लौटते हुए समुद्र में गिरते-गिरते बच गई थी।"

"यह तो तूने मुझे बताया ही नहीं था?" पार्वती को अचम्भे से रोमांच हो आया। लीला भी चकित, हतप्रभ रह गई। महाराज के मुख पर गर्व-मिश्रित हर्ष की रेखाएँ फैल गई थीं। पार्वती ने तत्काल अपने भीतर की व्यथा प्रकट कर दी। लगभग दीनता भरे स्वर में उसने कहा, "महाराज, मैं उस लड़की के मारे बड़ी परेशान हूँ। उसका विवाह जल्दी हो जाय तो मैं चिंता-मुक्त हो जाऊँ।...."

महाराज कुछ देर विचारमग्न बैठे रहे। वातावरण में उत्सुकता बढ़ रही थी। तभी चेतनानन्द ने आकर कहा, "ठेकेदार सा'ब आये हैं।"

"हुँ!" महाराज ने लीला की ओर अभिमुख होकर कहा, "देखो तो, बाँध बनाने में सरकार का कई हजार रुपया खा गया, व्यभिचार करने में एक नम्बर है, और पकड़-धकड़ का डर लगा है तो यहाँ उपाय पूछने आया

है।" चेतनानन्द की ओर दृष्टि फेंकते हुए महाराज आगे बोले, "कह दो, भाई कल मिलेंगे!"

"महाराज, वह तो बहुत चिंतित, व्यथित आया है, कह रहा है, महाराज की ही शरण में हूँ। मुझे बचाएँ।"

"अच्छा, उससे कह दो, एक छोटी मोटर खरीदकर मंत्री के लड़के को भेंट कर दो, तीन दिन आगे उसका जन्म-दिन है। बच जायेगा। ले ये उसे दे दे।" महाराज ने थैले में से थोड़े से बादाम चेतनानन्द को देते हुए कहा।

चेतनानन्द बाहर चला गया। फिर तुरंत नहीं लौटा।

महाराज फिर कुछ समय मौन रहे। पार्वती ने जैसे उन्हें स्मरण कराया, "महाराज, आपकी कृपा का प्रसाद मिल जायेगा तो मेरी चिंता दूर हो जायगी।"

"बात टेढ़ी है बेटी। तुम्हारी लड़की अपने विवाह के लिए तुम पर कोई चिंता नहीं छोड़ेगी। अपना वर वह स्वयं चुनेगी। तुम तो उसके मार्ग में शायद बाधा ही डालोगी।" महाराज गरदन हिलाते-हिलाते सारे ही हिलने लगे, जैसे उन पर कोई आवेश छा गया हो।

महाराज की कुटिया में ऐसी स्तब्धता छा गई, जैसे कर्फ्यू लगने पर छा जाती है और महाराज पूर्ववत् निर्भीक बैठे थे जैसे कर्फ्यू में पुलिस अफसर निधड़क फिरते है।

पार्वती को जिस बात का डर था, वही हुई। महाराज के मुँह से कोई अप्रिय बात वह सुनना नहीं चाहती थी। उसका चेहरा यह सुनते ही स्याह पड़ गया। लीला भी मानो चिंता की साकार मूर्ति बन गई। सुधेश-दिनेश की समझ में यह बात न आई। वे महाराज की ओर आदर-भाव से देखते रहे। सुधेश ने फिर पूछ लिया, "महाराज, मैं बड़ा होकर क्या बनूँगा?"

"मैजिस्ट्रेट!" महाराज ने इतनी तत्परता से कहा जैसे उन्हें अनागत करतलगत हो।

"और मैं?" दिनेश ने प्रश्न किया।

"तुम?" महाराज ने उसी प्रकार शरीर हिलाते हुए कहा, "तुम तो

अपने मामाजी का पेशा अपनाओगे ?"

"इंजीनियर बनेगा !" बाल-सुलभ चपलता से सुधेश बोल पड़ा।

पार्वती-लीला का ध्यान अमिता सम्बन्धी भविष्यवाणी से कुछ हटा। लीला ने कहा, "जमाना बहुत खराब आता जा रहा है।"

महाराज किंचित् मुस्कराए। बोले, "बेटा, सब ठीक है। काल की गति बड़ी बलवा् होती है। हरेक प्राणी अपनी ही उन्नति चाहता है। 'लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तु' अब शास्त्रों में ही रह गया है। लोक-कल्याण के नाम पर सरकारी अफसर और ठेकेदार अपना ही कल्याण कर रहे हैं। चलो, सब ठीक है भाई।" महाराज उसी प्रकार शरीर हिला रहे थे।

लीला बोली, "महाराज ! चोरी, डाके बढ़ गए हैं। ऐब बहुत होने लगे हैं, कचहरियों में भी रिश्वत बहुत चलने लगी है····"

"अरे, मो मत पूछो। हम एक बार लखनऊ स्टेशन से गुजरे। स्टेशन पर जगह-जगह इश्तहार लग रहे थे, सरकार की तरफ से—जिनमें लिखा था, रिश्वत देना और लेना पाप है।" महाराज हँसे, "कैसी लज्जा की बात है ? सरकार स्टेशन पर इश्तहार चिपकाकर रिश्वत रोकना चाहती है। अहः हः हः····बेटा, असल में बात यह है कि देश में लोगों का राष्ट्रीय चरित्र विकसित नहीं हुआ है। सरकार को सबसे पहले राष्ट्रीय चरित्र ही बनाना चाहिये। और देशों में पहले यही काम हुआ। पर, अपने देश में जो आजादी आई है सो एक दूसरे को लूटने के लिए ही आई है। फिर बताओ, धर्म का कहीं नाम नहीं। धर्म के नाम पर जो बड़े-बड़े सेठ स्वर्ग जाने की कामनाएँ लिये कुछ बड़े आयोजन करते है, सो वह भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए अखबारों में फोटो छपवाते हैं, मंत्रियों को बुलाते हैं। इस तरह उनके निकट पहुँचकर अपने स्वार्थों की पूर्ति करते है। जनता का तो वह हिसाब है—भूखा मरता क्या न करता। मँहगाई का जमाना, गरीब का खाना था, चना-जौ, वह भी गेहूँ से मँहगा बिका है····बेटा, इसीलिए तो लोग नैतिकता से गिरते जा रहे हैं। हर संभव उपाय से धन जुटाने के लिए लोग न इज्जत देखते हैं, न आबरू। आज का युग तो सुरा का युग बन गया है।

हाँ, धर्म का प्रचार हो नही है। जीवन को उन्नत बनाने की कोई प्रेरणा नहीं है। लोग यही समझते हैं कि बस, मौज मजा उड़ाओ। सिर पर मौत भी खड़ी है, इसका पता नहीं। जब तक धर्म-प्रधान शिक्षा के साथ राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण पर बल नहीं दिया जायगा, तब तक देश में इन नहर-पानी की योजनाओं से कुछ नहीं होगा।"

"हाँ, महाराज, चम्बल का भी एक बाँध बह गया। कितने हजारों रुपयों का नुकसान हो गया।"

"यही तो बेटा! चीन के लोगों ने राष्ट्र के लिए अपने विवाह जैसे निजी काम भी ताक पर रख दिए। यहाँ कौन सुनता है। श्रीमद्भागवत में लिखा है न, कि मौन राज्य होगा। सो अँग्रेजों के राज्य के बाद यह मौन राज्य है" महाराज ने गंभीरता से गरदन हिलाते हुए अपनी बात खत्म की।

पार्वती को यह वार्तालाप इतना रोचक नही लगा, क्योंकि उसका मन अमिता की ओर चला गया था। उसकी समुद्र में डूबने की चेष्टा, गाड़ी में कुमार के चढ़ने की सूचना और महाराज की भविष्यवाणी तीनों की ऐसी मिश्रित प्रतिक्रिया हुई कि वह चेतना ही खो बैठी, शून्य से घिर गई।

महाराज फिर बोले, "अब हम दो-चार रोज में जायेंगे, राधिका बाबू से कहना, एक बार हो जायेंगे।"

"जरूर महाराज, जरूर।" लीला ने पूर्ण श्रद्धा-भाव से कहा। "महाराज! किधर का प्रोग्राम बन गया?"

"दिल्ली तो नहीं जायेंगे साधु-समाज के जलसे में?" पार्वती ने पूछा, क्योंकि उसने दिल्ली में ही यह सम्मेलन होने की बात सुनी थी।

"नही!" उपेक्षा के स्वर में बोले महाराज, "अरे बेटा, ऐसे समाज-वमाज बनाकर भी चन्द लोगों के खाने-कमाने का धंधा होता है, प्रचार होता है। पर ऐसे अर्द्ध-सरकारी प्रयत्नों से ठग छोकरों को साधु होने से क्या इस प्रकार रोका जा सकता है? इतने सारे मठ हमारे देश में फैले पड़े हैं, सबके पास लाखों की सम्पत्ति है, नकदी में भी और भूमि में भी। और सरकार करोड़ों रुपया और मुल्कों से ब्याज पर ले रही है। इनमें राष्ट्रीय भावना फूंक दी

जाय, तो करोड़ों रुपया जमा हो सकता है। साधु का क्या काम धन-जायदाद से? पर बेटा, तुलसी बाबा लिख गए हैं न—'तपसी धनवंत दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न जात कही।' महाराज 'हो-हो' करके जोर से हँस पड़े। "हम तो गंगा जायेंगे।"

महाराज के मौन होते ही लीला ने पार्वती को संकेत किया और दोनों उठ खड़ी हुई। महाराज के चरण स्पर्श किये। सुधेश-दिनेश ने भी उनका अनुकरण किया। तभी महाराज ने गंभीर स्वर में कहा, "अच्छा, जाओगे? चेतनानन्द!"

चेतनानन्द कुटिया में आ गया तो महाराज ने कहा, "देख तो, भीतर से कुछ फल-मेवा ला। माई को दे।" और फिर पार्वती की ओर अभिमुख होकर बोले, "देखो बेटा, चिंता कभी मत करना, जो जैसे होना है, वैसे ही होगा। भगवान् का स्मरण करते हुए अपना कर्तव्य करते रहो, यही पुरुषार्थ है। आगे के कल्याण का रास्ता बनाओ।" फल-मेवा बाँटते हुए महाराज ने फिर गरदन हिलाई और चुप हो गए।

ताँगा चल पड़ा। पार्वती भविष्य जानने का कौतूहल मन में लिये गई थी, और लौटी तो ऐसी कि जैसे किसी ने उदासी की सरिणी में आकण्ठ निमज्जित कर दिया हो। लीला ने महाराज के प्रति अपनी निष्ठा को प्रकट करते हुए कहा, "महाराज भी पहले समाज-सेवा का बहुत काम कर चुके हैं। कुछ साल कांग्रेस में भी थे, जब रजवाड़े थे। अब तो आठ-दस साल से इसी वेष में विचरते हैं। साल में एक चक्कर तो यहाँ का हो ही जाता है। बीबीजी! जाने क्या सिद्धि प्राप्त कर ली है, कि मुँह देखकर ही भीतर की जान लेते हैं।"

"दिल्ली शायद ये कभी नहीं आये?"

"नहीं! बड़े-बड़े शहरों में ये कभी नहीं जाते। वैसे तो पैदल ही यात्रा करते हैं।"

"अच्छा? मुझे तो चिंता में डाल दिया। बताओ तो अगर अमिता ने वही किया जो महाराज ने कहा है, तो मेरी तो नाक ही कट जायगी।"

"बीबीजी, जरूरी थोड़ी है कि सब कुछ कहा सच ही हो। तुम जाते

ही उसका सम्बन्ध कर दो, इधर-उधर का जाना बन्द कर दो, और ये साल खत्म होते ही यूनिवर्सिटी से भी उठा लो। और हाँ, मन से यह बात निकाल दो कि वर अपने आप ढूँढ़ लेगी।"

पार्वती उसी प्रकार चिंताग्रस्त थी। सोच में डूबी हुई वह बोली, "क्या करूँ, वह तो मानते ही नहीं। इस कुमार को तो ऐसा सिर चढ़ाया है कि बस पूछो नहीं। सिक्का अपना ही खोटा हो तो किसे दोष दिया जाय?"

लीला बोली, "बीबीजी! तुम्हें पसन्द हो तो यहाँ गिरिजा की सास से बात चलाऊँ। गिरिजा के देवर है न, रामगंज मण्डी के हाईस्कूल में हैड-मास्टरी मिली है।"

"बात तो सब चला लेती; पर, 'वह' तो चाहते हैं कि किसी बड़े शहर में, बड़ी जगह पर हो लड़का। इस बीच लड़की चाहे लम्बी बाँस-सी हो जाय।"

"अजी तुम छोड़ो ननदोइयाजी की बात को, सम्बन्ध तय हो जायगा तो सब मान ही लेंगे। किसी ने उमर भर का शहर का पट्टा थोड़े ही लिखाया है। लड़की के भाग्य में होगा तो सब आराम मिलेंगे। गिरिजा का भाई देखो न, यहीं से इम्तिहान पास करके कलकत्ता गया था, छोटी सी जगह पर, अब भाग्य चमका तो बम्बई में पन्द्रह सौ का आफिसर है।"

"अच्छा तो राधिका से कहूँगी, वह ही बात कर लेगा।"

इसी उधेड़बुन में दोनों ननद-भावज दिए-जले बँगले पर लौट आई।

राधिका बाबू ने भी उस रात लौटकर लीला से महाराज के यहाँ का सारा वृत्तान्त सुना। वह हँसते हुए बहन के पास आकर कहने लगे, "तुम चिंता क्यों करती हो? ये महाराज तो ऐसा ही बताते हैं, कोई बात ही शायद ठीक निकलती हो। हमारे यहाँ की लड़कियाँ अभी अंग्रेजी पढ़ती हैं, अंग्रेज नहीं बनी हैं। महाराज तो आने वालों की बातों से ही उनकी कमजोरी को पहचान लेते हैं और जो मुँह में आया सो कह डाला।"

राधिका बाबू को यद्यपि उनमें पूरी श्रद्धा थी, तथापि वह बहन के मन से शंकाएँ हटाकर उसे आश्वस्त करना चाहते थे, क्योंकि उसके खिन्न-उदास

रहने से घर का वातावरण ही उदासी से भर जाने का डर था।

पार्वती बोली, "नही जी, यह बात नहीं है। वह बिना बताए बम्बई की बातें कैसे कह देते? उन्हें किसने बताया कि अमिता ऐसे समुद्र में डूबने वाली थी?"

राधिक बाबू हँस पड़े। "यह तो उन्हे मैंने ही बताया था। मुझ से उमा बाबू ने चुपचाप स्टेशन पर सब कुछ कहा था। अमिता जान-बूझकर थोड़े ही कूद रही थी, स्टीमर पर चढ़ते हुए उसका पैर फिसला था। मैं यहाँ से सीधा बाँध पर गया था, और रास्ते में महाराज के पास पाँच-सात मिनट रुका था।"

"तो क्या बिलकुल ढोंगी है?" पार्वती के मन में अब शका उठ गई, उसने यह न सोचा कि यदि राधिका बाबू वहाँ गए होते तो महाराज यह क्यों कहते कि राधिका बाबू को भेजना।

लीला भी व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोली—"लो, आज पोल खुली। सचमुच बीबीजी, ये साधु-बाबू यों ही दुनिया को ठगते फिरते हैं!"

"तुम ही ले गई थीं, मुझे तो, कि बड़े पहुँचे हुए हैं?" पार्वती आश्वस्त हो गई। पर राधिका बाबू को अपनी इस सफलता के लिए कोई प्रसन्नता न थी। मन-ही-मन वह भी कुछ चिंतित हो गए थे और महाराज की भविष्यवाणी उनके भीतर ऐसे गूँजने लगी, जैसे महाराज सामने बैठे उन्हीं से सब कुछ कह रहे हों।

दो-तीन दिन इसी प्रकार बीत गए। सुधेश-दिनेश ने ये दिन निर्मल-कुँवर के साथ 'वाटर-वर्क्स', 'अधर-शिला' और चम्बल किनारे अभेड़ा घाट पर मगरमच्छ देखने या सिनेमा-शो देखने में आनन्द से बिता दिए। राधिका बाबू गिरिजा के श्वसुर मुकुटलाल से बातचीत कर चुके थे और वह अमिता को एक बार देखना चाहते थे। पर, पार्वती इस मामले में कटु अनुभव कर चुकी थी, इसलिए बात टालकर वह दिल्ली लौटने की तैयारी करने लगी। राधिका बाबू ने दो दिन पश्चात् आने वाले रविवार को स्टीमर से चम्बल की सैर करने का प्रबन्ध किया था और इसीलिए पार्वती को ये पहाड़ से दिन व्यतीत करने

के लिए विवशता से ठहरना पड़ा।

राधिका बाबू ने पार्वती को तरह-तरह के किस्से सुनाकर उसमें साधुओं के प्रति एक गहरी अनास्था उत्पन्न कर दी थी। लेकिन रविवार को जब वे लोग प्रातः स्टीमर द्वारा चम्बल की सैर के लिए जाने को तैयार खड़े थे तभी उमा बाबू की एक 'एक्सप्रेस' चिट्ठी राधिका बाबू को मिली। चिट्ठी में जो कुछ लिखा था, उसे सुनकर पार्वती ही नहीं, लीला और राधिका बाबू भी चकित रह गए। उमा बाबू ने सूचित किया था कि "परीक्षाएँ निकट होने के कारण अमिता को गर्ल्स होस्टल (लड़कियों के छात्रावास) में रख दिया गया है; क्योंकि वह कालेज के बाद वहीं 'वार्डन' से पढ़ती भी है। घर पर उसका पढ़ाई में चित्त नहीं लग रहा था, फिर कोई लेडी प्रोफेसर घर आकर पढ़ाने को भी तैयार न थी। वहाँ रहते हुए उसे इधर-उधर सभा-सोसाइटियों में जाने की अनुमति भी नहीं मिलेगी, चूँकि मैंने ऐसी ही व्यवस्था करा दी है। सुधेश-दिनेश को भी मैं 'होस्टल' में ही रखना चाहता हूँ। तुम लोगों के आने पर व्यवस्था करूँगा। 'होस्टल' में रहकर पढ़ाई अधिक अनुकूल वातावरण में होती है। चारित्रिक विकास का भी अच्छा अवसर मिलता है। यद्यपि अमिता की रुचि न थी, फिर भी मैंने यही उचित समझा, क्योंकि फाइनल ईयर है। पास हो या फेल, आगे अब पढ़ाने का विचार नहीं है, इसीलिए ऐसी व्यवस्था की और भी आवश्यकता थी।" अन्त में उमा बाबू ने अपनी व्यस्तता का जिक्र करते हुए यह आशा प्रकट की थी कि "वहाँ सब लोग आमोद-प्रमोद में दिन बिता रहे होंगे।"

राधिका बाबू का पूर्णतः समाधान नहीं हुआ। इस पत्र की पंक्तियों के बीच उन्होंने अमिता को गाड़ी में सिमटे बैठी देखा और कोई भीतर कह उठा—'कुछ न कुछ और ही कारण है इसके पीछे।' न जाने क्यों मनुष्य का मन तनिक-तनिक-सी बात पर शंकालु हो उठता है! फिर भी राधिका बाबू ने चलते हुए ढंग से इतना ही कहा, "हमारे जीजा साहब भी बहुत हो 'माडर्न' होते जा रहे हैं!"

"खाक माडर्न हो रहे हैं। न जाने क्या बनाकर छोड़ेंगे लड़की को!" पार्वती ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा।

लीला तब तक नौकर से ताला लगवा चुकी थी। पार्वती की प्रसन्नता और उसके मनोरंजन के लिए राधिका बाबू जो-जो कार्यक्रम रखते, उनमें इसी प्रकार कोई-न-कोई विक्षेप की स्थिति खड़ी हो जाती। बहन को सान्त्वना-सी देते हुए वे बोले, "एक बात समझ में आती है। मैं दो-तीन दिन के लिए अमिता को अर्जेण्ट लेटर (आवश्यक खत) लिखकर यहीं बुलाता हूँ। इससे सारी बात ठीक पता लग जायगी और मैं उससे कहूँगा कि वह घर पर ही रहे, होस्टल में नहीं। इधर उसे पता भी न लगने दूँगा आने पर एक दिन बाँध-साइट (स्थल) के पास दाल-बाटी की पिकनिक रखकर मुकुटलालजी, गिरिजा और उसके देवर को भी बुला लेंगे। वह ठीक प्रकार से अमिता को भी देख लेंगे और अमिता को भी पता न लगेगा।"

पार्वती को युक्ति बहुत भाई। लीला ने भी समर्थन किया और इस प्रकार एक बार पुनः राधिका बाबू ने स्थिति को निराशा के भँवर-जाल से निकाल कर उल्लासमय बनाने की चेष्टा की। सबके साथ वह स्टीमर पर आ बैठे। चम्बल के गहरे हरित-श्याम जल को चीरते हुए स्टीमर जब 'वाटर-वर्क्स' की ओर बढ़ चला तब निर्मल ने बुआ के आग्रह पर एक भजन गाना आरंभ किया--

हरि तुम हरो जन की भीर,
द्रौपदी की लाज राखी,
तुम बढ़ायौ चीर॥ हरि तुम .....

उसका स्वर नदी के दोनों ओर के चट्टानी किनारों से टकराकर गूँज रहा था। दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी ही हरियाली दिख रही थी। बाएँ तट पर कहीं-कहीं पुराने भवनों के खण्डहर खड़े थे। निर्मल के भजन के साथ-साथ लीला ने स्टीमर पर ही केले-सन्तरे बाँटने शुरू किये। पर, पार्वती की सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ भजन की एक-एक कड़ी के साथ जुड़ गई थीं। और वह मन-ही-मन निर्मल के साथ-साथ गा रही थी--

बूड़ते गजराज राख्यो,
कियो बाहर नीर।

दासी मीरा लाल गिरधर
दुःख जहाँ तहाँ पीर॥

भजन की समाप्ति पर बुआ ने गद्‌गद् कण्ठ से भतीजी की सराहना की। फिर सुधेश-दिनेश ने अपनी बारीक आवाज में मामाजी के आग्रह पर अपने स्कूल की प्रार्थना सुना दी--

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये।.....

प्रार्थना सुनकर पार्वती भी सबके साथ ही बहुत प्रसन्न हुई। थोड़ी देर बाद ननद-भाभी ने फिर निर्मल, कुँवर, अमिता के ब्याह की कल्पना में उड़ना आरंभ कर दिया। कुँवर खीझ उठा। "तुम बड़े-बूढ़ों को छोटों के सामने भी हर वक्त ब्याह-शादी की बातें करने की पड़ती है। बन्द करो, नहीं तो मैं कूदा अभी।" और उसने बाँहें ऊपर चढ़ाकर कूदने का ऐसा अभिनय किया कि सब हँस पड़े। तब स्वयं कुँवर ने इधर-उधर के कुलाबे मिलाने शुरू कर दिए। राधिका बाबू भी बीच-बीच में अकबर-बीरबल के किस्से सुनाते रहे। वह दिन इस प्रकार लगभग पूर्ण मनोरंजन में बीत गया।

लौटकर पार्वती ने एक पत्र उमा बाबू को लिखवा दिया कि अमिता को यहीं भेज दो, ताकि उसे मुकुटलालजी को दिखाने का कार्यक्रम पूरा हो जाय। इसमें राधिका बाबू ने अपनी ओर से वह युक्ति भी लिख दी, जिस प्रकार कि अमिता को यह ज्ञात भी न हो सकेगा कि उसे दिखाया जा रहा है। दूसरा 'एक्सप्रेस' पत्र राधिका बाबू ने स्वयं अमिता के नाम लिखा। उसमें बड़े प्यार से उसे यह समझाया था कि तुम्हारी मामी का आग्रह है कि तुम सिर्फ दो दिन के लिए यहाँ जरूर आओ--'मेल' से सुबह 'लेडीज कम्पार्टमेंट' में बैठो, यहाँ चार बजे हम उतार लेंगे। और फिर अपनी माँ के साथ ही अगले रविवार को लौट जाना। तुम्हारे बाबूजी को भी लिख दिया है। इसमें गफलत न करना। जरूर आना। बहुत वर्षों से आई भी नहीं हो। और आते हुए थोड़ा 'सोहन हलुआ' लेती आना। अन्त में दो पंक्तियाँ दिनेश ने भी लिखी थीं, कि माताजी का कहना है कि इस पत्र को पाते ही फौरन दो दिन को आ जाना। पढ़ाई में ऐसा कोई हर्ज न होगा। कुँवर भाई भी आए हुए हैं और

निर्मल दीदी भी तुमसे मिलने को तड़प रही है। तुम हमारे साथ हो दो दिन में लौट चलना।

अमिता के आगमन की प्रतीक्षा में पार्वती के दिन बिना किसी विशेष गतिविधि के व्यतीत होने लगे। छोटे से नगर में देखने और उसके मनोरंजन के लिए अब कुछ न रह गया था। हाँ, एक दिन सन्ध्या को वह लीला के साथ गिरिजा के यहाँ अवश्य गई। उसकी जिठानी के कई वर्षों बाद बालक हुआ था और उस दिन वहाँ गीत थे। यद्यपि पार्वती को ऐसे गीतों में जाने का कोई चाव नहीं था, फिर भी वह इसी भाव से चली गई कि हो सकता है, कोई बात ही चल पड़े और उसे गिरिजा के देवर को निकट से देखने का अवसर भी मिल सकता है। लीला भी साथ थी। गिरिजा की सास ने दोनों का आदर-भाव से स्वागत किया। मिली-जुली, मोटी-पतली आवाजों से हॉल 'बिहाई' के स्वरों में से गूंज रहा था—'पान के बीड़े चाबो री, अनमोल प्यारी जच्चा ! तुम काहे समुर जी झगड़ो, लल्ला की नानी तुमको री, अनमोल प्यारी जच्चा ॥....'

हॉल ही में एक किनारे पर बिछे पलँग पर गिरिजा की जिठानी नारंगी रंग की सफेद गोटा टंकी साड़ी पहने बैठी थी। उसके पलँग से नीचे लटके गोरे पैरों में लगी महावर दूर से ही चमक रही थी। नाक में चौड़ी-चौड़ी नथ थी सोने की और पपड़ी जमे हुए ओठ पान से लाल हो रहे थे। पार्वती को उसे देखकर, वह दिन याद आ गया, जब उसने अपनी पहली सन्तान अमिता को जन्म दिया था और इसी प्रकार उसकी सासू जी ने बिरादरी भर की औरतों को बुलाकर रतजगा किया था।

अमिता के सम्बन्ध में वहाँ कोई वार्ता न हो पाई; क्योंकि गिरिजा-अतिथियों की आवभगत में बहुत ही व्यस्त थी। फिर भी लीला ने गीतों के बाद बिदा होते हुए उसे अगले दिन अपने घर पर आने का निमंत्रण दिया।

पार्वती ने कहा, "हाँ, जरूर आना। फिर एक-दो दिन में तो मैं जाने ही वाली हूँ।"

गिरिजा ने भी पान की लाली से रचे हुए ओठों से मुस्कराते हुए उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। पार्वती एक क्षीण आशा की ज्योति मन में सँजोए लौटी; क्योंकि गिरिजा दिल्ली की ही बेटी थी, इसलिए उसके माध्यम

से रिश्ता करने में सफलता मिल जाने की कल्पना पार्वती ने कर ली थी।

लेकिन, जीवन में कल्पना से उतना काम कभी नहीं बनता, जितना यथार्थ से। यह बात सही है कि कुछ कल्पनाएँ ही साकार होकर यथार्थ का रूप लेती हैं। पर, उनका साकार होना ही तो कितना कठिन होता है! सम्भवतः इसीलिए विद्वानों ने कल्पना के प्रांगण में न विचरने की चेतावनी दी है। वहाँ निराशा के गर्त में गिरने की सम्भावनाएँ कितनी अधिक है! हृदय आघात सहने के लिए कितना असुरक्षित है!

गिरिजा के आने की जब गहरी प्रतीक्षा थी, तब आया 'डाक-पियन' और वह उस लिफाफे को लौटा गया जो राधिका बाबू ने अमिता को लिखा था। उसके एक कोने में लाल स्याही से अँग्रेजी में लिखा था--'Not Known' और दूसरी ओर उर्दू में लिखा था--'इस नाम की कोई लड़की इस होस्टल में नहीं है।' पार्वती के पास जब कुँवर यह लिफाफा लेकर आया तो वह चक्कर आने से गिरते-गिरते बची। उमा बाबू का कोई उत्तर नहीं आया था। अतः एक ऐसी पहेली से घिर गई पार्वती जिसका कोई हल ढूँढ़ निकालना उसकी बुद्धि से परे की बात हो। राधिका बाबू की समझ में भी यह नहीं आया। इतना ही कहा उन्होंने, "शायद नयी-नयी वहाँ गई है, इसलिए हो सकता है, डाकिये को तलाश करने में कठिनाई हुई हो। डाक-खानों में भी आजकल कम अव्यवस्था नहीं है।"

पर, पार्वती को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह उसी रात की गाड़ी से दिल्ली लौटने के लिए कृतसंकल्प होकर तैयारी में जुट गई। लीला भी ऐसी स्थिति में उससे और ठहरने के लिए कुछ कह न पाई। राधिका बाबू के बँगले में जैसे रहस्यमय उदासी की सेना ने आक्रमण बोल दिया था। गिरिजा उस समय आई भी तो उसकी यथोचित खातिरदारी न हो सकी। और न कोई ढंग की बात ही हो पाई। उसके इस प्रश्न का कि "आप तो दो-चार दिनों में लौटने को कह रही थीं, सहसा कैसे जाने लगीं?" उसे कोई समाधानकारक उत्तर न मिल सका।

राधिका बाबू ने कुँवर को बुआ के साथ दिल्ली जाने की आज्ञा दे दी और

वह लीला से परामर्श कर बहन के लिए कुछ अच्छी साड़ियाँ व बच्चों के लिए कुछ कपड़े खरीदने रामपुरा चले गए।

: १२ :

उस दिन दिये-जले जब धृति के कमरे की चौखट पर खड़े होकर कस्तूरी ने पुकारा, "बिटिया, बाबूजी कहाँ है?" तो धृति जो पलँग पर लेटे-लेटे अपने 'नोट्स' पढ़ रही थी, उसी तरह डरकर उठ बैठी जैसे उसने किसी भूत-प्रेत की आवाज सुन ली हो। अपनी आँखों पर उसे सहसा विश्वास न हुआ।

"कस्तूरी!" चौंककर उसने कहा और फिर उसके स्वर में अनायास घृणा का पुट आ गया, "तू यहाँ क्यों आई अब?" उसकी पीली मद्रासी सिल्क को धोती, मीने की चूड़ियाँ और साँवले माथे पर गोल चौड़ी सिन्दूरी बिन्दी देखकर तो धृति और भी चकित हुई।

"हाँ, आती क्यों नही? मै क्या अपने पुराने घर को यों ही छोड़ जाती? बता तो, बाबूजी बम्बई गए या यहीं हैं?"

"मुझे नहीं पता, तेरा अब कोई काम नहीं है यहाँ, तू जा यहाँ से!" धृति ने कठोरता से कहा।

"अच्छा! मेरा अब काम नहीं है! बीबी रानी, छोटी उम्र से खून-पसीना एक करके तुम्हें पाला है, आज तुम्हीं कह रही हो, कोई काम नहीं है! मैं आप ही बाबूजी को ढूँढ़ लूँगी।" अधिकारपूर्वक कहा कस्तूरी ने और बुदबुदाया, "मुझे मरे रामसेवक ने छला है।" कहते हुए उसने भीतरी कक्ष की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया। धृति ने सहसा आवेश में आकर उसका हाथ पकड़कर रोक दिया, कहा, "खबरदार! जो अब इस कोठी में आई। निकल जा यहाँ से! ···अब तेरी बात पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता।" कस्तूरी ने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया और चुनौती के

स्वर में "ये बात है!" कहती हुई वह तेजी से बिश्नोई के कक्ष की ओर बढ़ी कि धृति उससे काफी पीछे रह गई। लगभग घबड़ाहट से दौड़ते हुए वह भी बिश्नोई की ओर बढ़ी। बिश्नोई रसोई में थी। अतः वह उतावले पैरो रसोई की ओर बढ़ी।

सुन्दर बाबू अपने कक्ष में 'शेव' बना रहे थे। उन्होंने भी कस्तूरी-धृति का वार्तालाप सुन लिया था। पर, वह चुपचाप अपने काम में लगे रहे।

कस्तूरी ने रसोई के समीप आते-आते कहा, "कुमार की माँ, देख लो, मरे रामसेवक ने मुझे कही का न छोड़ा। सत्यानाशी मुझे नोट दिखाकर बहका कर ले गया। बाबूजी यहाँ हों तो मै उनसे पूछूँ तो सही कि उन्होंने क्या कहा था उस लफंगे से? मै तो उसकी पुलिस में रिपट लिखा दूँगी।" इसी बीच धृति वहाँ आ गई, और कस्तूरी ने रोष से उस पर आँखें निकाली और कहा, "यह बीबी रानी, आज मुझे कोठी में भी नही घुसने देतीं—कहती है, निकल जा यहाँ से··· देख लो तुम्ही, कुमार की माँ। मैंने इन लोगों का क्या बुरा किया है?"

बिश्नोई स्वय उसे देखते ही जुगुप्सा से भर आई थी। उसका मुँह तक वह देखना नही चाहती थी। अतः उसने नितान्त तटस्थ भाव से कह दिया, "मै क्या जानूँ? यह मालिक की बेटी है, यह जाने, तू जाने।"

बिश्नोई से जो सहानुभूति मिल जाने की आशा थी, वह न मिली, तो कस्तूरी तिक्त हो आई। वैसे भी वह इतने ऊँचे स्वर में बोल रही थी कि दूर तक सुनाई पड़ सके। तभी वहाँ कोठी का नया नौकर चन्दरी आ गया। अच्छा गठा हुआ शरीर था। उम्र भी २५ से अधिक न होगी। कस्तूरी पर एक उपेक्षा भरी दृष्टि फेकी उसने और धृति की ओर अभिमुख होकर पूछा, "कौन है यह, बीबीजी? बाबूजी कहते है, शोरगुल क्यों मचा रखा है? इसे यहाँ से विदा कर दो।" चले जाने का संकेत करते हुए जो चन्दरी ने हाथ झटका तो कस्तूरी को ऐसे लगा जैसे किसी ने उसके जले कलेजे पर नमक छिड़क दिया हो। वह तिलमिला उठी। धमकी के स्वर में उसने गरदन हिलाकर कहा, "तो बाबूजी बम्बई नहीं गए! देखूँ तो मै, बाबूजी कैसे कहते हैं" और

फिर विश्नोई की ओर अभिमुख होकर वह बोली, "यह सब तुम्हारे बोये बीज है, कुमार की माँ। तुम्ही ने सुन्दर बाबू पर जादू चलाया है।"

इतना सुनना था कि धृति क्रोध से पागल हो गई। "चन्दरी! इस हराम-खोर को बाहर निकाल यहाँ से। खबरदार! जो मुँह से कोई अपशब्द निकाला तो।"

कस्तूरी व्यंग्य भरी हँसी हँसकर एक-दो कदम भीतर की ओर बढ़ी और बढ़ते-बढ़ते चन्दरी पर दृष्टि डालते हुए फुँकारी—"मरे, हाथ तो लगाकर देख मेरे। अभी हड्डी-पसली एक कर दूँगी, मेरा नाम कस्तूरी है, कस्तूरी।" और फिर धृति व विश्नोई दोनों को घूर-घूरकर कहने लगी, "बेटा सामने के बंगले में जादू चला रहा है और माँ ने यहाँ कब्जा किया है। कैसा जमाना आ गया राम! आजकल की औरतों ने अच्छा धंधा सीखा है। पहले रहने का जगह माँगें है, फिर मकान और मालिक दोनों पर कब्जा करे है। धृति की बच्ची, मुँह धोये बैठी रह। वह लफंगा कुमार का बच्चा, क्या तेरा होगा? अभी टैक्सी में बैठकर गया है अमिता के साथ। उसका बाप भी साथ था। आजकल के बाप ही ऐसे है ····पर, कहे देती हूँ, कुमार की माँ मुझ से न अटकना।"

विश्नोई बीच ही में बोली, "जा, जा, अपना काम कर। सुबह-सुबह ऊट-पटाँग मत बक।" भीतर ही भीतर क्रोध से वह कस्तूरी को कुलटा, कलमुंही, और न जाने क्या-क्या कह रही थी और उसकी भुजाएँ व ओठ भी फड़क रहे थे। पर, प्रकट में उसने कोई भयंकर रोष नहीं दिखाया। वह सोच रही थी--'इससे अटकने में शोभा नहीं। बिना अटके ही जब यह मान पर आक्रमण कर रही है, तो अटकने पर तो न जाने क्या-क्या कहेगी!'

कस्तूरी पर उसके उत्तर की जो प्रतिक्रिया होनी थी वही हुई, "मैं ऊट-पटाँग बक रही हूँ? देखना तुम्हारा बेटा तुम्हारे सामने ही क्या-क्या चरित्तर करेगा? दोनों माँ-बेटे छल के अवतार बने हैं। हे राम! मुझे क्या पता था कि भीतर से यह डोकरी इतनी काली है। कितनी जल्दी कोठी पर कब्जा किया है।" सुनकर बिश्नोई को लगा जैसे उसकी छाती पर हथौड़े कूटे जा रहे हों।

इसी समय सुन्दर बाबू के कमरे से 'बैल' का तीव्र स्वर सुनाई दिया। चन्दरी ने क्रोध से कस्तूरी का हाथ पकड़कर उसे कोठी के सिंहद्वार की ओर घुमा दिया, "अच्छा माई, अब तू जा, सा'ब नाराज हो रहे हैं। फिर आना।"

कस्तूरी ने चन्दरी की बाँह पर एक धौल जमाकर उसे ऐसा धक्का दिया कि वह लगभग गिरते-गिरते बचा, और वह स्वयं तेजी से कोठी में भीतर की ओर भागी। धृति, बिश्नोई देखती रह गई। चन्दरी जब तक सँभलकर उसके पीछे दौड़ा तब तक वह सुन्दर बाबू के कक्ष की ओर बढ़ गई—चिल्लाती हुई—"बाबूजी, ओ धृति के बाबूजी, आज तो तुम्हारे नौकर ने मुझे मारा है। धृति ने मुझे पीटा है।" और वह उनके कमरे के दरवाजे पर ठिठककर खड़ी हो गई। उसी प्रकार रुआँसा कण्ठ कर आगे बोली—"मैं तो पहले ही यह जानती थी कि यह कुमार की माँ मुझे यहाँ नहीं रहने देगी। इसी ने षड्यंत्र कर मेरी यह दशा कराई है। मैंने आपका नमक खाया है, झूठ नहीं बोलूँगी। रामसेवक मुझे जबर्दस्ती ले भागा। मैं मर्जी से नहीं गई। मरे ने दो हजार के नोट दिखाकर मुझे मेरे इनामी रुपये नहीं दिए और घर से मार-पीट कर निकाल दिया।" लगभग रोने लगी कस्तूरी—"आपने मुझे हटाया तो मुझे ही सीधा इनाम दे देते। उसके हाथ क्यों भिजवाया? मैं तो उसकी पुलिस में रपट लिखाऊँगी।····आपका गवाही कराऊँगी" एक ही श्वास से वह इतना कह गई। सुन्दर बाबू शान्त भाव से खड़े-खड़े उसकी राम-कहानी सुनते रहे। चन्दरी भी कोई आदेश पाने की प्रतीक्षा में वहीं, कस्तूरी के पीछे आ खड़ा हुआ।

सुन्दर बाबू ने आखिर अत्यन्त संयत स्वर में कहा—"देखो, मिसरानी, तुम जो कह रही हो, वह ठीक है। ऐसे मामले में तुम पुलिस में रिपोर्ट करोगी तो पुलिस तुम से उलटा पैसा खा जायेगी। तुम औरत जात ठहरीं।····मैं तो दो-चार दिन के लिए धृति से मिलने आ गया हूँ····फालतू की बातों में पड़कर क्या लोगी? तुम मुझसे रुपया और ले जाओ और दूसरा कोई काम ढूँढ़ लो।····"

कस्तूरी उसी प्रकार रुआँसे कण्ठ से कहने लगी—"मैंने क्या कसूर किया है, बाबूजी? मैंने धृति को छोटी उम्र से पाला। आपकी हर तरह से सेवा-

टहल की और आज मुझे ही इस तरकीब से दूध की मक्खी बना दिया। मैं जानूँ हूँ, बम्बई आप नहीं जाओगे।....."

"खैर, छोड़ो इन बातों को।....." सुन्दर बाबू ने अपने बक्स में से रुपये निकालकर देते हुए कहा--"यह लो अपना इाम। दस रुपय न महीना और भी ले जाया करो, जब तक काम न मिले।...."

कस्तूरी निरुत्तर रह गई। चुपचाप नोट ले लिये उसने। तब उसकी चाल में विजयी की-सी अकड़ थी। वह नोट हाथ में दिखाती हुई फिर बिश्नोई के पास आई और चुनौती के स्वर में बोली--"मैं तो जा रही हूँ; पर, जैसे तुमने मुझे निकलवाया है, उससे भी बुरी तरह तुम निकाली जाओगी। तुम्हारा बेटा तुम्हारी ही नाक काटेगा।" और आहिस्ता से कस्तूरी ने ठीक बिश्नोई के पास मुँह ले जाकर कहा--"मैं कहे देती हूँ, अमिता पेट से है। कहाँ तक छुपाओगी, देखूँगी? मुझे तो पता लग ही गया है। मैंने उसे अभी स्टेशन पर देखा है। शायद उसी गाड़ी से आई है, बाप और कुमार के साथ, जिससे मैं आई हूँ।" इतना कहकर वह उसी अकड़ के साथ बिश्नोई-धृति पर घृणा भरी दृष्टि फेंकती हुई बाहर चली गई।

बिश्नोई को जैसे चक्कर आ गया। मस्तिष्क झनझना उठा। अपने कानों पर ही विश्वास नहीं हुआ। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। धृति के मुँह पर उत्सुकता थी; व्यग्रता थी। बिश्नोई काकी को एकदम पाला पड़ी मटर की तरह कुम्हलाई-सी देखकर वह पूछ बैठी--"काकी, यह हरामखोर क्या कह गई चुपचाप, जाते-जाते?"

"कुछ नहीं," बिश्नोई ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा और पटरे पर बैठ गई। तभी उसने कहा--"जा बिटिया, तू तैयार हो--कॉलेज का देरी होगी। और चन्दरी को जरा मेरे पास भेज।...."

धृति चली गई। चन्दरी आ गया। बिश्नोई ने कहा--"देख तो चन्दरी! सामने जा, वकील सा'ब की कोठी में। देखकर आ तो, वकील सा'ब बम्बई गए थे, आ गए क्या? और आ गए हों तो देखना, अमिता भी आ गई है क्या?"

चन्दरी चला गया। बिश्नोई एक सोच से घिरी बैठी रही। कस्तूरी जो

कुछ कह गई थी उससे उसके मन में पिछली सभी बातों की एक शृंखला-सी जुड़ गई और उसे कुमार के सम्बन्ध में पहली बार अविश्वास की प्रबल भावना से आक्रान्त होना पड़ा। कुछ ही समय बाद चन्दरी लौट आया। लौटकर वह बोला--"वकील सा'ब आज सुबह अमिता बीबीजी के साथ आ गए हैं। दोनों लड़के माँ के पास कोटा उतर गए हैं।····"

"और कुमार?"

"उनके लिए तो मैंने नहीं पूछा। वह तो उनके साथ नहीं गए थे।"

"अच्छा जा, धृति को तो भेज जरा।" बिश्नोई को अब कस्तूरी की बात फिर असत्य जान पड़ने लगी।

धृति आ गई तो बिश्नोई ने उसके कान में कुछ कहा और वह भी बहुत दिनों बाद आज धड़कते हृदय अमिता की कोठी में गई, अमिता से ही मिलने।

लेकिन, जब उसने वहाँ से लौटकर कह दिया--'हरिया ने अन्दर नहीं जाने दिया कमरे में। कह दिया, बीबीजी को आते ही तेज बुखार हो गया है। डाक्टर ने किसी से भी मिलने को मना कर दिया है।····' तो बिश्नोई फिर एक सन्देह से घिर गई और कुमार के आगमन की उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करते हुए सोचने लगी--'अच्छा, शाम को मैं ही जाऊँगी।' पर, शाम को बिश्नोई भी वही उत्तर लेकर लौटी, जो धृति लाई थी। कुमार तब तक भी न लौटा था। इसी से बिश्नोई अधिक चिंताग्रस्त हो गई। यहाँ तक कि उससे उस रात खाना भी नहीं खाया गया।

धृति के मन में भी अब सन्देह का अँकुर पनपने लगा था। उससे बिश्नोई ने कान में जो कुछ कहा था उसे सुनकर तो उसकी धमनियों में उस क्षण रक्त जैसे जम गया था। सारे दिन वह भी अजीब उलझन में रही। यूनीवर्सिटी में उसे अमिता दिखाई न दी। न ही कुमार के दर्शन हुए। इसी से वह घर उसी उलझन में लिपटी हुई लौटी जिसको कि साथ ले गई थी। अतः बिश्नोई से वह भी खाने का अधिक आग्रह नहीं कर पाई, वरन् स्वयं उसने भी बिश्नोई के पास बैठकर और दिनों से कम ही खाया। दोनों यही कहती रहीं, आपस में—"कुमार आए तो पता चले, आखिर यह मामला क्या है?"

बिश्नोई ने कहा धृति से—"देख बिटिया, अब तू मुझे मना मत करना। मैं तो उससे खोद-खोदकर सब पूछ लूँगी। ·····"

"काकी!" गंभीर होकर धृति बोली—"दोनों में स्वाभाविक आकर्षण तो है ही, आप विवाह की बात ही क्यों न चला दो?"

"विवाह की?" —बिश्नोई चौंक गई, जैसे विषधर दृष्टिगत हो गया हो। "····यह कैसे हो सकता है, धृति?" दृढ़ता से मन्द स्वर में कहा बिश्नोई ने—"क्या मैं सारी कुल-मर्यादाएँ तोड़ दूँ? गैरजात की लड़की हमारे वंश में अभी तक कोई नहीं लाया? छीः····छीः····बिटिया, यह नहीं हो सकता, तुम लोग पढ़-लिखकर ही समाज को छिन्न-भिन्न किये दे रहे हो।"

धृति मौन रह गई। एक मीठा दर्द उसके प्राणों को छू गया। गहरा निःश्वास छोड़कर वह अपने कक्ष की ओर लौट चली। बिश्नोई भारी पैरों से अपने कक्ष की ओर बढ़ गई। अपना ही कमरा आज उसे भयावह प्रतीत हुआ। सामान से भरा हुआ भी वह उसे खाली दिखाई दिया, जैसे अभी खाने को दौड़ता हो। भीतर-ही-भीतर हृदय को जैसे कोई घुमावदार पेंच से बेधने लगा।

वह कभी गैलरी में आकर झाँकती, कभी फिर उसी बेचैनी से कमरे में लौटती। पर, ज्यों-ज्यों क्षण व्यतीत होते जा रहे थे, उसका कुमार भी जैसे निराशा की अँधियारी में ओझल होता जा रहा था। उमा बाबू के लौट आने का समाचार पाकर उसे आशा हुई थी कि संभवतः कुमार भी लौटा हो। कस्तूरी की उक्ति ने इस संभावना को प्राण दिए थे; पर, अब तक कुमार का न लौटना उसकी चिंता, निराशा और आशंकाओं को बढ़ा रहा था। एक पल को भी चैन नहीं पड़ता था। बार-बार उसके कानों में हरिया के शब्द गूँज जाते 'बीबी, अमिता बीमार है, डाक्टर ने किसी से भी मिलने से मना कर दिया है। वह सोचने लगी—'ऐसी क्या बीमार हो गई, जो किसी से मिलने की आज्ञा नहीं? माँ घर में नहीं है। भाई भी घर में नहीं है। बाप भी शायद अपने काम में हों, अकेली कैसे पड़ी होगी? बीमार आदमी का मन तो अकेले में और भी छटपटाता है!' मानवीय संवेदना

से बिश्नोई का हृदय पिघल चला। उसने फिर सोचा—'मैं हरिया से पूछती तो सही कि क्या बीमार है? मैं भी कैसी हूँ, जो यों ही लौट आई। सचमुच, कस्तूरी ने ही मेरा दिमाग खराब किया है। उसकी बात सच कैसे हो सकती है?' यही सोचते-सोचते वह एक बार फिर बाहर आई। सुन्दर बाबू के कमरे में मन्द प्रकाश था, संभवतः सो गये हों—बिश्नोई ने अनुमान लगाया। दबे-पैरों वह कोठी के दरवाजे तक आई और उसने सामने देखा। उमा बाबू के बँगले में बीच के ड्राइंग रूम में ही प्रकाश था, और पीछे नौकरों के क्वार्टरों की ओर बत्ती जल रही थी। बिश्नोई ने हरिया तक जाने का निश्चय किया और एक बार सुन्दर बाबू और धृति के कमरों की ओर दृष्टि डालकर वह सड़क पर चारों ओर सावधानी से देखती हुई सड़क पार कर गई। धोती के आँचल से सिर और ओठों तक मुँह ढाँपे वह दबे-पैरों हरिया के क्वार्टर की ओर बढ़ी। पीछे की गैलरी से जो बटिया क्वार्टरों में जाती थी, वहीं हरिया अपने क्वार्टर की ओर जाते हुए दिखाई दिया। बिश्नोई ने धीरे-से पुकारा—"अरे हरिया!"

हरिया ने चौंककर पीछे देखा मन्द-मन्द प्रकाश में, उसने आवाज-वाले को पहचान लिया और पास आते हुए आश्चर्य से पूछा—"माजी आप! इस वक्त कैसे?"

"तेरे पास ही आई थी। तेरे बाबूजी नहीं हैं क्या?"

"नहीं, वह तो क्लब से नहीं आये हैं।"

"तो क्या अमिता बुखार में अकेली पड़ी है?"

हरिया चुप रह गया। स्तब्धता के वातावरण से घिरे एक क्षण दाना खड़ रह गए। बिश्नोई अपनी उत्सुकता, चिंता को तत्काल दूर करना चाहती थी। कहा उसने—"मैं तो शाम को तुझसे पूछना ही भूल गई। ऐसी क्या बीमार है, अमिता?"

हरिया अब बिश्नोई के और भी निकट आ गया और धीरे से बोला—"माजी! किसी से कहिये मत, अमिता बीबीजी घर में नहीं हैं।"

"हैं!"

"हाँ, तब बाबूजी घर में थे, इसी से मैंने आपको कुछ नहीं बताया था। बाबूजी ने मना कर दिया था कि अमिता अभी जाने वाली है, मेरे साथ, किसी से कहना मत कुछ भी। कोई मिलेगा नहीं उससे।"

"पर, तू तो कह रहा है कि बाबूजी क्लब गए हैं?"

"हाँ, अब तो क्लब ही गए हैं। माजी, गाड़ी से उतरकर कल जब आये थे बाबूजी तो अमिता को छोड़ गए थे और सामान उतरवाकर तुरंत उसी टैक्सी में चले गए थे। कहाँ गए, यह मुझे पता नहीं। फिर अभी दिये-जले कुछ सामान के साथ अमिता को ले गए थे। हाँ····· याद आया, शायद किसी होस्टल में रहेंगी अब?"

"हैं, होस्टल में!"

"हाँ माजी," हरिया ने तनिक डरते-डरते कहा, "एक बात कहूँ,···"

"हाँ, बता क्या बात है?"

"पर, चलो जाने दो।" कहकर हरिया ने मुँह फिराकर पीछे की ओर देखा। बिश्नोई के बार-बार आग्रह करने पर भी उसने मुँह पर आई बात नही कही। बहुत कुछ कहने पर केवल इतना ही कहा उसने—"माजी, क्या कहूँ, बड़े लोगों के करतब ही निराले होते है। मैं अधिक क्या कहूँ, मैंने तो उमा बाबू का नमक खाया है। उनके स्वभाव को जानूँ हूँ। पर, जो कुछ देख रहा हूँ, उससे तो गरदन झुक जावे है, माजी, बस क्या कहूँ—छोड़ो इस बात को!·····"

बिश्नोई एक बार स्वयं भय से काँप गई और उसने हिम्मत करके कहा—"तू साफ-साफ क्यों नहीं कहता? मैंने भी कुछ सुना है। क्या अमिता देखने से कुछ···· उसके कुछ मालूम पड़ता है क्या?"

गरदन से उसने मन का स्वीकारात्मक भाव व्यक्त कर दिया और ओठ बिचकाकर वह अपने क्वार्टर की ओर घूमकर बोला—"माजी, आपको भगवान् की कसम है, छरहरा बदन होने से सब कुछ पता लगता है, मेरा नाम मत लेना किसी से।"

बिश्नोई सुनकर खड़ी-की-खड़ी रह गई। 'तो कस्तूरी ने जो कुछ कहा

था, सच था! क्या वकील सा'ब ने उसे कहीं भेज दिया है? क्या पार्वती को इसीलिए भेजा था भाई के यहाँ?' नाना प्रकार की उलझनें, अनेकानेक प्रश्न मन में एक साथ उठे। फलस्वरूप मस्तिष्क की शिराएँ सुन्न-सी पड़ गईं और वह वहीं गिरती-गिरती सँभली। हरिया ने कहा—"माजी, इसमें आपके घबड़ाने की क्या बात है? यह तो जमाने की हवा है! छोटे लोगों के हल्ले उड़ जाते हैं, बड़ों की बातें तहजीब में शुमार हो जाती हैं····"

"हरिया!" बिश्नोई ने हारे हुए स्वर में कहा, "तुझे क्या बताऊ ···" उसकी वाणी कहते-कहते डूब चली, जैसे मरणासन्न व्यक्ति की आवाज डूबने लगती है। हरिया को लगा जैसे उसने अनजान किसी कपोती के हृदय में पैना तीर मार दिया हो। संवेदना से व्यथित हुए स्वर में उसने कहा—"माजी, मैंने कोई गलत बात कह दी हो तो मुझे माफ करना।····पर, बताओ तो, आपको कैसे मालूम हुआ? कुछ कहो तो माजी?"

बिश्नोई वापस लौटने के लिए घूम गई। पैर उठ नहीं रहे थे। उसी भरी हुई आवाज में उसने कहा—"तुझे कैसे बताऊँ हरिया?····जो तुझे पता है, वही मुझे पता है। अधिक कुछ नहीं।····तू जो कह रहा है वही ठीक है····तू····जो····कह····रहा···है, वही····ठीक···है···!" हरिया ठिठका खड़ा रह गया।

उमा बाबू के बँगले से बाहर आते-आते बिश्नोई को ऐसा लगा जैसे वह किसी आँधी में उड़ती चली जा रही हो, बेसहारे तिनके की तरह। उसका हृदय तीव्र स्पन्दन के कारण जैसे अपने स्थान से हिलकर वैसे ही उड़ चला था, जैसे वह स्वयं उड़ रही थी। कमरे में आकर वह निढाल-सी अपनी चारपाई पर लुढ़क गई। आँखें फटी-सी रह गईं; कमरा ही नहीं, सारी कोठी जोर से घूमती दिखाई देने लगी। कण्ठ सूख गया। मस्तिष्क ने जैसे अपना कार्य करना बन्द कर दिया था। आँखों में धुआँ-सा छा गया और कुमार की ही एक धुँधली-सी, पर विशाल तस्वीर उनमें उभर आई। निश्चेष्ट पड़ी बिश्नोई की फटी हुई आँखों से केवल दो आँसू ढुलककर रह गए और थोड़ी-थोड़ी देर में वह फुसफुसाहट के स्वर में कह उठती—"मेरा बेटा मुझे धोखा दे गया।····

कल का आया हुआ अब तक मेरे पास नहीं आया। मेरे कुमार ने ही मुझे मार दिया···· मेरा बेटा परायी लड़की के साथ भाग गया! ·····"

नीरवता के वातावरण में लिपटी-सी सुन्दर बाबू की कोठी में हृदय-आघात से बेसुध-सी पडी उस बिश्नोई के ये फुसफुसाहट के स्वर शायद कमरे की दीवारों को भी छू नहीं पाये। रात के बढ़ते हुए सन्नाटे में बिश्नोई देर तक उसी अवस्था में आँखें फाड़े पड़ी रही, पड़ी रही! और कुमार, अमिता, कस्तूरी, धृति को धुँधली-धुँधली तस्वीरों का एक डरावना ताण्डव-सा उसके सामने होता रहा। सहसा उसके मुँह से एक धीमी-सी चीख निकली, हृदय को विद्युत् का करेण्ट जैसे छू गया और वह अचेत-सी पड़ी रही।

: १३ :

दूरदर्शी और सुलझे हुए व्यक्ति भी कभी-कभी अपनी योजनाओं के कार्यान्वय में ऐसी शीघ्रता कर जाते हैं कि उनकी भूल प्रकट हुए बिना नहीं रहती। समाज के भय से बचने के लिए वह अपनी बुद्धि से बहुत चतुर होकर चलते है, पर अन्तर की दुर्बलता उनके पैरों को सीधे नहीं पड़ने देती। उनके कदम कुछ बहके हुए पड़ जाते हैं। उमा बाबू ने यही सोचा था कि रोहतास नगर से पूरब में जो बस्ती बन रही है, जिसका नाम तक अभी तय नही और जहाँ इने-गिने मकानों में कठिनाई से ५०-६० व्यक्ति ही रहते होंगे, वहीं अमिता के रहने की व्यवस्था कर दी जायगी; क्योंकि वहीं कुमार के एक मित्र जमना ने अपनी जमीन में दो कमरे खड़े कर लिये थे, जो अभी खाली थे। तब पार्वती को यह सूचित कर देने का विचार था, अमिता होस्टल में चली गई। उमा बाबू ने सोचा था, पार्वती लौटने पर अमिता को घर में न पाकर कुपित हो सकती है, नाना प्रकार के प्रश्न कर सकती है, और उसका भावी जीवन इस प्रकार हठवश अधिक कष्टप्रद हो सकता है। लेकिन यदि उसे दूर रहते ही

पुत्री के अप्रत्याशित अस्थायी बिछोह के लिए तैयार कर दिया जाय तो संभवतः वह इतना हानिकर सिद्ध न हो, और एक ऐसा आघात सहने के लिए वह तैयार हो सके, जिसे साधारणतया वह सह न पाती और सारा परिवार अनिष्ट के अमंगलमय हाथों में चला जाता। राधिका बाबू को भेजे गये पत्र में होस्टल का नाम देकर उमा बाबू ने ऐसी ही भूल की थी। इससे भी पहले कुमार को कोटा पर उसी डिब्बे में बुलाकर भी वह एक भूल कर ही चुके थे। पर चूँकि उन्होंने अपनी योजना पूरी निष्ठा से बनाई थी, अपनी पुत्री और कुमार के भावी सौख्य-संबंधों को दृष्टि में रखकर उसे गढ़ा था; अतः वह किसी भी ऐसी बाधा का सिर कुचलने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे, जो उनके मार्ग में कण्टक बिछाये। सुधेश-दिनेश का कुमार को पुकारना यद्यपि उन्हें भला न लगा, तथापि उन्होंने उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

अमिता ऐलीफेंटा की अपनी निश्छल स्वीकारोक्ति के फलस्वरूप उमा बाबू के सामने बैठी भी एक लज्जा के भाव से गड़ी जा रही थी और कुमार के उसी डिब्बे में आ जाने के बाद तो वह जैसे धरती में गड़ गई। उमा बाबू उसके नारी-सुलभ स्वभाव को समझते थे, इसीलिए उन्होंने सुधेश-दिनेश के उतरने के बाद कुमार को वहाँ बुलाया था। अमिता का मन कोटा तक सुधेश-दिनेश से कुछ बहल रहा था। अपनी अधिकांश बातें जो वह पिताजी से कहना चाहती थी, सुधेश-दिनेश के माध्यम से कहती रही थी। इसी माध्यम को बनाए रखने के लिए अब कुमार वहाँ आ गया था। उमा बाबू जो अब तक अमिता के पास ही बैठे थे सामने की सीट पर चले गए और कुमार को वहीं, बिलकुल अमिता के पास ही बैठने का अवसर दे दिया। इसीलिए अमिता और लजा गई। उमा बाबू ने तब दोनों से खाने का आग्रह किया। कुमार ने उमा बाबू से खाने को कहा और तब तीनों ने दोनों थालों में से मिलकर खाना खा लिया। उमा बाबू जानते थे कि अमिता के लिए उन्होंने जो कुछ निश्चित किया है, कठिन एकान्तवास से कम नहीं है और यह आने वाले कुछ मास निश्चय ही कठोर होंगे। पर कठोर, कठिन समय में से गुजरने के पश्चात् ही तो सुखद समय आता है। अमिता पर भी उनके विचार अब प्रकट हो जायँ, यह वह

चाहते थे और इसके लिए उन्होंने स्वयं अवसर दे दिया। सवाईमाधोपुर के स्टेशन पर वह कॉफी पीने के बहाने 'रेस्तराँ कार' में चले गये और उनके लिए दो कॉफी वहीं भिजवा दीं। संयोगवश, तब फर्स्ट क्लास के उस कम्पार्टमेंट में अमिता-कुमार के अतिरिक्त कोई नहीं रह गया। कॉफी पीते-पीते अमिता कुमार के और निकट आ गई। जिस प्रकार एलीफेंटा में उससे पिता पर सब कुछ प्रकट हुआ, वह उसने कुमार को उसी प्रकार बता दिया और तब कुमार ने भी 'सी व्यू होटल' में जो कुछ तय हुआ था, वह अमिता पर प्रकट कर दिया। अमिता ने ज्यों-ज्यों यह सब सुना, वह संताप से घुटती गई और एक बार फिर कुमार के कंधे पर सिर टेककर वह रो पड़ी। कुमार ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—"अमी! यदि तुम धैर्य और साहस से काम न लोगी, तो जीवन दुःखमय हो जायगा। तुमने 'त्रिमूर्ति' से प्रार्थना की थी। यह शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना का ही परिणाम है कि बाबूजी के हृदय में ऐसी प्रेरणा हुई है। वरना सोचो ती, साधारण स्थिति में तो कोई भी पिता रुष्ट होकर जो न कर बैठता, थोड़ा ही होता—जब तक तुम अपना लेडीज़ कोट या ऊनी शॉल ओढ़ कर अपना भेद छिपाने हुए यूनीवर्सिटी जा सको, जाना। वरना कोई आवश्यकता-नहीं। मेरे एक मित्र ने दो कमरे वहाँ खड़े किए है। अभी शायद उन पर प्लास्टर भी नहीं हुआ है। वहीं हम अपना नया संसार बसाएँगे, अमी! .... यह तो तुम जानती ही हो कि आखिर तो कन्या को पिता का घर छोड़ पति के घर आना ही होता है। पर, आज के समाज में मनचाहा पति या पत्नी पाना कितना कठिन है?"—कुमार ने अमिता की बगल में हाथ डाल उसे तनिक अपनी ओर खींच लिया और फिर ढीला छोड़ दिया। वह कहे जा रहा था—"अमी! जहाँ तक तुम्हारी माताजी का प्रश्न है, उन्हें बाबूजी स्वयं ही सब कुछ समझा लेंगे। रहा मेरी माताजी का सवाल, उन्हें भी देर-अबेर समझा ही लूँगा। यह मामला इस प्रकार निबट जायगा और बाबूजी हमारी 'सिविल मैरिज' करा देंगे। समझी। इसमें रोने की क्या बात है, अमी? उमा बाबू के रूप में हमें दैवी सहायता ही मिली है, अमी! मैं तो ऐसा ही मानता हूँ।"

अमिता ने आँसू रोकते हुए केवल इतना ही कहा—"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा, कुमार। मैंने तन-मन से तुम्हें अपना देवता स्वीकार किया है, और मैं वह सब कुछ करने को तैयार हूँ जिसे करके मैं तुम से कभी जुदा न हो सकूँ। कुमार, मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी ही रहूँगी।"

"अमी!" भाव-प्रवण हो आया कुमार और उसे तब ऐसा लगा जैसे अमिता का और उसका हृदय-बंधन और भी प्रगाढ़ हो गया हो।

मथुरा पर जब उमा बाबू उसी डिब्बे में लौटकर आये तो अमिता कुमार की उपस्थिति में भी पहले जितनी नहीं शर्माई। हालाँकि, वह गरदन झुकाये ही बैठी रही अथवा कभी-कभी खिड़की से बाहर देखने लगती थी। कुमार भी उमा बाबू के प्रति आदर-भाव को रखते हुए मौन ही बैठा था। उमा बाबू ने आखिर वातावरण की नीरवता को तोड़ते हुए कहा—"परीक्षाओं के बाद तुम्हारा क्या-कुछ करने का विचार है?"

"पहले तो 'रिसर्च' करने का विचार था, पर अब तो तुरंत कोई-न-कोई कार्य ढूँढ़ लेना होगा।....."

"हुँ। कैसे कार्य में रुचि है?"

"इस समय रुचि का प्रश्न पीछे है, बाबूजी। पहला प्रश्न कोई भी कार्य ढूंढ़ लेने का है। चाहता हूँ, यूनीवर्सिटी में पढ़ते-पढ़ते भी अब कोई कार्य करूँ, जैसा अमरीका के छात्र करते हैं, ताकि मा का और मेरा, मतलब घर का खर्च कुछ चल सके।" कहते हुए कुमार की दृष्टि अमिता तक जाकर लौट आई।

उमा बाबू को उसका यह उत्तरदायित्वपूर्ण उत्तर भला लगा। वह कहने लगे—"अमरीका की सामाजिक परिस्थितियाँ और हैं, साथ ही वहाँ की शिक्षा-प्रणाली भी यहाँ से भिन्न है। हमारे देश में बड़ा तमाशा है। हमारे राष्ट्रपति तक स्वयं कहते हैं हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली ही गलत है। वह वस्तुतः सिद्धान्त-विहीन है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि छात्र का व्यक्तित्व पूर्ण कर सके।' पर, शिक्षा-प्रणाली में फिर भी कोई क्रान्तिकारी

परिवर्तन नहीं हो रहा। कुछ सरकारें भाषा और लिपि के झगड़ों में ही अत्यधिक व्यस्त हैं। छात्रों के नैतिक व चारित्रिक विकास की ओर उनका कोई ध्यान नहीं। मेरी राय है कुमार, तुम किसी छोटी बस्ती में ऐसी ही छोटी-सी शिक्षण-संस्था को चलाओ जिसमें चारित्रिक विकास पर विशेष ध्यान देते हुए छात्रों को स्वावलम्बी होने का पाठ पढ़ाया जाय।"

बात बहुत गंभीर थी। फिर भी कुमार के भीतर सहसा विश्वासजी के प्रभाकर-स्कूल की बात गूँज गई। वह एक क्षणिक फीकी हँसी हँसकर रह गया। यह हंसी क्यों थी, इसे उमा बाबू और अमिता भी समझ न पाये। उमा बाबू तो विस्मय से पूछ बैठे—"क्यों, इसमें हँसने की क्या बात है?"

"कुछ नहीं! ऐसे ही एक बात याद आ गई थी फिर कभी बताऊँगा···' और विषय बदलते हुए कुमार ने कहा—"ऐसी शिक्षण-संस्था चलाने के लिए ऐसे निष्ठावान साथियों की आवश्यकता है, जो त्याग की भावना भी रखते हों। पर आजकल के स्वार्थ-रत लोगों में से सच्चे मित्र छाँटना और पा जाना ही कठिन है। मेरा विचार तो फिलहाल कुछ ट्यूशनें और ढूँढ़ लेने का है और 'नल-दमयन्ती' पर एक खण्ड-काव्य भी लिखना चाहता हूँ।"···

"भई, काव्य-वाव्य की तो तुम जानो। ट्यूशनों से भी क्या गुजर होगी? कहीं 'लेक्चरर' क्यों न हो जाओ?"

"देखिये···" कहकर कुमार चुप हो गया।

उमा बाबू की दृष्टि तब अमिता पर गई और एक चिंता उन्हें फिर व्याप गई। उन्होंने जो कुछ आगे के लिए सोचा था, वह बिलकुल नया था; ऐसी कोई मिसाल उनके सामने अब तक नहीं थी। अन्तश्चेतना ने उन्हें बता दिया था कि बेटी के हित के लिए चाहे वह कुछ भी करें, पर सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से वह एक गलत कार्य ही करने जा रहे हैं। जान-बूझकर गलत काम करने के लिए भी व्यक्ति को साहस जुटाना पड़ता है। यद्यपि उमा बाबू ने अपने को पर्याप्त दृढ़ बना लिया था, तथापि ज्यों-ज्यों दिल्ली निकट आती जाती थी त्यों-त्यों उनकी हृदय-गति कुछ तीव्र होती जा रही थी। कन्या को विदा करते हुए तो महर्षि कण्व तक का हृदय भी मोम हो गया था। यहाँ तो

कन्या को एक प्रकार से समय से पूर्व ही विदाई करने की बेला आ रही थी, और वह भी विधिवत् विदाई न होगी। संभवतः इसी कारणवश उमा बाबू का कलेजा और भी टूट रहा था। लेकिन काल की अबाध गति किसी की पीड़ा को देखकर रुक नहीं जाती। विवशता के हाथों बँधा हुआ मनुष्य समय आने पर कठोर से कठोर कार्य करने में उद्यत हो जाता है।

दिल्ली आने पर तीनों जने टैक्सी में बैठ उस नयी बस्ती में आ गये। टैक्सी कच्चे, ऊबड़-खाबड़ रास्ते के कारण ठीक मकान तक नहीं जा सकती थी। अतः उसे लगभग सौ गज दूर ही छोड़कर उमा बाबू और कुमार वह कमरे देखने निकल आये। सड़कों पर वहाँ रोशनी न थी, न ही मकानों में बिजली आई थी। इसलिए कुछ कठिनाई के बाद ही वह जगह ढूँढ़ी जा सकी। उमा बाबू के पास टार्च थी, कमरे देख लेने का उनका उद्देश्य यही था कि जो कुछ वहाँ कमी हो, उसे पूरा कर दिया जाय। दो जगह अभी किवाड़ों की जोड़ियाँ नहीं चढ़ी थी, हैण्ड पम्प का फिल्टर खराब हो चुका था, अतः उसमें नयी जाली लगानी आवश्यक हो गई थी। यह सब देख लेने के बाद उमा बाबू ने कुमार को वहीं छोड़ दिया, क्योंकि शाहदरा आकर अपने मित्र से भेंट करना और उन कमरों का अधिकार लेना आवश्यक था। कुमार के वह मित्र साधारण स्थिति के ही थे। इसीलिए बहुत-कुछ अधूरा था मकान में। उमा बाबू ने कल्पना की, एकदम आधुनिक सुविधाओं से युक्त बंगला छोड़कर अमिता यहाँ एकान्तवास में कष्ट न पाये, इसलिए अधिकाधिक सुविधाजनक इस स्थान को बनाना होगा। कुमार से यह सब परामर्श कर उन्होंने कहा, "अपने मित्र से मिलकर तुम दिन भर में यहाँ सब ठीक कर लो। और कल लगभग इसी समय मैं यहाँ अमिता को छोड़ जाऊँगा। अब तो मैं समझता हूँ पाँच माह की ही बात और है। इस बीच पार्वती भी मेरी बात मान ही लेगी।...." कहते-कहते उमा बाबू फिर चिंतित हो गये।

अमिता टैक्सी पर बैठी-बैठी ही देखती रही थी कि वे दोनों किधर जा रहे हैं। पर उस अँधेरे में वे अधिक दूर तक दृष्टिगत न हुए। उसके मन की विचित्र स्थिति थी। जो कुछ जैसे होने जा रहा था, उसके लिए वह भी हृदय

से तैयार न थी। पर, मुँह तो छिपाना ही था। मा-बाप के समक्ष ऐसी निर्लज्जता से जीवन काटने की अपेक्षा तो यही अच्छा था कि वह यहाँ आकर एकान्तवास में जीवन काट ले। कभी उसके मन में कुमार के साथ गृहस्थी चलाने की सुखद कल्पनाएँ आतीं तो कभी वह मा और अपने सम्बन्धियों में होने वाली संभावित चर्चा की कल्पना कर सिहर उठती। कभी यूनीवर्सिटी न जाने पर अपनी सहपाठिनियों में होने वाली घुसुर-फुसुर का खयाल आता और इस प्रकार लोक-निन्दा का भार उसे कदली-पात की भाँति कँपा देता। भीतर से कसमसाहट-सी उठती कि, तू समुद्र में डूब ही क्यों न गई? पर ऐसी स्थिति में क्या वह अपने साथ एक और प्राणी की हत्या का पाप भी नहीं कर बैठती? क्या अपकीर्ति से बच जाती? क्या मा-बाप का मुँह काला न कर देती। और सोचने लगी वह—"सचमुच बाबूजी यही चाहते है कि इस लड़की ने अपना मुँह तो काला किया ही है, अब हमारा मुँह तो काला होने से बचे। इसलिए तुरंत मुझे यहाँ रख देना चाहते हैं।···" अपने ही प्रति तीव्र ग्लानि से भर उठी अमिता। उमा बाबू जब टैक्सी में लौटे तो वह रो रही थी। एक क्षण उसने पिता की ओर आश्चर्य से देखा, क्योंकि कुमार साथ न था। टैक्सी वाले से शहर वापस चलने को कहकर उमा बाबू बोले—"छिः पगली, फिर वही बात···कमरे देख लिये है, कुछ कमी है, सो कल दिन भर में कुमार ठीक करा लेगा। अब वह अपने मित्र के यहाँ गया है। घर पहुँचकर तुम अपने कपड़े और कुछ बर्तन ठीक कर लेना। दो छोटे पलँग भी आ जायेंगे। कुमार को रुपया दे दिया है। कल रात तक यहाँ आना होगा। किसी बात की चिंता न करना, बेटी।···" और तब उमा बाबू का गला भर आया, "सब काम वक्त आने पर होते, घर में रौनक होती, चार मेहमान भी आते। पर इसमें अपना क्या बस? भगवान् को शायद यही मंजूर था।···" अमिता गरदन झुकाये सुनती रही। आँखों में से आँसू अभी हटे नहीं थे, जैसे एक बार बरसने के बाद मेघ छँटे न हों।

कोठी आने पर जब वह अपने कमरे में आ पड़ी तो उसे लगा जैसे तन्हाई की जिन्दगी अभी से ही शुरू हो गई है; क्योंकि उमा बाबू सामान उतरवा

कर बिना कुछ कहे उसी टैक्सी में चले गए थे।

कुमार जब अकेला रह गया उस रात्रि-बेला में, तो अपने ही मित्र के यहाँ जाने में उसे भी झिझक अनुभव हुई। लगभग नौ का समय होने जा रहा था। इस बेवक्त जमना के यहाँ जाना और अधूरे पड़े दो कमरों की याचना करना उसके भीतर एक डर पैदा कर रहा था। पर कोई शक्ति थी कि जो उसे उधर खेंचकर ले जा रही थी। यही परिस्थितियों की विवशता है। कुमार ने जमना के यहाँ जाकर सबको आश्चर्य में डाल दिया। फिर एकान्त कर उसने जमना से कहा—"भाई, अपने कमरों के आस-पास मुझे कोई जगह दिलवा दो। कल ही आना चाहता हूँ।"

"क्या सुन्दर बाबू से खटपट हो गई है?'

"नहीं यार, बड़ा लम्बा-चौड़ा किस्सा है? फिर बताऊँगा।"

"अच्छा तो ऐसे करो, मेरे ही कमरों में आ जाओ न। थोड़ी-बहुत कसर है सो वह तो एक दिन का भी काम नहीं है। कल भी ठीक हो सकती है। पर तुझे तो मालूम है मेरी पोजीशन!"

कुमार ने बीच ही में कहा—"वह कमी तो कल ठीक हो सकती है। ले रुपया।"···कुमार ने शीघ्रतावश रुपया निकाला तो जमना बड़ा प्रसन्न हुआ। अंधे को क्या चाहिये, दो आँखें। उसमें स्फूर्ति भर आई। बोला—"मेरा मिस्तरी पास ही रहता है। सुबह-सुबह जा पकड़ूँगा। वही हैण्ड पम्प भी ठीक करा देगा और किवाड़ तो बने-बनाए मिल जायेंगे, चढ़वा लेना। पर, भाई, यह तो बता कि ऐसी 'एमर्जेंसी' कहाँ से आ गई है?"

कुमार ने तब अधिक छानबीन करने से रोक दिया जमना को। कहा—"यार, कहने की बात नहीं, मैंने 'सिविल मैरिज' कर ली है।"

जमना तो मारे खुशी के उछल पड़ा—"वाह यार! बड़े तेज रहे! यार लोगों का मुँह भी मीठा न कराया।"

"मीठा तो भाई, तब कराऊँगा जब उसे ले आऊँगा। अभी तुम मकान तो ठीक कराओ।"

"पर, है कौन वह खुशनसीब?"

"ये सब पीछे की बातें हैं···अच्छा अब चलूँ कल सुबह हाजिर हो जाऊँगा।"

"वाह भाई, वाह! अब इतनी दूर जाने का समय कहाँ है? यहीं रात काटो, खाना भी हो ही जायगा।"

और जमना के स्नेहपूर्ण आग्रह ने कुमार को वहीं रात भर रोक लिया। खाना खाकर जब दोनों मित्र लेट गए तो मकान मे तत्काल कहाँ क्या ठीक कराना होगा, इसी पर बातचीत होती रही। कुमार इस तात्कालिक समस्या को हल करने पर प्रसन्न तो था, परन्तु उसे साथ ही इस बात का पछतावा भी था कि जमना के समक्ष उसके मुँह से 'सिविल मैरिज' कर लेने की बात क्यों निकल गई। क्या सत्य सचमुच सिर पर चढ़कर बोलता है, पर, जो तीर कमान को छोड़ चुकता है, वापस नहीं लौटता। कुमार के समक्ष फिर मा की तस्वीर उभरने लगती, और वह सोचता, क्या मा अमिता को हृदय से स्वीकार कर लेगी? कर भी लेगी तो क्या इस प्रकार उसका मा बनना उसे सहन होगा। भीतर से आवाज आती—नहीं! इसे कोई स्वीकार नही कर सकता। कोई भी मा इसे स्वीकार नहीं कर सकती।"···कुमार का सिर झनझना उठा। जमना के सो जाने के बहुत देर बाद तक भी उसे निद्रा का स्वप्न न आ सका।

भोर हुआ और कुमार फिर परिस्थितियों की डोर से जकड़ा हुआ उस नयी बस्ती में पहुँच वह स्थान ठीक कराने लगा। जमना को उसने यह नही बताया कि कब वह अपनी गृहिणी को वहाँ लायेगा। बार-बार पूछने पर भी 'अभी निश्चित नही' कहकर टालता रहा।

पर, वह घड़ी टलने वाली नहीं थी। उमा बाबू निश्चित समय पर जब वहाँ पहुँचे तो कुमार एक लालटेन के मंद प्रकाश में उन्ही की प्रतीक्षा कर रहा था। चारों ओर नीरवता का साम्राज्य था। उन्हें अमिता के साथ आगे बढ़ते देख दूर बैठा एक कुत्ता दो-चार बार भोंका, फिर शांत हो गया। उनके आते-आते कुमार बाहर आ गया। उसने झुकी गरदन से ही एक दृष्टि उमा बाबू पर डाली, और एक अमिता पर, फिर अपने ही प्रति जैसे वह एक गहरी ग्लानि से भर आया। उमा बाबू के पीछे-पीछे आती हुई अमिता तब ठिठककर खड़ी हो

गई और मुंह या कण्ठ से कोई आवाज निकाले बिना रोती रही। तभी उमा बाबू ने गहन, किन्तु अवरुद्ध वाणी से कहा—"कुमार, आज से मैं अमिता बिटिया को तुम्हें सौंपता हूँ। यह तुम्हारी है।···बेटी, तुम आज से कुमार की हो। इसे पति-भाव से वरो।"···और उमा बाबू ने अमिता का हाथ पकड़कर लगभग खेंचते हुए उसे दूसरे हाथ से पकड़े हुए कुमार के हाथ में पकड़ा दिया। अमिता की गरदन जैसे धरती में गड़ी जा रही थी। और कुमार भी गरदन झुकाये हुए उमा बाबू के प्रति कृतज्ञता से भर गया था। उसी क्षण सजल नेत्रों से वह उमा बाबू के चरणों में झुक गया और उनका स्पर्श करते हुए गद्‌गद् वाणी से बोला—"बाबूजी, आपने हमें बचा लिया है। न जाने हम दोनों क्या गलत कदम उठा बैठते। आप देवता-स्वरूप हैं, बाबूजी! आपकी क्षमा ने हमारे जीवन को मरु-थल होने से बचा लिया! आपकी कृपा का मैं सदैव भूखा रहूँगा, बाबूजी!·····"

उमा बाबू वहाँ अधिक ठहरना नहीं चाहते थे। उन्होंने अपनी जेब से एक पुड़िया निकाली, उसमें रोली थी। आगे बढ़कर उन्होंने स्वयं ही हैण्ड पम्प से दो बूँद पानी डाल उसे गीला किया और कुमार के उससे तिलक कर वह रोली का कागज उसे ही देते हुए गद्‌गद् गिरा से बोले, "बेटा, लो, इसकी माँग भर दो।" नेत्र सजल हो आये उमा बाबू के और लगभग आँसू रोकते हुए ही कुमार ने भी अपने काँपते हुए हाथों से व्रीड़ा से नत-मस्तक अमिता की माँग भर दो। तब उमा बाबू ने ऊपर सिर उठाकर कहा—"आकाश के तारो, तुम अग्नि के ही समान हो। इस प्रणय-बंधन के मेरे साथ-साथ तुम भी साक्षी हो। कुमार, चलो, बाहर वहाँ सड़क पर टैक्सी में एक बक्सा रखा है, वह ले आओ और लो···यह तुम्हारे जीवन-मार्ग के लिए थोड़ा-सा संबल है···" उमा बाबू ने पाँच हजार रुपये के नोट कुमार को लगभग जबर्दस्ती पकड़ा दिए। उनके मुड़ते ही अमिता की सुबकियाँ तेज हो गईं। और वह एक झपट के साथ पिता के कंधे से लग गई। भीगे कण्ठ से निकला—"बाबूजी! उमा बाबू ने उसकी कमर पर थपथपाते हुए कहा—"धीरज रखो, बिटिया! समय आने पर सब ठीक हो जायगा। और समय जाते कुछ देर नहीं लगती।···"

वह रुमाल से आँसू पोंछते हुए बाहर चले गए। कुमार ने उनका अनुकरण किया। टैक्सी में जब वह बैठने लगे तो कुमार ने एक बार फिर उनके चरण स्पर्श किए और उमा बाबू ने उसे आशीर्वाद दिया।

टैक्सी चली तो उसमें उमा बाबू ऐसे बैठे रह गए कि जैसे सोच की मूर्ति ही हों। घर लौटकर उस दिन उन्होंने खाना नही खाया। उन्हें कोठी का अकेलापन श्मशान-सा भयावह लगने लगा। हरिया ने खाने के लिए पूछा तो उमा बाबू ने कहा,—नहीं? भूख नही है। क्लब जा रहा हूँ। हो सकता है, देरी से लौटूँ।" उमा बाबू क्लब पहुँच गए। बहुत दिनों बाद गए थे अतः क्लब के सहयोगियों और मित्रों ने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत किया। बहुत ही प्रभावशाली सीनियर वकीलों में वे गिने जाते थे। अतः लगभग सभी मेजों पर उन्हें बैठने के लिए निमंत्रण था। पर वह सबसे कोने की मेज पर जा बैठे, जहाँ पन्ना बाबू और माथुर साहब शतरंज खेल रहे थे। उमा बाबू के आने से माथुर साहब का उत्साह बढ़ गया था; क्योंकि वे प्रायः माथुर साहब की तरफ से खेलते थे। पन्ना बाबू ने चुटकी ली—"यार, तुम क्लब में भी वकालत का धर्म नहीं छोड़ते, अब हारी हुई बाजी तुम माथुर साहब को जिताओगे?"

"घबड़ाते क्यों हो, मियाँ? ···उमा बाबू ने माथुर साहब के घोड़े को ढाई घर चलते हुए कहा—"अब आओ, क्या चाल है तुम्हारी?"

माथुर साहब बाजी जीत गए। फिर 'ब्रिज' शुरू हुआ? माथुर साहब रिश्ते में महेश के फूफा लगते थे और महेश की मा के साथ जो सुलूक अमिता ने किया था, उसको उन्हें पूरी जानकारी थी। इसलिए वह किसी ऐसे अवसर की खोज में थे जब कि उमा बाबू की टाँग खेंची जा सके। क्लब में दोनों आज बहुत दिनों बाद मिले थे। उमा बाबू को माथुर साहब की महेश से रिश्तेदारी के विषय में पता था, इसलिए वह भी किसी ऐसी स्थिति से बचना ही चाहते थे, जब कि अमिता के सम्बन्ध में कोई प्रश्न हो सके। पर अक्सर वह स्थितियाँ आ खड़ी होती हैं, जिनसे हम बचना चाहते हैं। माथुर साहब जीत गए, तो पन्ना बाबू ने चुटकी ली—"अभी से बेटी के ससुराल वालों का पक्ष न लोगे,

तो और कब लोगे?" माथुर साहब ने एक बार पहले ही जिक्र किया था पन्ना बाबू से कि हमारे भतीजे को संभवतः उमा बाबू की लड़की आए। पर बातचीत टूट जाने के पश्चात् उनका पन्ना बाबू से कोई जिक्र न आया था। इसलिए सहसा पन्ना बाबू ने जब मजाक में ही ऐसी चोट की तो उमा बाबू और माथुर साहब दोनों को ही उन्होंने अनजान में एक ही बाण से वेध दिया। माथुर साहब को लगा जैसे चाय में कुछ किरकिरापन आ गया हो। उमा बाबू झेंप गए और मुरझाए हुए शब्दों में कहने लगे—"भाई, यह बात तो कब की आई-गई हुई। तुम्हें भी गड़े मुर्दे उखाड़ने का शौक है। आओ, ब्रिज जमाओ।" पन्ना बाबू ने दोनों के चेहरे पढ़ लिये और अपनी भूल समझ कर उन्होंने बात बदली—"और सुनाओ, उमा बाबू, बम्बई में क्या ठाठ रहे?"

ताश फेंटते-फेंटते माथुर साहब बोले—"भाई, वहाँ तो 'प्रोहिबिशन" है। कहाँ का ठाठ?"

"अरे, सो तो उमा बाबू यहीं कब पीते हैं?" पन्ना बाबू ने कहा—"नाम ही उमानाथ है, नशा भाँग का भी नहीं करते।" तीनों हँस पड़े। माथुर साहब ताश बाँटते रहे।

"सारे नशे तुम्हारे लिए छोड़ दिए हैं?" उमा बाबू ने हँसी दबाते-दबाते कहा।

माथुर साहब ने जैसे उनके वाक्य की पूर्ति की—"इन्हें तो एक ही नशा जबर्दस्त है। इन्हें घर की दाल-रोटी पसन्द नहीं है।····जमाने के साथ हैं, उस्ताद।····" माथुर साहब ने कटाक्ष किया और हँस दिए। धीरे से माथुर साहब ने फिर पूछा—"यार पन्ना, यह तो बताओ कि यह लत पड़ी कब से?"

"छोड़ो यार, यह किस्सा।" पन्ना ने कतराते हुए कहा—"हाँ, उमा बाबू, बताओ यार, कुछ बम्बई का हाल-चाल सुनाओ। कैसा मौसम है? सैर कर आयें हम भी, कहो तो?"

उमा बाबू को किसी भी बात में दिलचस्पी नहीं रह गई थी। पन्ना बाबू की बातों की उन पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई। और वे क्लब से भी शीघ्र

लौटना चाहने लगे। वस्तुतः उनके मन-मस्तिष्क पर अमिता छायी हुई थी। खेल में उन्होंने जो भी 'कॉल' दी, वह पूरी न कर पाये और एक हताश-परेशान व्यक्ति की तरह वह क्लब से घण्टे भर बाद ही लौट आये। लौटे तो उन्होंने दूर से ही बाहर के बरामदे में एक व्यक्ति को बैठे पाया। उत्सुकता से उन्होंने गैलरी में प्रवेश किया और उसकी ओर देखते हुए भी न देखकर भीतर चले गए। हरिया को बुलाकर तब उन्होंने पूछा—"यह कौन बैठा है भाई, इतनी रात गए?"

"बाबूजी, आपके जाते ही आये थे। कोई डेढ़ घण्टे से प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"अच्छा?" आश्चर्य से उमा बाबू ने कहा और हरिया को अपना कोट पकड़ाते हुए वह बाहर आये और उस व्यक्ति के पास ही एक कुर्सी पर बैठ गए। उस व्यक्ति ने कुर्सी से उठकर हाथ जोड़कर उमा बाबू का अभिवादन किया। "कहिये, आप कहाँ से आये हैं?"

हरिया तब वहाँ हुक्का रख गया। लम्बी नै को मुँह से लगाया उमा बाबू ने। उसने कहा—"सा'ब मैं यहाँ एक स्कूल का संचालन करता हूँ।"

"अच्छा, यह तो बड़ा अच्छा काम है।"

"लेकिन सा'ब, अच्छे काम करने में ही सबसे ज्यादा खतरे आते हैं।"

"हुँ, हुँ।"····उसकी बात ध्यान से सुनते हुए उमा बाबू ने सिर हिलाया।

"ऐसे ही एक खतरे के पैदा हो जाने पर मैं यहाँ आया हूँ, और आपकी सहायता चाहता हूँ।"

"कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

"सा'ब, बात यह है कि मैं प्रभाकर, रत्न, भूषण की छात्राओं का एक स्कूल चलाता हूँ। उसमें 'मित्र' पत्र के विज्ञापन मैनेजर मि० कौल की एक लड़की भी पढ़ती है।"

"हुँ, हुँ। वही 'मित्र' जिसमें अमिता की कविताएँ भी छपती हैं?" कहकर उमा बाबू ने हुक्का गुड़गुड़ाया।

"जी हाँ, जी हाँ। इसी नाते तो मैं आपके पास आया हूँ।"

उमा बाबू ने उसकी बातों में और भी दिलचस्पी लेते हुए कहा—"हाँ तो, कौल सा'ब की लड़की पढ़ती है····फिर?"

"जी, 'मित्र' के संपादक हैं मि० सोहन गुप्ता····"

"सुना है, कहिये····"

"जी, उनके सभापतित्व में हमारे स्कूल में एक कवि-सम्मेलन हुआ था···।"

"हाँ····हाँ।"

"उसके बाद सोहन गुप्ताजी का उस लड़की से कुछ किस्सा हो गया। उन्हें पता न था कि यह कौल साहब की लड़की है। पर, वह उन्हें जानती थी कि 'मित्र' के संपादक हैं।

"क्या किस्सा हो गया?" आश्चर्य से प्रश्न किया उमा बाबू ने।

"सा'ब, गुप्ताजी का तो यह कहना है कि कौल साहब अपने किसी आदमी को संपादक-पद पर लाना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने जान-बूझकर अपनी लड़की से यह किस्सा खड़ा कराया है।"

"अरे सा'ब, यही तो पूछता हूँ कि किस्सा हुआ क्या?"

"सा'ब, लड़की का यह बयान है कि सम्मेलन के बाद गुप्ताजी उसे किसी होटल में ले गए और उससे छेड़खानी की कोशिश की।"

"हाँ तो, फिर अब क्या पोजीशन है?"

"अजी सा'ब, सोहन गुप्ताजी को 'सस्पेण्ड' (मुअत्तल) कर दिया गया है और लड़की के बयान पुलिस में दर्ज कराकर 'केस' चलाया जायगा, ऐसी धमकी है। शायद कौल सा'ब उनका त्याग-पत्र चाहते हैं। इस मामले में आपकी सहायता चाहिये।"

उमा बाबू गंभीर हो गए और अपनी स्मृति पर जोर देते हुए उन्होंने एकदम पूछा—"क्या आपका नाम विश्वास तो नहीं?"

"जी हाँ, विश्वास ही तो मेरा नाम है! यह तो मैं बताना भूल ही गया था। माफी चाहता हूँ।"

"हुँ,····" अब उमा बाबू ने उनकी ओर उपेक्षा से देखा। विश्वासजी ने उनकी त्योरियाँ बदलते देख तुरंत कहा—"सा'ब, सोहन गुप्ताजी का चाहे कुछ भी हो, मुझे तो अपनी संस्था की प्रतिष्ठा बचाने की फिक्र है। मेरी तो

रोटी का सवाल इससे जुड़ा है।"

"तो विश्वासजी, आप ऐसे लोगों को अपनी संस्था में बुलाते ही क्यों हैं? आप भी लड़की की ओर से बयान दीजिये, आपकी संस्था की प्रतिष्ठा बनी रहेगी···पर, मैं जानता हूँ, आपकी संस्था में क्या होता है! चोर का भाई गट्ठी चोर। चले जाइये, यहाँ से!" उमा बाबू ने फटकारते हुए कहा—"ऐसे बदमाश लोगों का एक-न-एक दिन इसी तरह पर्दा-फाश होता है। आश्चर्य है, कैसे यह लोग समाज-सेवक या हिन्दी-सेवक का नकाब लगा कर डाकेजनी करते हैं!···जाइये यहाँ से, मेरा वक्त न खराब कीजिये!"

विश्वासजी पानी-पानी हो गए। काँपते पैरों उठ खड़े हुए, और गिड़-गिड़ाकर बोले—"वकील साहब···आपको कुमार ने कुछ गलत ही कहा जान पड़ता है। सचाई वह है, जो मैं कह रहा हूँ।"

"हाँ, हाँ। अरे सा'ब ठीक है।" उकताकर कहा उमा बाबू ने—"मेरे पास ऐसे मुकदमों के लिए वक्त नहीं है, और वकील क्या मर गए हैं?" हुक्का गुड़गुड़ाते हुए उमा बाबू बोले—"मैं कौल साहब को एडवाइस दूँगा। जाइये! जाइये! मुझे आराम करना है···" उमा बाबू उठ खड़े हुए। विश्वासजी खीझी बिल्ली की तरह जल्दी-जल्दी कोठी से बाहर निकल आये।

उमा बाबू लगभग विक्षिप्तावस्था में फिर वहीं सोफे पर बैठे रह गए। विचारों की एक शृंखला बन गई। "क्या जमाना आ गया है। हर तरफ यही फिजा दिखाई देती है। क्या हम सब तेजी से भ्रष्ट होते जा रहे हैं? पश्चिम की गुलामी से आजाद होकर भी हम पश्चिम की 'सभ्यता के दास होते जा रहे हैं?" मस्तिष्क झनझना उठा उनका। "इतने लोगों को ऐसे मामलों में सजाएँ होती हैं, फाँसी तक पर लोग चढ़ जाते हैं; पर, अपराध रुकते नहीं, बढ़ते जाते हैं। कानून बनाने वालों से कानून तोड़ने वाले चतुर हैं। फिर एक विदेशी न्यायाधीश के शब्द कि 'सामाजिक अपराधों को कानूनों से नहीं, उनके विरुद्ध प्रबल जनमत तैयार करके ही रोका जा सकता है' उनके कानों में गूँज गए। और वह उठकर अपनी मेज पर आ गए। टेबिल लैम्प का स्विच खोलकर वह बहुत सोच-सोचकर राधिका बाबू के नाम पत्र लिखने लगे।

: १४ :

राजेश बाबू के लॉन में उस दिन एक छोटा शामियाना लगा था। रंग-बिरंगे लट्टुओं की रोशनी से कोठी जगमगा उठी थी। परिचित मित्र और सम्बन्धी व सजातीय लोग शामियाने में पड़ी कुर्सियों पर आकर बैठते जा रहे थे। उनके पुत्र महेश का विवाह था। उसी उपलक्ष्य में डिनर पार्टी का आयोजन था। शामियाने के उत्तर ओर के कोने में बिछी चौकियों पर जो मंच-सा सजाया गया था, वहीं रेडियो आर्टिस्ट अभी कुछ गायन आरंभ करने वाले थे। राजेश बाबू ने बारात चढ़ाने की रस्म छोड़ दी थी। वह एक स्थानीय कालेज में ही प्रिन्सिपल थे और अर्थशास्त्र पढ़ाते थे। उन्हीं की संस्था के एक प्रोफेसर थे, रजनीकान्त। उनके एक भाई शशिकान्त लोकसभा के सदस्य थे। उनकी ही कन्या से अचानक सम्बन्ध तय हुआ और कोठी पर मैजिस्ट्रेट बुलाकर 'सिविल मैरिज' करा दी गई। दोनों ओर से आने वाले अतिथियों में लोकसभा, राज्य-सभा के सदस्यों के अतिरिक्त, शिक्षा-संस्थाओं के प्रतिष्ठित व्यक्ति आमंत्रित थे। विवाह से चार-पाँच दिन पूर्व ही महेश एसिस्टेंट सब-इन्सपेक्टर से सब-इन्स-पेक्टर हुआ था, इसलिए उसकी प्रसन्नता तो द्विगुणित थी। अतिथियों से भरे हुए शामियाने में वह अपनी नव-वधू रोजी के साथ ही बीचोंबीच एक सोफे पर बैठा था। कुछ समवयस्क मित्र आस-पास की कुर्सियों पर बैठे थे। कुछ लोग क्रम से समीप आते हुए बधाइयाँ देते। सामने रखी मेज पर 'प्रेजेन्ट्स' (उपहारों) की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। कुछ अन्तर पर एक सोफे पर बैठे राजेश बाबू भी बधाइयाँ स्वीकार कर रहे थे। उनके पास ही बैठे थे, माथुर साहब! यद्यपि राजेश बाबू से उनका बहनोई का सम्बन्ध था, तथापि उमा बाबू के भी वह हमपेशा और 'क्लब-फ्रेण्ड' होने के नाते बहुत निकट थे। अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के बीच भी इसलिए माथुर साहब को उमा बाबू का अभाव खटकने लगा। रेडियो आर्टिस्ट संगीत शुरू कर चुके थे और रह-रहकर शामियाने के किसी-न-किसी कोने से कहकहे गूँज उठते थे। जैमिनी होटल के बैरे तब 'डिनर' सर्व करने लगे थे। पर, माथुर साहब की आँखें रह-रहकर अतिथियों

को छान रही थीं, ढूंढ़ रही थीं उमा बाबू को। उमा बाबू और अमिता को दो-तीन बार महेश की आँखों ने भी ढूंढ़ने का असफल प्रयत्न किया। महेश के मन में एक गर्व की भावना पैदा हो रही थी—उमा बाबू यहाँ हों तो देखें तो सही कि उसकी शादी किस धूमधाम से हो रही है और एक एम० पी० की लड़की से। अमिता हो तो देखे तो सही कि एक खूबसूरत वधू के सामने वह सचमुच कितनी लँगड़ी है। पर महेश तो बधाइयों के ढेर से ज्यों-ज्यों दब रहा था, त्यों-त्यों गर्व से फूलता जा रहा था। यहाँ तक कि जब रेडियो आर्टिस्ट गाने लगे···

एक बार दिल ने तुम्हें याद किया,
वह समां था कि वसंती हवाओं में बहे....
बुलबुल ने चमन में आशियाँ आबाद किया····

तो वह अपनी नववधू के अतिरिक्त और किसी भी विषय पर सोचना बन्द कर चुका था। परन्तु, माथुर साहब की निगाह दूर कोने की मेजों के पीछे खड़े नियादरा पर चली गई तो सहसा उसकी ओर गरदन का इशारा कर वह उसे अपनी ओर बुला बैठे। इसके साथ-साथ ही वह राजेश बाबू से पूछ बैठे—"क्या उमानाथ के यहाँ बुलावा न गया था?"

"ऐसा हो सकता है?···· जरूर गया होगा। हो सकता है वह जान-बूझकर नहीं आये हों।"

"नहीं साहब! इतनी छोटी तबियत का आदमी नहीं है वह।"—माथुर साहब ने कहा।

नियादरा माथुर साहब के सामने आकर झुका, जैसे उनका आदेश सुन लेना चाहता है। माथुर साहब ने पूछा—"क्या उमा बाबू के यहाँ नहीं कह-आये थे?"

"भला सरकार, ऐसा हो सकता है?"

"उनके यहाँ से कोई आया नहीं।"

"हुजूर! किसी के न आने से अपने मालिक का क्या बिगड़ता है?"

नियादरा के इस कथन पर राजेश बाबू और माथुर साहब दोनों को ही

आश्चर्य हुआ। तभी उसने आगे और कह दिया—"उनका यहाँ आने का मुँह कैसे हो सकता है?"

राजेश बाबू को लगा जैसे नियादरा अपनी सीमा से बाहर जा रहा है। उन्होंने रौबीले स्वर में कहा—"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिये।"

"बहुत अच्छा, हुजूर! ····पर, मैं ठीक ही कह रहा हूँ।"

माथुर साहब और राजेश बाबू ने उसकी उपेक्षा की और अपना ध्यान भी उधर से हटा लिया। नियादरा लौट गया।

साढ़े दस बज चुके थे, तब तक दावत चलती रही। लट्टुओं का प्रकाश चमचमाता रहा। और रेडियो आर्टिस्टों के चले जाने के बाद माइक पर फिल्मी धुनें बजती रहीं। धीरे-धीरे अतिथि लौट रहे थे। राजेश बाबू और माथुर साहब डिनर के पश्चात् वहीं बैठे-बैठे सिगार पी रहे थे और इधर-उधर की गपशप और कहकहों में वक्त बीत रहा था। इस आमोद-प्रमोद की बेला में नियादरा बराबर बेचैन-सा इधर-उधर घूमता रहा। माथुर साहब ने उमा बाबू के विषय में प्रश्न कर जैसे उसके भीतर सोई हुई किसी स्मृति को कुरेद दिया था। वह बार-बार काम-बेकाम माथुर साहब के इर्द-गिर्द मँडराने लगा। मन में एक घुटन थी जिसे वह निकाल देना चाहता था। कुछ समय और बीता और तब माथुर साहब राजेश बाबू से जाने के लिए छुट्टी माँगने लगे। पर राजेश बाबू ने और महेश के मामा ने उनसे वहीं सो रहने का आग्रह किया। पर, माथुर साहब न माने। सिंहद्वार की ओर बढ़ते हुए वह किसी से हाथ मिलाते, किसी का अभिवादन हाथ जोड़कर ग्रहण करते और धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाते। नियादरा उनके पीछे-पीछे हो लिया। बाहर सड़क पर आकर जब माथुर साहब कोठी से दूर खड़ी अपनी कार की ओर बढ़े तो नियादरा ने टोका—"बाबूजी, कुछ देर ठहरकर जाते। अभी तो सुना है, गाने का कुछ खास प्रोग्राम होगा!"

"ठीक है नियादरा। मुझे नींद जल्दी सताने लगती है।"

"हुजूर"—नियादरा ने मन की ग्रन्थि खोलनी चाही।

"कोई खास बात है?" माथुर साहब ने उसका भाव ताड़ते हुए कहा।

"नहीं हुजूर, आप कहते थे ना, उमा बाबू क्यों नहीं आये सो ····"

"सो क्या? कोई खास वजह थी?"

"अजी साहब, पूछिये मत।···भगवान् ने भला ही करा, जो अपने महेश बाबू वहाँ नहीं फँसे।"

माथुर साहब के कान खड़े हो गए। रुककर उन्होंने पीछे आते नियादरा की ओर मुँह किया और सड़क की बत्ती के मंद प्रकाश मे उसकी मुद्रा का भाव पढ़ने की चेष्टा की। "क्या कह रहा है नियादरे तू?"

"हुजूर! बस ऐसी ही बात है। मै तो उस दिन ही समझ गया था जिस दिन वह मेरे सामने लँगड़ी बनकर चली थी कि इसके लच्छन अच्छे नहीं हैं। भगवान् ने बचा लिया। कल-कलां को रिश्ता हो जाता तो, राजेश बाबू और महेश भैया मुझे जिन्दगी भर उलाहना देते।"

माथुर बाबू का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। मोटर की ओर बढ़ते हुए उन्होंने बताया जैसे उन्हें बहुत जल्दी है और पूछा—"साफ-साफ कहता क्यों नहीं? मामला क्या है?"

"साहब, किसी से कहियेगा नहीं। मै उमा बाबू के नौकर हरिया से कसम खा चुका हूँ।"

"ऐसी क्या बात है नियादरे?"

नियादरे ने माथुर साहब के कान के अत्यन्त समीप अपना मुँह ले जाकर अपने मन की गाँठ झट खोल दी और कहा—"हुजूर, मैं भाजी-पत्तल बाँटने गया था, सो कोई था नहीं कोठी में। हरिया से बातचीत का सिलसिला चल पड़ा। आप तो जानते ही हैं, बातचीत में दूर की कौड़ी लाना और वह भी ऐसी कि देखने वाला देखता रह जाय, अपना पैदायशी पेशा है। हरिया से मैंने पूछा था—कहीं सगाई-ब्याह की बात चली क्या बीबी रानी की? तब उसने कहा, कुछ दिन पहले ही तो बम्बई से लौटी हैं। कुछ खाना ही नहीं पचता। उल्टी लग जाती हैं। और हुजूर छरहरे बदन में क्या कुछ छिपाये छिपता है?"

सुनकर माथुर साहब बर्फ के पुतले-से खड़े रह गए और उनके सामने उमा बाबू का वह उदास खीझ से भरा नक्शा खिंच गया जो उस दिन उन्होंने

क्लब में देखा था।

"और सा'ब कोठी में नही है वह लड़की।" नियादरा ने इस ढंग से कहा मानो वह कोई बड़े फक्र की बात सुना रहा हो अथवा बड़े उच्च राजनीतिक महत्त्व के रहस्य का उद्घाटन कर रहा हो।

"तो कहाँ है?" आश्चर्यचकित रह गये माथुर साहब। उनकी आँखें फटी रह गईं और नियादरा गरदन मटका-मटकाकर कहे जा रहा था—"उमा बाबू बड़े कांइयाँ हैं, हुजूर। राम ही जाने। घर वाली को तो कोटा भेज दिया साले के यहाँ और आप बेटी को लेकर बम्बई गए, फिर न जाने क्या हुआ, लौटे तो यह माया रची!"

"मेरी समझ में कोई बात ठीक से बैठ नहीं रही, नियादरे। हरिया से कुछ और तफसील भी पता लगी?"

"हुजूर, तफसील तो लगी लगाई है···आप उमा बाबू के यहाँ तब नहीं गए थे क्या जब कई महीने हुए वहाँ जशन-सा हुआ था, वह जिसमें कालेज के कुछ लड़की-लड़के आये थे और अमिता ने भी गाया था।"

"हाँ, हाँ, याद आया? वह एक कवि-सम्मेलन था। सो उसमें क्या हुआ?"

"हुजूर, उसमें एक लड़का था, कुमार, कुमार!"

"हाँ, हाँ, याद आया।···था, कुमार नाम का एक कवि था!"

"सो हुजूर, उमा बाबू के सामने वाले बँगले में जो मिसरानी काम करती थी न, कस्तूरी, वह अब हमारे ही मुहल्ले में आ गई है, वहाँ से काम छोड़कर। हुजूर, उसने अमिता को देखा था कुमार के साथ जाते हुए टैक्सी में···अभी हफ्ता-आठ रोज की ही तो बात है···"

अब माथुर साहब के सामने जैसे धुँधला चित्र साफ हो चला। "अच्छा नियादरे, समझा। इसीलिए तू कह रहा था कि अब उनका मुँह आने का नहीं है।"

"यही तो बात है हुजूर। अभी तो महेश भइया को और सुनाऊँगा, यह किस्सा। बाबूजी, जो ज्यादा ऊँची नाक लेकर चलते हैं, उनकी ऐसे ही

कटती है।" नियादरे ने ऐसे कहा जैसे उसने ही काटने को उस्तरा दिया हो।

माथुर साहब ने कहा—"किसी के हल्ले उड़ाने से क्या फायदा, नियादरे! बस करो। किसी से कहना मत। हमें-तुम्हें क्या? जो जैसा करेगा, अपने लिए···कल आइयो बच्चों के बाल बढ़ रहे हैं।"

"जरूर हुजूर! मैं तो आपका ताबेदार हूँ।"

माथुर साहब अपनी कार को मोड़ आगे बढ़ गए। नियादरे ने गरदन घुमाकर सलाम किया। और फिर राजेश बाबू की कोठी की ओर लौट चला।

माथुर साहब ने कहने को तो नियादरे से कह दिया कि जो जैसा करेगा अपने लिए। पर, मोटर में बैठकर घर लौटते हुए वह इस सारे प्रसंग से अपने को तटस्थ न रख पाये। लगा जैसे उनके समीप ही एक बड़ी महत्तव की घटना घट गई हो। जैसे एक छोटी सी कंकड़ी ने सारे सरोवर में हिलोरें उठा दी हों। कार में बैठे-बैठे वह सोचने लगे—"यह नियादरा भी बड़ा तेज है। हमारी इसकी क्या बराबरी? और यह अब उमा बाबू की खिल्ली उड़ाता फिरेगा? और कल को कोई हमारी ऊँच-नीच हुई तो हमारी भी इसी तरह हँसी उड़ायेगा? कभी-कभी इस किस्म के लोगों को मुँह लगाना भी बुरा होता है।····और उन्हें श्वान सम्बन्धो एक कहावत याद आ गई—'नियरे राखे श्वान को दो बातों का दुक्ख। खीझें काटै टाँग अरु रीझै चाटे मुक्ख।"

तभी सहसा उन्होंने ड्राइवर से कहा—"वापस चलो, राजेश बाबू की कोठी पर।" माथुर साहब की इस आज्ञा पर आश्चर्य हुआ ड्राइवर को, पर आज्ञा का पालन करना आवश्यक था। इससे भी अधिक अचम्भा ड्राइवर को तब हुआ जब कि माथुर साहब ने कार में बैठे-बैठे ही कहा—'जा तो, देख, ढूँढ़कर तो ला नियादरे को मेरे पास।"

नियादरा माथुर साहब के ड्राइवर के साथ आया तो डरा हुआ था। वह मन-ही-मन समझ रहा था कि शायद माथुर साहब कुछ और तफसील पूछना चाहते होंगे? फिर भी इतनी रात बीतने पर रास्ते से ही लौट आना तथा कार में बैठे-

बैठे ही बाहर बुलाना उसे कुछ असंगत-सा लगा। इसीलिए भीतर डरा हुआ था। निंदक चाहे किसी की सच-सच निंदा करे, पर निंदा करते हुए उसके भीतर एक डर तो बैठ ही जाता है। नियादरे को देखते ही माथुर साहब कार से बाहर आ गए और उसे सड़क के लट्टू के प्रकाश में थोड़ी-सी दूर ले जाकर बोले, समझाते हुए--"देख नियादरे! तू ने हमारी बिरादरी की बहुत बरसों से यजमानी की है। तू भी बेटे-पोते वाला हो गया। शायद ही कोई घर ऐसा हो, जिसके भीतरी रहस्यों का तुझे पता न हो; क्योंकि तुझे सहज ही सब का विश्वास प्राप्त हो जाता है। पर देख, उमा बाबू के बारे में तूने जो कुछ ऐसी बोलचाल से कहा है, मुझे अच्छा न लगा।···"

माथुर साहब की गंभीर होती आवाज से नियादरा सहम गया। वह कह रहे थे--"सुन ले कान खोलकर, उमा बाबू चाहे कुछ भी करें, उनके घर में चाहे कुछ भी हो, पर हैं तुमसे बहुत बड़े·····"

"जी हाँ, इसमें भला क्या झूठ है?"

"तो देख, तेरे मुँह से वह सब किस्सा अच्छा नहीं लगता। सूरज पर थूककर थूक अपने पर ही पड़ता है। फिर बड़े आदमी अपना अच्छा-बुरा सब साध लेते हैं। तू अपने मुँह से किसी से कुछ कहकर क्यों बुरा बने? फिर वह माने हुए वकील हैं। समझा। मैं तुझसे यही कहने लौटा हूँ। मुझ से कहा सो कहा। अब किसी से न कहना।" चेतावनी-सी दी माथुर साहब ने—'वरना मुझसे बुरा कोई न होगा। समझा?"

"समझा हुजूर?···"डरते-डरते बोला नियादरा—"पर एक भूल तो हो ही गई, सरकार! महेश बाबू को मैंने यह बता दिया है।"

"बहुत जल्दी करी!"

"साहब, इसमें मेरा क्या कसूर है?" नियादरे ने चालाकी से कहा—"बुरी बात तो तुम जानो सरकार, तेजी के साथ फैलती है। पर, हाँ, अब कहीं किसी से तो कान पकड़े।" और नियादरे ने भोलेपन से दोनों कान पकड़ लिए।

"ध्यान रखना।" कहकर माथुर साहब अपनी गाड़ी में आ बैठे। और

फिर घर की ओर बढ़ चले। पर उनके मन में उमा बाबू के प्रति घृणा का भाव न था, न ही सहानुभूति का। वह सही-सही और प्रामाणिक बात जानने की जिज्ञासा लेकर ही घर लौटे। चीज जैसी है, उसे वैसी ही जानकर वह अपना निर्णय देने को तैयार थे। पर नियादरा की बात अत्यन्त प्रामाणिक ढंग से कही जाने पर वह उस पर सौ टका विश्वास करने को तैयार न थे। बात उनके पेट में भी न पची। और वह शयन-कक्ष में आते-आते पत्नी से सब किस्सा कह बैठे। वह भी सुनकर आश्चर्यचकित हो न रह गई, प्रत्युत ऐसा लगा जैसे अपने घर में ही यह अनहोनी शर्मनाक घटना हो गई हो। होंठ चबाकर वह चुप रह गई। दोनों पति-पत्नी एक दूसरे से बहुत देर तक कुछ न कह पाये। इस समाचार ने ऐसा बम-विस्फोट जैसा प्रभाव छोड़ा कि दोनों एक दूसरे को देखते रह गए। एकदम मौन! और सब सुनाने के बाद माथुर साहब ने पत्नी से भी वही कहा कि "किसी से तुम कुछ मत कहना-सुनना। अपने सिर क्यों बुराई ली?"

पर महेश के लिए अपने सिर में बुराई लेने जैसी कोई बात नहीं थी। सबके हृदय में दैवी और आसुरी सम्पदाओं का जमाव होता है और अक्सर हम देखते हैं कि आसुरी सम्पदाएँ अपना अधिक प्रभाव रखती हैं। किसी की बुराई सुनकर भीतर की कुटिलता प्रायः हँसती है। महेश यद्यपि अभी अपने पद पर तरक्की पा चुका था, पर अमिता ने जो उस दिन उसका जान-बूझकर अपमान किया था, वह विषाक्त क्षण उसे स्मरण हो आया। भीतर के शैतान ने अट्टहास किया और वह नियादरे के कान में धीरे से कह उठा—"नियादरे, तुझे दस रुपये का नोट दूँगा, बेटा, तू यह पता और ला दे कि वह ठहरे किस मकान में जाकर है। ऐसा केस बना दूँगा लड़की भगाने का कि वकील साहब भी जिन्दगी भर याद रखेंगे?—अपना तो आगे तरक्की का रास्ता बनेगा!"

शरारत भरी आँखों से ईर्ष्या भरी मुस्कान बिखेरता हुए नियादरा बोला—"बाबू भैया! बड़ा मजा रहेगा। मैं जरूर पता लगा दूँगा। उस दिन लँगड़ी चलकर उसने तो मेरी वह नाक काटी है कि मैं जिन्दगी भर नहीं भूल सकता। मुझे पता नहीं था कि यह लड़की इतनी गुणी है। बाबू भैया! तुम्हारा तो

पेशा ही पाप का घड़ा फोड़ने का है। पकड़ो न, मजा रहेगा। आखिर पता तो लगे, पार्वती माई को भी कि घर बुलाकर किसी को बेइज्जत करने का नतीजा होता क्या है?" वाह भगवान्! ऊपर आकाश की ओर गर्दन उठाकर नियादरा बोला—"तू भी बड़ा कारसाज है। गरदन उठाकर चलने वालों को तू ठोकर जरूर लगाता है। तो पक्की रही महेश बाबू!" अपने ही हाथ-पर-हाथ मारते हुए नियादरा बोला—"तो बाबूजी, एक पाँच रुपये तो दिला दो। भगवान् तुम्हारा भला करें। लौंडे के पास कोई गरम कपड़ा नहीं है। एक स्वेटर हो खरीद लूँगा। राम जी तुम्हारा भला करे। गोल-मटोल मन्ने के बापू बना। ही ही करके दाँत निकाल दिये नियादरे ने और पाँच का नोट पाकर एक बार फिर दुआ दी उसने।

"तो जल्दी पता लगाइयो?" महेश ने बात पक्की की। 'जरूर, जरूर। ···भला इसमें देर थोड़ी हो सके है?" इतना कहकर नियादरा चुटकी बजाता हुआ बिदा हो गया। रात काफी जा चुकी थी। फिर भी वह बिना कोई थकान अनुभव किये तेजी से अपने मुहल्ले की ओर बढ़ रहा था। पीठ पर अँगोछे मे बंधा कचौड़ियाँ और मिठाई की तश्तरियाँ झूलती चल रही थीं और हाथों में कुल्हड़-शकोरों में सब्जियाँ थो। उनकी गंध नाक में पहुँचकर उसे अपने बच्चों का स्मरण करा रही थी। वह सोच रहा था कि कुट्टी सो गई होगी तो भो क्या है? उसे जगाकर खिलाऊंगा। उसे तो कचौड़ियाँ और नुकती के लड्डू बहुत पसन्द हैं। चलते-चलते उसने कस्तूरी के बारे में सोचना शुरू कर दिया। महेश बाबू की बात दिमाग में ताजी ही थी और वह उस काम में कस्तूरो का सहायता पा जाने की योजना बनाने लगा।

बड़वाली हवेली के विस्तृत घेरे में कई कोठरियो में प्रायः चौका-बरतन करनेवाले अथवा खोंचे लगानेवाले कहार रहते थे। कुछ कोठरियों में जो, दक्षिण कोने में थीं, रिक्शे वाले रहते थे। यह कोठरियाँ कस्तूरी की कोठरी के समीप पड़तो थीं, और इनमें काफी रात गए भी जाग रहती थी। क्योंकि रिक्शे वाले रात का भो रोजी कमाने जाते थे और लौटने वाले अपने साथियों को जगाकर काम पर भेज देते थे। इसी कारण वहाँ साइकिलों के पुराने टायर और पुरानी ट्यूटी

पेटियों के तख्ते जलाकर आग रखी जाती थी। नियादरा उस कोहरे से भीगी रात में जब लौटा तो उसकी पौली में घुसते ही उसकी गरम आग पर दृष्टि गई और वह तापने का लोभ संवरण न कर सका। आग के पास ही दो-तीन जने बैठे आग ताप रहे थे। मुसद्दी ने तभी बीड़ी लगाई थी। नियादरा को आते देख वे लोग स्वागत के स्वर में कह उठे—आओ काका, आग ताप रे! आज तो बड़ी रात गए लौटे? कहीं दावत में माल उड़ाकर लौटे हो क्या?"

"हाँ भाई··आग के पास बैठकर नियादरा ने हाथ खाली किये और तापने के लिए आगे बढ़ते हुए कहा—"अपना तो काम ही यह है" लोगों के यहाँ गमी हो या खुशी हो, नियादरा तो गणेशजी की तरह पहले पूजा जावे है।" वह यह स्वयं कहकर हँस दिया और तीनों रिक्शे वाले भी हँस दिए। मुसद्दी ने बीड़ी नियादरे की ओर बढ़ाई—"लो, काका, दो सुट्टे मार लो तुम भी। हाँ, क्या याद करोगे!"

नियादरे ने बीड़ी को चिलम की तरह दोनों मुट्ठियों में भींचकर कश खेंचा और पूछ बैठा—"अरे यह मिसरानी सो गई क्या?"

"बुलाऊँ क्या? अभी-अभी गई है। आग ताप रही थी। अभी लेटी ही होगी।" मुसद्दी ने बड़े लटके से कहा—"काका, बस, मिसरानी तो मिसरानी ही है। इसके यहाँ आने से तो अपनी बड़े मजे में गुजरने लगी है।" वह भद्दे ढंग से हँसा और नियादरा का संकेत पाकर उसकी कोठरी की ओर बढ़ गया।

मुसद्दी के पुकारने पर जब भीतर से ही कस्तूरी की आवाज सुनाई पड़ी कि 'खोलूँ हूँ,' तो नियादरा उठकर स्वयं ही वहीं चला गया। किवाड़ खुलते ही उसने कहा—"अभी लेटी थी क्या मिसरानी?" और वह अन्दर चला गया। मुसद्दी आग के पास ही लौट गया।

"बड़ी रात गए लौटे?"

"हाँ, तुम जानो, ज़िजमानी का काम ऐसा ही होता है।" तनिक रुककर बोला नियादरा—"ले तेरे लिए भी चार कचौड़ी ले ही आया।" और अँगोछा खोलकर नियादरा कचौड़ी निकालते-निकालते कहने लगा—"वह अपने महेश

बाबू की शादी हो गई। आज खाना-पीना था। इसी में देर हो गई। मैंने सोचा ताजी-ताजी खा लेगी, मिसरानी भी।"

कस्तूरी ने कचौड़ियाँ सँभालते हुए कहा—"साग भी दे। मटर की सब्जी बनी थी कि नहीं?"

"अरी तू मटर ही ले मिसरानी। फिकर क्यों करे है? तेरे लिए तो सब कुछ हाजिर है।"

कस्तूरी होठों ही होठों में मुस्कराई और नियादरा को उसके साँवले चेहरे में काजल-लगी आँखें मन्द-मन्द जल रही डिबिया की रोशनी में भी बड़ी भली प्रतीत हुईं। नियादरा ने मटर की सब्जी के अलावा केले-किशमिश की चटनी भी कस्तूरी की पत्तल पर रख दी। फिर कस्तूरी के चेहरे पर आँखें गड़ाकर बोला—"मिसरानी, महेश बाबू के हाथ तो पीले हो गए हैं। और कोई नयी-ताजी बात सुना।...."

"अब तो सोने दे, नियादरे। रात कितनी चली गई?" अँगड़ाई लेती हुई कस्तूरी बोली।

"रात तो अपनी है। अब क्या किसी के चूल्हे फूँकने जाना है? चल सबेरे सही।" उठते हुए नियादरा बोला।

तब कस्तूरी ने स्वयं जैसे नियादरा के मन की बात कह दी—"और कुछ सुना क्या बकील साहब के यहाँ का हाल-चाल?"

"अरी बही तो तुझसे पूछता था।"....आहिस्ता से नियादरा फिर बैठ गया और लगभग कानाफूसी के स्वर में बोला—"तू जरा ये पता लगा कि बेटी को रखा कहाँ है उन्होंने फिर तो अपने महेश भैया पुलिस में मामले को ले जायेंगे।"

जैसे चौपड़ में खिलाड़ी हारी बाजी जीतकर चिल्ला उठता है, लगभग वैसी ही प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कस्तूरी बोली—"अरे नियादरे, उस लौंडे को फँसवा कुमार को उसी सत्यानासी ने मुझे निकलवाया है सुन्दर बाबू की कोठी से। उसे देख उसकी माँ को बड़ी भगतनी बनै है, सुन्दर बाबू से दिखाने को तो पर्दा करके बात करे है, पर देख ले नियादरे, थोड़े ही महीनों

में कोठी पर कब्जा कर लिया।"

"तो बोल मिसरानी, कब पता लगाएगी?"

"सुबह ही, नियादरे! मरे बदनाम होवैं तो मेरी छाती ठंडी होगी। मैं सुन्दर बाबू की कोठी पर जाऊँगी और वहाँ से कोई न कोई सुराग निकालकर लाऊँगी।"···· और तब दोनों हथेलियाँ अपनी दोनों कनपटियों पर रखकर कस्तूरी कहने लगी—"कैसा जमाना आ गया है, नियादरे, यह छोरे-छोकरियाँ कालेजों में पढ़-पढ़कर आजकल यही तो सीखे हैं।"

"मिसरानी! पूछ मत, जरा-जरा से छोरों के पेट में दाढ़ी है।····· ले, एक रसगुल्ला और ले, बड़े स्वाद बने है!"···· नियादरा ने फिर अँगोछा खोला और मिसरानी को रसगुल्ला दे दिया।

"ये मरा रिक्शा वाला मुसद्दी भी बड़ी चलती रकम है नियादरे। इसके रंग तुमने नहीं देखे।"

"अरी ये तो भूखे हैं, ससुरे भूखे!"

नियादरा उठ खड़ा हुआ। बोला, "सो जा, मिसरानी अब मैं चलूँ। जाड़े में अकेले कैसे नीद आवै है?"

"सब आ जावै है, भैया।" बाहर जाते हुए नियादरे के पीछे-पीछे आकर उसने अन्दर से साँकल बन्द कर ली।

: १५ :

सात बज चुके थे। पर चाय अभी तक तैयार न थी। सुन्दर बाबू कब का ब्रुश कर चुके थे और ड्राइंग रूम में ही बैठे चाय की प्रतीक्षा कर रहे थे। धृति भी उठकर अभी तक उनके सामने नहीं आई थी। प्रायः नित्य ही बिश्नोई और धृति दोनों मिलकर चाय-नाश्ता तैयार कर लेती थीं, और चन्दरी सुन्दर बाबू

के सामने मेज लगा देता था। पर आज अभी तक कोई उनकी दृष्टि में नहीं पड़ा था। कोठी में एकदम सन्नाटा छाया था, जो सुन्दर बाबू के लिए नितान्त अस्वाभाविक था। उन्होंने चन्दरी को पुकारा। पर चन्दरी तब स्वयं उनकी ओर ही चला आ रहा था, उसके हाथों मे चाय की ट्रे थी। उसके समीप आते-आते सुन्दर बाबू पूछ बैठे—"क्या लाए हैं आज? इतनी देर कैसे हो गई चाय को? धृति कहाँ है?"

"हुजूर! बड़ी माजी की तबियत कल से कुछ खराब है। चाय मैं ही बनाकर लाया हूं। नाश्ता नहीं बना पाया। हुजूर, बिस्कुट रखे हैं, ला दूं? छोटी बीबीजी भी उनके पास ही हैं। उनसे चाय पीने के लिए कह रही हैं।"

"अच्छा! क्या हो गया है बड़ी माजी को?"

"हुजूर, कल वह आई थी न, पुरानी मिसरानी, वही न जाने क्या-क्या बक गई है सरकार! बस तभी से बड़ी माजी कमरे से बाहर नहीं निकली हैं। शाम को भी खाना नहीं खाया था उन्होंने।"

"अच्छा बुलाओ तो धृति को।"

चन्दरी ने धृति को बुला दिया। वह भी कुछ सहमी हुई पिता के पास आ खड़ी हुई तो सुन्दर बाबू ने कहा—"आ बैठ यहाँ, चाय पी ले, और अलमारी में नमकीन काजू-बादाम रखे हैं, वह निकाल ला।" मेवा लाकर धृति बैठ गई। सुन्दर बाबू ने पूछा—"क्या कुमार की मा की तबियत ठीक नहीं है?"

"कल कस्तूरी न जाने क्या-क्या बक गई है। उसी से जान पड़ता है उन्हें कुछ सदमा पहुँचा है।" धृति ने आहिस्ता-आहिस्ता सहानुभूति के स्वर में कहा। सुन्दर बाबू ने ओठों से लगा हुआ प्याला नीचे रख दिया और किंचित् गंभीर होकर बोले—"ऐसा क्या कह गई, वह तो बहुत खराब औरत है।"

"वही कुछ अमिता-कुमार के बारे में····" इतना ही कहा रुक-रुककर धृति ने और उसकी गरदन झुक गई। सुन्दर बाबू ने उसका मनोगत भाव समझने की चेष्टा की और चाय की दूसरी चुसकी लेते-लेते उनकी

मुद्रा गंभीर हो गई। सिगरेट सुलगाते हुए कहने लगे—"उसकी बात का क्या भरोसा? उस पर ऐसी चिंता करने से क्या बनेगा?"

प्याले की शेष चाय तश्तरी में उँड़ेलकर पीली उन्होंने और धृति से कहा—"चल तो, जरा कह उनसे कि बाबूजी आते हैं।"

धृति तुरन्त बिश्नोई के कमरे में पहुँच गई और उसे सूचित किया कि बाबूजी आ रहे हैं।

"अरी, उन्हें क्यों बुला लाई?" उसके स्वर में पीड़ा थी।

कमरे की चौखट के पास ही बाहर गैलरी में खड़े-खड़े सुन्दर बाबू ने कहा—"कैसी तबियत है माजी?"

बिश्नोई सिर का आगे का पल्ला तनिक झुका किवाड़ की थोड़ी ओट करके खड़ी हो गई। वह शुरू से ही सुन्दर बाबू के सामने आकर उनसे कोई बात नहीं करती थी। उसी स्वर में बोली—"अब तो बुढ़ापा है, न जाने भगवान् अभी कितने दिन और दुख भोगने के लिए अभी यहाँ रखेगा।"

सुन्दर बाबू ने उसकी वाणी में इतनी गहरी निराशा देखकर अनुमान लगाया कि सचमुच कोई गभीर बात हो गई है। धृति तब वहाँ से पीछे हट आई। सुन्दर बाबू ने आश्चर्यमिश्रित सहानुभूति के स्वर में कहा—"ऐसी क्या बात हो गई, माजी? एकदम इतनी निराशा क्यों? अभी से ऐसी बातें करने को आपकी उम्र थोड़ी आ गई है?"

"भैया! तुम मेरी मुसीबत क्या समझोगे? सब कुछ नाश हो गया। एक उस लड़के पर ही उम्मीद लगाये अपने दिनों को धक्का दे रही थी। सो वह भी धोखा दे गया।"

"नहीं, नहीं, माजी, कुमार धोखा नहीं दे सकता। ऐसा नहीं हो सकता। आखिर बात क्या है? साफ-साफ कहो न?"

"क्या कहूँ भैया? इन बातों में कुछ नहीं रखा। मुझे तो तुम चन्दरी से दादरी की मोटर में बैठवा दो। सोचा था, अब जीते-जी देवर की देहली पर पैर न रखूँगी, पर जिसका लड़का ही निकम्मा हो, उसके भाग्य में ठोकरें खाने के सिवा और क्या हो सकता है?" बिश्नोई के शब्दों में व्यथा बढ़

गई थी, नेत्र कुछ सजल हो आये थे।

"माजी, मुझे तो सीधी-सीधी बात बताओ? क्या कुमार के कोई चाचा भी हैं? मैं तो समझता था कि केवल आप ही उसके सिर पर हैं।"

"भैया, वे तो सदा समाज-सेवा के धंधों में, काँग्रेस की सभाओं में भागते फिरते थे, उनके 'सिधारे' पीछे देवर उनके हिस्से की भी जमीन दाब बैठे। कुमार तो तब बहुत छोटा था। पहला जमाना होता तो क्या हम इधर-उधर यों ही ठोकरें खाते फिरते और जमाने की बनदामी सहते। आज तो भाई भाई को घर से निकाल देता है। एक अमीरी में दिन काटता है, दूसरा दाने-दाने को तरसता है। तिस पर जानते हुए भी भाई भाई को सहायता को नहीं आता। ऐसा वक्त कभी नहीं देखा था। 'वे' गाँव वालों तक के लिए सब कुछ दे डालते थे। रहमान की जमीन को छुड़ाने के लिए उन्होंने एक बार मेरे जेवर और एक भैंस तक बेच दी थी। पर भैया, वह जमाना तो चला गया। सोचती थी, कुमार को भी एक दिन वैसा ही हीरा-सा चमकता हुआ देखूँगी। पर मैं तो बुढ़ापे में अब कहीं की भी न रही। ऐसे कपूत और लम्पट बेटे के पास रहने से तो यही अच्छा है कि देवर-देवरानी की सेवा-टहल कर वहीं दो टुकड़ तोड़ लिया करूँगी और दिनों को धक्का देती चलूँ जो···या फिर भगवान् मेरी मिट्टी समेट ले।" बिश्नोई की वाणी एकदम गीली हो आई थी और सुन्दर बाबू ने उसके अश्रु ढुलकते भी देख लिये थे।

जब व्यक्ति अपने को असहाय पाता है और भविष्य भी उसे अंधकारमय दीखता है तो वह प्रायः अपने वैभव को स्मरण कर अपने दुःख को भुलाना चाहता है, परन्तु यह विगत की स्मृति उसकी व्यथा को और भी बढ़ा देती है। बिश्नोई की इस समय ठीक यही स्थिति थी। जब-तब उसने धृति से जो कुछ सुना था उससे उसके मन में सदेह के बादल इकट्ठे होते रहे थे, पर कुमार के विषय में उसने जो ऊँची धारणाएँ बना रखी थीं, उनसे टकराकर वे बादल छिन्न-भिन्न हो जाते थे। पर, कस्तूरी ने जो कुछ कहा था, वह बिश्नोई पूर्णतः विश्वसनीय मान बैठी थी। फिर हरिया ने भी तो उसकी पुष्टि कर दी थी। इसीलिए आज अपना ही आत्मज जहर-सा कड़ुआ लग रहा था। चाह रही

थी कि वह वहाँ से चली जाय और कुमार ने जो किया है, उस कलंक के संताप से तो दूर हो जाय। कोई यह न कहे कि मा बैठी देखती रही और बेट ने यह गजब कर डाला। कस्तूरी का मुँह किसने बन्द कर दिया है? क्या कहने में कुछ कसर रखी उसने? फिर भी आकर वह क्या-क्या न कहेगी? क्या उसके सामने सिर उठाने की हिम्मत रह गई है मुझ में?" तिस पर सुन्दर बाबू की यह सहानुभूतिपूर्ण वाणी तो उसके मर्म को छू गई थी। जिस व्यक्ति से संवेदना पाने की आशा न हो, वही जब हार्दिक सहानुभूति उँड़ेलता है तो पीड़ा गलकर बहने लगती है। हृदय का बोझ हलका होने लगता है।

"माजी, आप तो थोड़ी सी बात पर बहुत दुःखी हो गई जान पड़ती हैं। आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। आप यहीं रहें। कुमार को कपूत, लम्पट कह रही हैं, यह समझ में नहीं आता। आपको शायद कोई गलतफहमी हुई है। वह लुच्ची कस्तूरी कुछ कह गई है, तो उस पर यकीन करने की जरूरत नहीं है। कुमार को आने तो दीजिये। सब पता लग जायगा।"

"अरे भैया! वह अब नहीं आयगा। तुम्हें पता नहीं मामला कहाँ तक पहुँच गया है?····मेरे तो करम ही फूट गए। मुझे पता होता तो इन वकील साहब की छाया से भी उसे दूर रखती।"

"वकील साहब की छाया से?" अत्यधिक आश्चर्य के भाव से सुन्दर बाबू ने अपनी तर्जनी ओठों के पास रखते हुए और सिगरेट को पैर-तले कुचलते हुए दोहराया—"माजी! आप क्या कह रही हैं? उमा बाबू को तो बरसों से जानता हूँ। यह सही है कि अपने-अपने काम-धंधों में लगे रहने के कारण हम मिल नहीं पाते, पर यह बात क्या है, कुछ समझ में नहीं आती? आखिर आप कहना क्या चाहती हैं?"

"भैया! तो निर्लज्ज होकर कहना ही पड़ेगा···" आर्द्र कण्ठ से कहा बिश्नोई ने—"अमिता को लेकर कुमार कहीं चला गया है और सिर्फ वकील साहब ही इस बात को जानते हैं।" कहते-कहते बिश्नोई ने अपने पल्ले में मुँह इस प्रकार ढक लिया कि उसकी डबडबाई हुई आँखें ही दिखती थीं।

सुन्दर बाबू को जैसे पाला मार गया। एक क्षण वह स्तब्ध मौन खड़े रहे।

सहसा विश्वास कर लेने को जी नहीं चाहा। "क्या यह सब ठीक है, माजी? एकदम सच है? किसने कहा?"

बिश्नोई कुछ न बोलकर पीछे हट गई और सिर पकड़कर अन्दर बिछी चारपाई का सिरहाना लगाकर फर्श पर ही बैठ गई। सुन्दर बाबू उसके आघात का, पीड़ा को, अन्तर को मार्मिक व्यथा को समझ रहे थे, चौखट से भीतर आ किवाड़ के पास ही खड़े हुए थे। संवेदना से बोले "माजी! कुमार भाग नहीं सकता। मैं उस लड़के को अच्छी तरह समझ गया हूँ। वह अवश्य लौटेगा, और आपसे क्षमा माँगेगा।" तनिक रुककर सुन्दर बाबू ने गंभीरता से फिर कहा—"लेकिन, माजी यदि यह बात ठीक है और उमा बाबू की जानकारी में सब कुछ हुआ है तो इसमें दुःख की कोई बात नहीं है। उमा बाबू को मैं जानता हूँ। मैं स्वयं भी समझ रहा हूँ····यदि उन दोनों में सच्चा प्रेम है तो माजी आपको उन्हें आशीर्वाद ही देना चाहिये।"

जैसे बिश्नोई के जले हुए कलेजे पर नमक छिड़क गया हो। "भैया, यह आप भी क्या कहने लगे? उस लम्पट को मैं आशीर्वाद दूँ, मुझे पता तक नहीं, और वह कुछ दिनो बाद बाप बनने वाला है!"

"हुं····! अरे!" सुनकर सुन्दर बाबू का सिर भी एकबारगी चक्कर खा गया। दाहिने हाथ से किवाड़ पकड़कर वह सँभले। इसी बीच उन्होंने देखा कि अपने मुँह पर पल्ले को उसी प्रकार दृढ़ता से कसे हुए बिश्नोई लुढ़क गई अचेत-सी। उसका सिर खट से फर्श पर बज गया।

सुन्दर बाबू चिल्लाए—"धृति! ओ धृति····ओ चन्दरी, इधर आओ।···· "

उनकी घबराहट भरी आवाज सुन दोनों वहाँ आ गये। सुन्दर बाबू ने उसी घबराहट से कहा—"कुमार की माजी को खाट पर लिटाओ तो। मैं अभी डाक्टर को बुलाता हूँ।" घबड़ाकर धृति और चन्दरी अन्दर आये। सहम गईं धृति बिश्नोई को देखकर। एकदम गुम-सुम, हाथ-पैर ठण्डे और अकड़े हुए।

सुन्दर बाबू के तुरंत फोन करने के बीस मिनट बाद डाक्टर मिश्रा वहाँ आ गये। बिश्नोई को देखा-भाला और इंजेक्शन देकर चले गए। कहते गए,

जाते हुए, "घबड़ाने की कोई बात नहीं, आराम करने दीजिये। ठीक हो जायँगी। हाँ, कोई ऐसी बात इनसे न कहें, जो इन्हें नापसन्द हो।"

चन्दरी को सुन्दर बाबू ने मिश्राजी के साथ 'मिक्श्चर' लेने भेज दिया और स्वयं शीघ्रतापूर्वक स्नान कर कपड़े बदलकर वह सामने उमा बाबू से भेंट करने चले गए। धृति को कॉलेज न जाने और बिश्नोई की सँभाल करने की आज्ञा दे दी उन्होंने।

उमा बाबू के यहाँ सुन्दर बाबू कभी छठे-चौमासे ही जाया करते थे। उस दिन जो कॉलेज के कवियों का जमाव था उसके बाद शायद आज ही पुनः जाने का अवसर हुआ था। ऐसे बहुत कम अवसर आते थे, इसलिए जब भी सुन्दर बाबू वहाँ पहुँचते उमा बाबू बड़े तपाक से उनका स्वागत करते और खातिर-दारी भी अच्छी ही करते थे। उस समय भी वह दो मुवक्किलों से घिरे बैठे थे, फिर भी उन्हें छोड़कर वह सुन्दर बाबू का स्वागत करने उठ खड़े हुए और अँग्रेजी में "आइये सुन्दर बाबू, आपके मिजाज तो अच्छे हैं?" कहकर उनका स्वागत किया। ओठों पर उनके स्वाभाविक मुस्कान थी।

मुवक्किलों की ओर दृष्टि फेंकते हुए सुन्दर बाबू ने कहा--"कुछ हर्ज तो नहीं होगा? तुम से थोड़ी बातें करनी थीं।"

"नहीं, नहीं, हर्ज कोई नहीं, इनकी तो अगले हफ्ते तारीख है, कुछ काग-जात देने आये थे।" उमा बाबू ने तभी मुंशीजी से कहा--"मुंशीजी, इनसे वह कागज ले लो, और कल रात का कोई वक्त ले लो, साढ़े सात-आठ तक का।" इतना कह वह सुन्दर बाबू के कंधे पर हाथ रख अन्दर ड्राइंग रूम में आ गये। मुवक्किलों से बात-चीत के समय भी रेडियो धीरे-धीरे बजता रहता था, क्योंकि उमा बाबू को उससे अपने शुष्क काम में भी अरुचि नहीं होती थी। उसे उन्होंने बन्द नहीं किया और सोफे पर बैठते हुए बोले—"कहो, सुन्दर मियाँ, क्या पियोगे? चाय मँगवाऊँ या कॉफी, हमारा हरिया भी कॉफ़ी बनाना सीख गया है।" वह कुछ औपचारिक ढंग से हँसे।

"चाय, कॉफ़ी, कुछ भी पीने की इच्छा नहीं है।" सुन्दर बाबू पर अपनी कोठी के गंभीर वातावरण की छाया थी।

"क्यों, क्यों, अरे भई, कुछ तो पियो हरिया! ···ओ हरिया!"

"जी सरकार!" दूर से उसकी आवाज आई और उसने दूर से सुन लिया—"कॉफी ले आ दो।"

उमा बाबू ने तब सुन्दर बाबू से कहा—"अब सुनाओ क्या ठाठ-बाट हैं?"

"क्या बच्चे घर में नहीं हैं? बड़ा सुनसान-सा लग रहा है"

"हाँ, सब लोग हैं कोटा। अपने राधिका बाबू हैं न वहाँ ····और अमिता को अभी होस्टल में दाखिल करा दिया है।" उमा बाबू ने कुछ इस ढंग से कहा कि सुन्दर बाबू को उस पिछली बात में असफलता की झलक दिखाई दी। और वह तुरन्त कह बैठे—"भाई वकील साहब! देखो, मैंने तो कुछ और ही सुना है और इसीलिए मैं तुरन्त तुम्हारे पास आ गया हूँ। तुम्हें मालूम हो है, बुरे-भले वक्त में हम दोनों एक-दूसरे के साथ रहते हैं। शायद तुम्हें मेरी सहायता की जरूरत पड़े।"

सुन्दर बाबू के आने पर जो प्रफुल्लता उमा बाबू की मुद्रा पर दिखाई दी थी, वह सहसा अदृश्य हो गई। सुन्दर बाबू कह रहे थे—"क्या सचमुच अमिता होस्टल में है? और कुमार कहाँ है?"

उमा बाबू आश्चर्य में डूब गए—तो क्या वह जो कुछ छिपाना चाहते थे, छिप नहीं सका है। क्या कुमार ने आकर इन्हें सब कह दिया? नहीं, कुमार कहता तो यह कुमार के विषय में प्रश्न क्यों करते? स्तम्भित हुए उमा बाबू उल्टे ही पूछ बैठे—"पर तुम्हें क्या पता लगा है, और कैसे, यह तो बताओ?"

सुन्दर बाबू ने तब उमा बाबू की हथेली दोनों हाथों के बीच लेते हुए वह सब उगल दिया, जो उन्होंने कुमार की मा से सुना था। और साथ ही यह भी बताया कि बिश्नोई के हृदय को गहरा आघात पहुँचा है। उमा बाबू बिश्नोई के बारे में सुन कर स्वयं सहम गए। और धीर-गम्भीर वाणी में बोले—"सुन्दर भैया, तुमने जो कुछ सुना सब ठीक है। हमारे यहाँ यह सिवा मेरे किसी को मालूम न था। यदि तुम्हारी मिसरानी ने हमारे दुर्भाग्य से यह सब समझ लिया है तो तुम्हें इसका प्रतिवाद करना होगा। भैया, इज्जत हमारी अब तुम्हारे हाथों में है।

अभी अमिता की मा को भी इस बारे में कुछ पता नहीं है। अभी हाल की अपनी बम्बई की यात्रा में मुझे यह सब ज्ञात हुआ और मैंने उस रोहतास नगर से पूरब कुमार के एक मित्र के मकान में रख दिया है।"

हरिया तभी कॉफी ले आया। उसकी आहट पाकर उमा बाबू चुप हो गए और उसे जाने का संकेत कर दिया। हरिया चला गया तो उमा बाबू फिर बोले—"भैया, मैं क्या कहूं, भूल मेरी ही है, जो यूनीवर्सिटी में तालीम दिलाते हुए भी मैंने लड़की पर नियंत्रण न रखा। सच पूछो तो मैं बच्चों पर संदेह करना या उन्हें संदेह की दृष्टि से देखना ठीक नहीं मानता, इससे उनमें हीनता की भावना आती है। आत्मविश्वास कम हो जाता है। पर यह जो कुछ हुआ है, उसमें मैं बिलकुल विवश रहा। नहीं जानता था कि इतनी बढ़ती हुई आत्मीयता का यह परिणाम सामने आयगा।"

बीच में ही सुन्दर बाबू बोले—"मैंने भी दोनों के प्रेम का कुछ आभास तो पा लिया था। पर, ऐसा हो जायगा इसकी तो कल्पना ही कैसे की जा सकती थी, उमा बाबू!"

"यही तो, सुन्दर भैया! अब तुम्हीं बताओ सिवा इसके और चारा भी क्या है कि दोनों की सिविल मैरिज कराऊँ। सख्ती करने में इस बात का डर था कि लड़की आत्महत्या कर बैठती और फिर बदनामी तो होकर रहती ही। बम्बई में वह समुद्र में कूदते-कूदते रह गई। मैं अपनी व्यथा क्या बताऊँ, सुन्दर भैया!"

रेडियो से तभी मीरा के पद के स्वर निःसृत हुए—

"अब तो बात फैल गई, जाने सब कोई।
मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।।"

और उमा बाबू ने खुला रेडियो बन्द कर दिया। उमा बाबू बोले—"वह अपने हृदय में एक गाँठ बाँधे रहती कि मैंने पाप किया था और कुमार की स्मृति उसे भावी पति को कभी हृदय से स्वीकार न करने देती। उसके अन्तर का रुदन आजीवन समाप्त न होता और जब-जब उसके जीवन में मा बनने के अवसर आते वह आजकल के दिनों को याद कर रो उठती। मा-बाप को भी शायद कोसती

सुन्दर भैया·····कुमार लड़का बुरा नहीं है। मैं जानता हूँ उसने अमिता के कही और भाग चलने के प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि बाबूजी हमें क्षमा कर देंगे। हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं। अपनी भूल पर पर्दा न डालकर परिणाम की चिंता किये बिना उसे स्वीकार कर लेना बड़ा भारी चारित्रिक गुण है, सुन्दर भैया!"

"इसीलिए तो कुमार का स्थान मेरी निगाह में ऊँचा है।····खैर, आजकल कॉलेज-यूनीवर्सिटी के वातावरण में निर्दोष युवक-युवती दोष के भागी बन जायँ, इसमें अचंभा नहीं। पर उमा बाबू, मैं तो फिर भी वही बात कहूँगा कि लड़कियों को पूरी आजादी तभी दी जा सकती है जब पुरुषों में ऊँचे दर्जे का चरित्र हो। पर आजकल जमाना इससे बिलकुल उल्टा जा रहा है····तो अब तुम क्या करने जा रहे हो?"

"भाई, अपनी ओर से तो मैं कुमार को उसका हाथ पकड़ा चुका हूँ। डिलीवरी (प्रसव) के कुछ समय बाद में उनकी सिविल मैरिज कराने की सोचता हूँ। इसी बीच, मैं आपकी सच्ची हमदर्दी इसी शक्ल में चाहता हूँ कि आप भी कुमार को सहानुभूति दें और उसकी मा को इस ढंग से समझाएँ कि वह अमिता को स्वीकार कर सके। इसी में कुमार के भावी जीवन की सफलता निहित है। मैं समझता हूँ, अमिता जैसी स्थिति में अब है, वैसी ही स्थिति में यदि कुमार उसे छोड़ बैठता तो उसका जीवन भी निश्चय ही निरुद्देश्य बनकर रह जाता। पर, मैं जानता हूँ कि चाहे कुछ भी हो, अब वह अमिता का पति है और रहेगा।·····"

सुन्दर बाबू के सामने सहसा धृति का चेहरा उभर आया और अन्दर से कोई बोल पड़ा कि 'उसके लिए वर ढूँढने में देरी न कर सुन्दर।'

सुन्दर बाबू ने कहा—"तुम ठीक कहते हो, उमा बाबू! ऐसे मामलों में दकियानूसी नजरिया रखने से काम बिगड़ता ही है। हम अपने ही बच्चों की जिन्दगी बरबाद करते हैं। इसलिए तुमने जो रास्ता अपनाया है, वही समझदारी का है। कुमार इतना आगे बढ़कर भी मेरी सहानुभूति का हकदार है, क्योंकि वह अपनी जगह पर मजबूत है और सब कुछ सहने को तैयार है। मैं उसकी मा

को समझाऊँगा, उमा बाबू, आप निश्चिंत रहें।"

हाथ-घड़ी पर दृष्टि डालते हुए सुन्दर बाबू उठ खड़े हुए और उमा बाबू ने अंग्रेजी में कहा—"धन्यवाद!" सुन्दर बाबू चले गए पर उमा बाबू उनका आश्वासन पाकर भी उस क्षण चिंतित-से बैठे रह गए जैसे अपने को ही कोस रहे हों।

सुन्दर बाबू जब अपनी कोठी में प्रवेश कर रहे थे, तभी आ गया कुमार। उसने सुन्दर बाबू को उमा बाबू की कोठी से बाहर आते हुए देख लिया था। इसीलिए उसका माथा ठनक गया। वह सुन्दर बाबू को आदर-भाव से प्रणाम करते-करते भी भयभीत हो उठा। सुन्दर बाबू ने स्वाभाविक मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया और आत्मीयता से उसका हाथ पकड़कर बोले—"तुम इधर आओ मेरे कमरे में। अभी अपनी मा के पास न जाना।"

कुमार के चेहरे पर ऐसा ही विकार आया जैसे रंगे हाथ पकड़े जाने वाले चोर के चेहरे पर आ जाता है। वह चुपचाप सुन्दर बाबू के पीछे-पीछे उनके कमरे में आ गया। तब उसे बैठकर सुन्दर बाबू ने कहा—"कुमार! तुम से, मेरा मतलब तुम दोनों से जो कुछ हो गया है, उसकी मुझे पूरी जानकारी हो गई है और शायद तुम्हारी मा को भी ...."

इतना सुनकर ही कुमार स्याह पड़ गया, जैसे किसी छोटे पक्षी पर बाज ने झपट्टा मारा हो। उसकी गरदन झुक गई और वह शर्म से लगभग ऐसा हो गया जैसे अभी रो देगा। सुन्दर बाबू ने उसी प्रकार संवेदना के स्वर में कहा—"जैसे उमा बाबू ने तुम्हारी स्थिति को समझकर हमदर्दी दिखाई है, वही हमदर्दी तुम मुझ से भी पाओगे। लेकिन, मैं जब तक न कहूँ, अपनी मा से न मिलना। वह तुम्हें हरगिज नहीं देखना चाहती। वह तो तुम्हारे चाचा के यहाँ दादरी जाने वाली थी। मैंने ही रोक लिया है।"

सुनकर कुमार और भी व्यथित हो उठा। उसे लगा कि अपना सिर धुन डाले और मा के चरणों में बार-बार सिर पटककर उससे क्षमा माँगे। और तब उसे एक क्षण ऐसे ईश्वरीय विधान अथवा संयोग पर आश्चर्य हुआ, जो उसकी हर बात को पहले ही प्रकट कर रहा था।

गरदन लटकाये हुए ही उसने पूछा—"तो क्या मा को यहपता लग गया

कि मैं परसों रात का लोटा हूँ और कहाँ ठहर रहा हूँ?"

"नहीं, उन्हें अभी यह पता नहीं है कि तुम कहाँ ठहरे हो, यह तो मैं जान गया हूँ। लेकिन तुम आ चुके हो, और उनसे नहीं मिले हो, यह वह जानती हैं, वह तो यह जानती हैं···"—अत्यन्त गंभीर वाणी में कहा सुन्दर बाबू ने—"तुम अमिता को लेकर कहीं चले गए हो और अब कभी नहीं लौटोगे।"

सुनकर कुमार ने सहसा अपने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढँक लिया और रो पड़ा। सुन्दर बाबू ने धैर्य बँधाया—"कुमार! सचमुच तुम बहुत दिल-साफ लड़के हो। रोओ मत। सब ठीक हो जायगा। माजी को मैं सब समझाऊँगा। तुम्हारा यह पश्चात्ताप ही तुम्हारी सबसे बड़ी जीत है।" खड़े हो गए सुन्दर बाबू और बोले—"तुम तैयार होकर जाओ, यूनीवर्सिटी। माजी ठीक हैं, मैं तुम्हें उनकी क्षमा दिला दूँगा, कुमार। मेरा भी आफिस टाइम हो चला" कमरे से बाहर जाते वह बोले—"तुम्हें याद है न धृति के लिए तुमने कोई जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी।"

कुमार ने गरदन ऊपर उठाकर रुमाल से आँखें पोंछते हुए कहा—"हाँ, मुझे याद है, बाबूजी। याद है।"

× × ×

और संध्या समय जब सुन्दर बाबू आफिस से लौटे तो बिश्नोई रसोई में थी धृति ने पापा के घर लौटते ही बताया कि "काकी की तबियत कुछ सँभली हुई है। वह काम तो कर रही हैं, पर हैं गुम-सुम ही।"

"तो तू उन्हें आराम करने को कहना।"

"वह नहीं मानतीं? कहती हैं, काम करने से कुछ तो ध्यान बटेगा ही। हाँ, पापा, मैंने उन्हें बताया था कि कुमार भैया आ गए हैं, आप सो रही थीं, इसीलिए मेरे कहने से आपको नहीं जगाया।"

"अच्छा किया। इस पर कुछ कहती थीं।"

"हाँ, हाँ, कहा—अच्छा किया, नहीं जगाया तो। उस सत्यानासी से कह क्यों न दिया कि अपना मुँह अब मुझे न दिखाए। और पापा, कुमार भैया की लाई हुई सब चीजें उन्होंने ऐसे ही फेंक दीं, जैसे कोई कूड़ा फेंकता हो?"

आश्चर्य से भौंहें तन गई सुन्दर बाबू की। मुँह से केवल निकला, "अच्छा!"

धृति तब कुछ और न बोली। चन्दरी चाय ले आया। चाय पीकर सुन्दर बाबू लॉन में टहलने लगे। धृति से उन्होंने बिश्नोई को बुलवा भेजा। वह उसी प्रकार सिर पर पल्ला खींचे हुए आ गई। सुन्दर बाबू ने धृति को "जा अपना पढ़, लिख कहकर टरका दिया और अपनी चहलकदमी को बिश्नोई के आस-पास पाँच फीट तक ही सीमित कर दिया ताकि वह उनकी बात सुन सके। बिश्नोई आई तो सुन्दर बाबू ने कहा—"देखो, मैं कहता न था कि कुमार आयेगा, वह ऐसा लड़का नहीं, जैसा तुम उसे समझती हो।"

"आकर हो मुझे क्या निहाल करेगा, सत्यानासी?" पूर्ण उपेक्षा से कहा बिश्नोई ने।

सुन्दर बाबू गभीर होकर बोले—"माजी, आप इसलिए ऐसा कह रही है कि आप उसकी मा हैं। आपको उसके गुणों का पता नहीं। आप भाग्यवान् है कि आपको ऐसा पुत्र मिला है·····"

सुन्दर बाबू की वाणी सुनकर यद्यपि बिश्नोई पर कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई, पर कुमार के प्रति उसमें क्षमा-आदर-प्रेम का भाव जमाने के लिए ही यह भूमिका है, ऐसा भी वह समझ रही थी। उसने सीधे ही प्रश्न कर दिया—"आप भी सुबह उमा बाबू के यहाँ गए थे, धृति ने कहा था। जान पड़ता है, उन्होंने कुमार की तरह कुछ जादू आप पर भी चला दिया है?"

"नहीं, माजी।" सुन्दर बाबू ने पूरी दृढ़ता से कहा—"सो बात नहीं। उमा बाबू का इसमें क्या दोष है? एक मिनट को आप सोचिये, आप ही उमा बाबू की स्थिति में होतीं, और आपकी बेटी से ऐसी भूल हो जाती तो आप क्या करतीं?"

बिश्नोई तिलमिला उठी—"या तो उसे जहर दे देती, या आप मर जाती" कठोर होकर वह बोली—"लानत है, ऐसे मा-बापों पर जो अपनी जवान लड़कियों को इस तरह आजाद छोड देते हैं। भैया, हमारे ससुर ने हमें कभी अकेले और बिना घूँघट के नहीं निकलने दिया। पुराने लोगों से हमने सुना है, कुँवारेपन में बेटी की रक्षा बाप करता है; विवाह के बाद पति; और वृद्धावस्था में बेटा रक्षा करता है। पर, आजकल तो सब बातें उल्टी हो रही हैं। बेशरमाई की हद

हो रही है। सियानी लड़कियाँ अधनंगी तो बाजारों में फिरे हैं लड़कों का भी सारा कसूर थोड़ा ही है·····"

"यही तो माजी, मैं यही कहना चाहता हूँ कि कुमार का इसमें आप ज्यादा कसूर क्यों मानें? उससे जो कुछ हो गया, उसे वह स्वीकार करता है, उसके लिए माफी चाहता है और चाहता है कि उसे अब और गलती करने के लिए मजबूर न किया जाय।"

"और गलती से मतलब?"—बिश्नोई की वाणी में अब भी तिक्तता थी।

"मतलब—अब उसे अगर इस बात के लिए मजबूर किया गया कि वह अमिता को छोड़ दे—तो यह एक ऐसी गलती होगी, जिससे सबकी जिन्दगी में एक विष घुला रह जायगा।"

"विष तो अब घुल ही गया है, भैया। मैं तो पहले ही समझती थी कि वकील साहब और आप एक तरफ होंगे। रहे, अमिता को लेकर चाहे जहाँ रहे, मुझसे अब क्या मतलब? मैं भी अब कहीं पड़ी रहकर अपने दिन काट लूंगी"

"नहीं, माजी, यह तो आप ठीक नहीं कह रही हैं? मैं कहता हूँ लड़का लड़की को पसन्द करता है और कन्या का पिता लड़के को पसन्द करता है, फिर लड़की सब तरह से ठीक, पढ़ी-लिखी है। घर भी तो ऊँचा है, इसलिए आपको भी यह स्वीकार कर ही लेना चाहिये।"

"भैया, जब कुमार सब कुछ कर चुका और वकील साहब ने उसे शह दे दी तो मैं किस खेत की मूली हूँ, मुझसे पूछने की क्या जरूरत। मैं तो समझ लूंगी, मेरे कोई बेटा नहीं था। जो लड़की पढ़ते वक्त ही अपने पर काबू न रख सके तो आगे भी उससे क्या उम्मीद की जा सकती है?"

"माजी!"—अब सुन्दर बाबू ने लगभग हारी हुई वाणी में कहा—"ऐसा रुख अपनाकर तो न आप अपना भला करेंगी, और न कुमार का, न अमिता का। आपको शायद यह इसलिए स्वीकार नहीं कि वह आपकी जाति की नहीं है।'

"यही क्या, बीस बातें हैं भैया। मन में किस मा के चाव नहीं होता कि वह अपने लड़के की बारात देखे, उसके दरवाजे पर बाजे बजें। कौन अपनी बहू को लाड़-प्यार से घर नहीं लाता?··· कुमार ने मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फेर

दिया।" बिश्नोई का गला भर आया।

सुन्दर बूबा भी लगभग व्यथित हो गए। उसकी पोड़ा ने उन्हें भी उस क्षण हिला दिया। पर उन्होंने अपना धैर्य न छोड़ा।

"माजी, इस मामले में थोड़ा धैर्य रखना ही पड़ेगा। आज कल गैर-ज़ाति में शादी-ब्याह हो जाना ऐसा गुनाह नहीं कि कोई जाति-बाहर कर दे। मैं यह मानता हूँ कि मा-बाप सन्तान का रिश्ता तय करें, यह ठीक है। पर आजकल के समय को देखते हुए यह भी जरूरी है कि बच्चों के भविष्य के बारे में सोच लिया जाय और उनसे भी राय ले ली जाय। आप तो जानती हैं। सियाना लड़का भाई बराबर होता है।"

"हाँ, हाँ, सुन्दर बाबू, मैं समझती हूँ।" बिश्नोई खीझकर बोली—"आप यही चाहते हो न कि मैं अमिता को स्वीकार करूँ और बेटे के पाप पर पर्दा डाल दूँ बेशर्माई का। ऐसे बेटे को गोली से नहीं उड़ा देना चाहिये जो कुल को कलंकित करने की हिम्मत रखता है। वकील साहब को अपनी इज्जत का सवाल बीच मे न होता तो क्या कुमार को जेल नही हो सकती थी?"

सुन्दर बाबू निरुत्तर रह गए। एक क्षण मौन छा गया। फिर सुन्दर बाबू बोले—"माजी, आपकी सब बातें ठीक है, लेकिन अब स्थिति दूसरी है। वकील साहब जो कुछ करना चाहते हैं, उसमें उन्होंने अपनी ही इज्जत बचाने की बात नहीं सोची है। पर कुमार की प्रतिष्ठा का भी सवाल इसमें जुड़ा है। फिर आप सोचे, अमिता से ऐसे गहरे सम्बन्ध होने के बाद उससे उसे जुदा रखकर क्या हम उसका जीवन भी कामयाब बना सकते हैं। माजी, इसमें कुमार की ही भलाई है। और सच मानिये, यह कुमार की वीरता है कि वह अमिता को स्वीकार करने के लिए तैयार है, अन्यथा समाज के भय से ऐसे मामलों में लड़के दूसरों की लड़की की जिन्दगी को बरबाद कर अलग हो जाते हैं।"—दृढ़ता से कहा सुन्दर "बाबू ने, और ऐसे वीर लड़के की मा होकर आप यह कभी नहीं चाहेंगी कि आपका लड़का या कोई भी लड़का किसी लड़की की जिन्दगी बरबाद करने की छुट्टी पा जाय। ऐसे मामलों में लड़कों को प्रसन्नतापूर्वक या बलात् लड़की का हाथ पकड़ने के लिए मजबूर करना ही चाहिये। वह अपनी जिम्मेदारी से भाग जाए यह

हमें सहन नहीं होना चाहिये। ऐसा रुख सख्ती से अपनाकर ही हम इस बढ़ती हुई बीमारी को रोक सकते हैं माजी। और इसीलिए मैं कहता हूँ अमिता-कुमार को आशीर्वाद देकर आप कोई समाज-विरोधी कार्य न करेंगी। जितना कि मैं कुमार के पिताजी के बारे में सुन चुका हूँ, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि वह कुमार को क्षमा कर देते और इस बात से प्रसन्न होते कि वह अपने दायित्व को पुरुष की तरह भी निभाना जानता है।"

बिश्नोई निरुत्तर रह गई। ठण्डे, शान्त स्वर में उसने कहा—"यह तुम ठीक कहते हो कि लड़कों को किसी का जीवन बरबाद करने की छुट्टी नहीं होनी चाहिये। इसी नाते मैं कुमार को क्षमा कर सकती हूँ। पर क्या करूँ, भीतर से मैं इतनी कुपित हूँ कि कुमार सामने आये तो कान पकड़कर उसके दो चपत लगाए बिना न छोड़ूँ।"

सुन्दर बाबू हँस पड़े—"सो तो यह अधिकार आपसे कोई नहीं छीनना चाहता। आप दो नहीं, चार चपत लगाओ, कुमार के।" और एक नाटकीय ढंग से उन्होंने कहा—"कुमार तो सुबह से यह चाँटे खाने के लिए प्रतीक्षा में है, मैं उसे अभी बुलाता हूँ—कुमार! कुमार! इधर आओ तो कुमार!" पूरे जोर से कुमार को पुकारकर सुन्दर बाबू ने बिश्नोई को चकित कर दिया। लगभग फुदकता हुआ कुमार वहाँ आ गया, तो सुन्दर बाबू ने बिश्नोई की ओर तर्जनी करते हुए कहा—"माँ से क्षमा माँगो!"

कुमार सच्चे हृदय से क्षमा चाहने वाले अपराधी की तरह बिश्नोई के चरणों में झुका तो गद्‌गद् कण्ठ से केवल "माँ" ही कह पाया और उसके नेत्रों से दो गरम आँसू निकलकर बिश्नोई के चरणों पर गिर गए। बिश्नोई ने चाहा कि वह पीछे हट जाये; पर, न जाने कौन अज्ञात शक्ति उसे कुमार के और भी समीप ले आई और उसने कुमार को अंक में भर लिया जैसे बरसों बाद बेटा माँ से मिला हो। सुन्दर बाबू की आँखें हर्षोल्लास से सजल हो आईं।

: १६ :

तालाब की तह में पहुँचकर चुपचाप बैठने वाली कंकड़ी को यह पता नहीं लगता कि वह सारे तालाब को छोटी-छोटी ऐसी लहरों से उद्वेलित कर आई है कि जो उत्तरोत्तर बड़ी होती जाती है और किनारा पाने से पूर्व टूटती नहीं। ऐसी ही स्थिति में थी लगभग अमिता भी। बाहर की दुनिया से सम्पर्क अब कुमार के माध्यम से ही हो सकेगा, यह उसने अपने नये स्थान के प्रथम दिन से जान लिया था। शनैः शनैः उन दो कमरों को छोटी-सी दुनिया को ही अमिता के लिए हर प्रकार से पूर्ण बनाने की चिंता कुमार को हो गई थी। अमिता भी अपने को उस एकान्त-वास के लिए धीरे-धीरे मजबूत बनाने लगी। दोनों ने मिलकर यह तय कर लिया था कि कुमार अधिक समय यहीं बितायेगा, रात को तो अवश्य ही। परन्तु, दिन में बाहर जाते समय वह मुख्य द्वार का ताला बन्द कर जाता था, ताकि यह किसी को पता न लगे कि उस मकान में दो व्यक्ति रहते हैं—और उनमें एक स्त्री है। और लौटकर जब आता कुमार तो भीतर से चटखनी दे देता। अमिता की पहले दिन की दिनचर्या लगभग वैसी ही थी जैसी किसी नयी जगह में आकर बसे हुए नए-नए दम्पति की हो सकती है। वह भीतर ही भीतर बहुत अधिक चिंतित अथवा भयभीत न थी, फिर भी परिजन या स्वजन वृन्द से सम्पर्क बनाने की कोई इच्छा मन में नहीं थी। माँ लौटकर क्या सोचेगी? क्या यहाँ आयेंगी? सुधेश-दिनेश क्या दीदी को याद न करेंगे? और कालेज में शशि, पुष्पा, कल क्या मेरी चर्चा न करेंगी।—बाबूजी क्या क्षमा करके भी हमें हीन न समझेंगे? ऐसे प्रश्न उसके मन में बराबर उठते और कभी-कभी वह कुमार से भी ऐसे ही प्रश्न कर बैठती और कुमार का साहचर्य पाकर वह उतने ही समय के लिए सब कुछ भूल भी जाती।

इसी नए जीवन की भूमिका अभी संपूर्ण न हुई थी। दूसरे दिन सुबह ही सुबह आठ बजे जमना ने बाहर से आवाज दी—"कुमार! कुमार! बड़े अजीब आदमी हो भाई, दिन में भी ताले देकर बैठते हो!"

आवाज सुनते ही दोनों चौंक गए, डर गये, और अमिता सचमुच सफेद

पड़ गई। कुमार ने धीरे से कहा—"स्नानागार में चली जाओ। मैं सब ठीक कर लूँगा।" और उसी क्षण वह चिल्लाया—"आया भाई, जमना ! तुम हो क्या ? यार यहाँ कुत्ते बहुत है भीतर घुस आते हैं····" भागते हुए द्वार तक आने का उपक्रम किया कुमार ने और द्वार खोल दिए।

अन्दर आते हुए जमना ने कहा—"मैं भी शाम को आया था। ताला बन्द देखकर लौट गया। सोचा, देख तो आऊँ, क्या-क्या काम हुआ है ? कभी तुम यह सोचो कि मित्र ने मित्र के सुख-दुख की खबर ही नहा ली।"

आँगन में आकर जमना ने हैण्ड पम्प देखा, "अब तो बड़ा हल्का चलने लगा है" उसने संतोष प्रकट किया।

कुमार बोला—"हाँ भाई, देखो उधर कमरों में प्लास्टर भी हो गया है और सफेदी भी। किवाड़ भी चढ़ गए। और कल जोड़ियों पर रंग भी करा दूँगा।"

"अच्छा, एकदम इतना काम करा लिया ! बड़ा होशियार है ! ऐसे कितने मजदूर लगाए ? क्या खर्च आया, देख यार किराये में धीरे-धीरे काट भी लीजो। मैं अब तेरे से हिसाब क्या लूँगा।" कहते-कहते जमना ने भीतर कमरे में झाँका। बिलगनी पर जनानी धोती टँगी देखकर हर्ष से चिल्ला उठा—"तो आप हमारी भाभीजी को ले आये हैं ! कहाँ छुपा रखा है भाई ?" और उसने अपने चारों ओर दृष्टि फेंकी।

कुमार सकपका गया। बोला—"भाई, वह भी कहीं छिपाने की चीज है। आ जायेगी तो आप देख लेना। यह दो-चार चीजें तो मेरे सामान में बँधी आ गई है। समझे।" जमना के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव दब गए, जैसे दूध के उबाल पर पानी पड़ गया हो।

"लाओ, मैं ही तुम्हारे लिए स्टोव पर चाय बना दूँ।"—कुमार ने कहा।

"नहीं, नहीं, भाई, तकलीफ करने की जरूरत नहीं। मैं अभी घर से पीकर आया हूँ····" जमना ने बाहर की ओर कदम उठाते हुए कहा।

और कुमार ने उसका जाना चाहते हुए भी औपचारिक ढंग से कहा—"जाओगे ? थोड़ा बैठते।"

"फिर सही, अब तो आफिस को देरी हो जायेगी।"

इस तरह जमना आकर चला गया। अमिता को जान में जान आ गई। कुमार ने फिर झट चटखनी चढ़ा दी। दोनों ने मिलकर तब राहत की साँस ली। चाय बनाकर पी और चाय पीते-पीते अमिता ने एक बार फिर कहा—"कुमार! क्या कहीं और नहीं रहा जा सकता?"

"नहीं अमी! परीक्षाएँ होने तक यहाँ से कैसे जाया जा सकता है। फिर अभी कुछ महीनों तक हमें बाबूजी की सहायता चाहिये ही।"

"सिर्फ बाबूजी की सहायता ही चाहिये, और किसी की नहीं?"

कुमार चुप रह गया, तब अमिता ने पूछा, "क्या हमें तुम्हारी माताजी की ही सहायता अधिक नहीं चाहिये?"

"मैं समझता हूँ अमी, वह हमें मिल ही जायेगी।"

"मेरा मन भीतर से बहुत घबड़ाता है कभी-कभी।"

"अमी! मन अकेले में ही डरता है। पर, अब तुम अपनी राह अकेली नहीं चल रही हो। तुम्हारा हाथ अब मेरे हाथ में है अमी!" आत्मविश्वास था कुमार की वाणी में।

इसी आत्मविश्वास का अमिता में संचार कर कुमार यूनीवर्सिटी चला गया, लेकिन उस समय फिर उससे एक भूल हो गई। क्या कुछ बड़ी भूलें हम से तब नहीं होतीं, जब कि हम अपने पर अधिक आत्मविश्वास कर बैठते हैं। जमना के जाने के पश्चात् ऐसी निश्चितता की भावना से वह भर गया कि स्वयं जाते समय बाहर से ताला लगाना भूल गया। और अपने आप भी भूली हुई अमिता भी, अपने घर का काम करने में लग गई।

दोपहर हुए जब सहसा एक फटाके के साथ किवाड़ खुल गए तो अमिता फिर वैसी ही पीली पड़ गई और उसने वहाँ वह ताला रखा देखा, जो कुमार जाते समय बाहर लगा जाया करता था। मन में बिजली-सी कौंध गई। इस समय तो कुमार कभी लौटकर नहीं आता!····और आज ताला नहीं लगा गए?···अगले ही क्षण किसी के अन्दर आने की पदचाप के साथ ही सुनाई दिया—"अमिता बीबीजी!"

अमिता डर गई जैसे कोई भूत-प्रेत उसे पुकार रहा हो। पर स्वर परिचित

जान पड़ता था, इसलिए वह तनिक सँभली। अगले ही क्षण उसके सामने खड़ा था हरिया।

"हरिया!" अमिता चिल्ला पड़ी जैसे उसे अपनी ही आँखों ने झुठला दिया हो।

"हाँ बीबीजी, तीन दिन हो गए मन आपको देखने के लिए भटक गया।"

सभीत स्वर में कहा अमिता ने—"पहले बाहर के किवाड़ उढ़ाल आ फिर बात करना।"

हरिया किवाड़ बन्द कर आया तो अमिता ने तुरन्त पूछा—"यहाँ का पता कैसे लगा, सच-सच बताओ?"

"बीबीजी, हरिया ने नीची गरदन कर अपने कुरते को अँगुलियों से बटते हुए कहा—"सच बता दूँ। सुन्दर बाबू···"

"सुन्दर बाबू से?"—घबड़ाकर अमिता ने बीच में ही पूछा।

"मतलब अपने बाबूजी के पास सुबह आये थे सुन्दर बाबू और उन्हीं को बाबूजी बता रहे थे··· "

"···कि मैं यहाँ हूँ?"

"हाँ, बीबीजी, मैंने कॉफी देते-देते सुन लिया था। वरना मुझे कौन बताता। बीबीजी, आपके आने से कोठी सूनी हो गई है! आप क्यों आ गई हो यहाँ? अभी तो माँजी भी नहीं आई कोटा से।"

अमिता अवसन्न खड़ी रह गई। उत्तर सोचते-सोचते एक ही क्षण में उसके मस्तिष्क पर सैकड़ों प्रश्नों का दबाव पड़ गया। सुन्दर बाबू क्यों आये? बाबूजी ने उन्हें क्यों बताया? तो क्या सब को यह पता लग गया है? मुझे कुमार ने फिर क्यो नहीं बताया? और गहरी विवशता से भरी अमिता करुण हो गई। गीले कण्ठ से कहा उसने—"हरिया" तू जा यहाँ से, अब यहाँ कभी न आइयो···। और देख तूने मुझसे अब कुछ पूछा या किसी से कुछ कहा मेरे बारे में तो देख मैं सच कहती हूँ मैं डूबकर मर जाऊँगी।" लगभग रो आई अमिता। पर उस अवस्था में भी वह कमरे के भीतर जाकर दस रुपये का एक नोट ले आई और उसे हरिया की ओर बढ़ाते हुए वैसी ही गीली वाणी में कहा—"ले, इसकी अपनी घरवाली और बच्चों के लिए मिठाई लेता जाइयो।"

हरिया एक उदासी से घिर गया और उसे लगा जैसे उसने यहाँ आकर भूल की है। नोट लेने के लिए उसका हाथ आगे नहीं बढ़ा। दस-बारह वर्ष उसने उस कोठी में उमा बाबू के यहाँ सेवा की है। अमिता को भी अपने बच्चों की तरह गोदी में खिलाया है। और इसीलिए वह यहाँ खिचा चला आया था। शायद इसलिए भी कि उसने बिश्नोई से जो कुछ कह दिया था, उसका उसे पछतावा हुआ था, और अपने मन के उस तनिक से कलुष को वह यहाँ आकर और अपने को अमिता की सेवा में प्रस्तुत करके धो डालना चाहता था। पर वह भोला सेवक यह कब जानता था कि कभी-कभी आत्मीय-जनों की दुर्बलता की जानकारी का उन्हें सहानुभूतिपूर्वक मान करा देना भी माहुर घोल देना जैसा होता है। वह भी करुण हो आया—"गलती हो गई बीबीजी, माफ करना। पर इस सेवक को भूल न जाना।" हरिया जाने के लिए मुड़ गया।

अमिता तब घर की स्मृति से द्रवित हो उठी। ऐसे ही जैसे पहली बार ससुराल आने पर किसी लड़की से पिता के घर का कोई व्यक्ति भेंट कर लौटता हो। हरिया के पीछे-पीछे वह दो पग बढ़ आई। व्रीडा से गरदन झुकाए आर्द्र कण्ठ से बोली—"हरिया, देख तुझे भगवान् की कसम है, किसी से कुछ कहेगा तो नहीं।"

"नहीं बीबीजी।"

"तो देख, ये रुपये ले जा, मैं कहती हूँ।"

हरिया ने तब भी रुपये नहीं लिये और वह चला गया। अमिता फिर अपने चारों ओर प्रश्नों का समूह देखकर घबड़ा उठी। वह छोटे कपड़े तैयार करने, पढ़ने के कपड़े धोने या सन्दूक ठीक से लगाने में अपना मन नहीं लगा सकी। बार-बार प्रयत्न करने पर भी नहीं। सामने ही खिड़की में से रेलवे लाइन दिखती थी। झीने-झीने प्लास्टिक के पर्दे में से वह जब-तब कोई रेल तेजी से गुजरती देखती तो मन उसके साथ उड़ता। कभी वह सोचती यह पूरी रेल, इस पूरी रेल के अस्सी के अस्सी पहिये उसके ऊपर से क्यों नहीं गुजर जाते। इंजन की तीखी गूँजती सीटी कभी उसके रोम-रोम को झनझनाती हुई उसके शरीर में ही घुस जाती फिर लगता जैसे अस्सी के अस्सी पहियों ने पार्वती का रूप ले लिया है, और ठोकरों से उसे रोंदकर वह आगे बढ़ गई है। कुछ भी न कर

पाकर वह असमर्थता से रो पड़ी। रोती बैठी रह गई जैसे किसी बेजान काँसे की मूर्ति से अश्रु-प्रवाह हो रहा हो।

साँझ जब सिर पर आ गई तो उसने रसोई की तैयारी में अपने को यन्त्रवत् लगा दिया। घिर-घिरकर बरसने वाली बदरी की तरह आँसू ढुलकते रहे। काफी रात गए कुमार के आने पर तो एक बार जोर से रो दी।

"अमी! तुम अपना पागलपन शायद नहीं छोड़ोगी?"

खीझ भरे स्वर में अमिता बोली—"मुझे यहाँ लाकर क्यों रखा गया है?"

सुनकर आश्चर्य हुआ कुमार को। "हुआ क्या अमी?"

"मैं कहती हूँ, मुझे यहाँ रहकर भी निर्लज्जता से जीवन बिताना पड़ा तो मैं प्राण दे दूँगी!"

"अमी, तुम बहुत ही भावुक हो आती हो! आखिर कहना क्या चाहती हो?"

"तुम लोग इसका ढिंढोरा ही क्यों नहीं पीट देते? ताला आज खुला क्यों छोड़ गए? यहाँ हरिया आ धमका! बाबूजी ने सुन्दर बाबू को सब बता दिया!"

"यह तो सही है अमी, पर हरिया का यहाँ आना सन्देहास्पद है। उसे यहाँ का पता किसी ने नहीं बताया था।"

"उसने बाबूजी के मुँह से सुन लिया था। पर अब यहाँ नहीं आयेगा मैंने मना कर दिया है। लेकिन सुन्दर बाबू को क्यों कहा गया?"

"अमी! तुम नहीं जानती हो, यदि बाबूजी हमारे लिए समाज में सहानुभूतिपूर्ण वातावरण तैयार न कर सके तो हमें शेष आयु भी कबायलियों की तरह जहाँ-तहाँ भटकते हुए बितानी होगी। तुम्हारी तसल्ली के लिए एक समाचार लाया हूँ अमी, बाबूजी ने सुन्दर बाबू के माध्यम से माँ का हृदय बदल दिया है। वह मुझे आज सब जानकर भी क्षमा कर चुकी हैं।"

"सच!" हर्ष से अमिता का चेहरा भी चमक उठा। पर दूसरे ही क्षण वह उदास हो आई। "क्या वह मुझे सचमुच हृदय से स्वीकार कर लेंगी?" आशंका से आहिस्ता से उसने पूछा।

"अवश्य स्वीकार करेंगी, अमी! वह मेरी माँ है।"—अमिता की आँखों में झाँकते हुए कहा कुमार ने।

"बाबूजी से तो भेंट नहीं हुई? हरिया से पता लगा है कि माँ अभी नहीं लौटी हैं। मुझे उनका बड़ा डर है कुमार!"

"अब तो तुम्हें सबसे डर लगेगा।" कुमार ने छेड़खानी की—"तब ही एकदम निडर हो गई थीं तुम तो।" और फिर एक विजयोल्लास से वह बोला—,देखो अमी, बाबूजी का आशीर्वाद पाकर हमें अब किसी से भी डरने की आवश्यकता नहीं, चलो। खाना खाएँ और आज तुम्हें वह कविता सुनाएँगे।"

"कौनसी ?"

"जो अपनी दोस्ती के शुरू के दिनों में लिखी थी। याद है, एक बार तुम्हारी माताजी ने तुम्हें लगभग कैद कर दिया था, मिलने की भी मुनादी थी।"

"याद है।" मुस्काई अमिता—"क्या वही 'प्राण जलता रहा, प्यार पलता रहा'।"

"हाँ, वही" कुमार की मुस्कान में प्यार था।"

"नहीं, नहीं, कुमार, अब उस कविता के दिन नहीं रहे। इस बेला में विरह का नाम भी मुँह पर न लाना।"

"वाह! लिखने वाले की बहुत-सी बातें भविष्यवाणी-सी सत्य होती हैं। उसकी वे पंक्तियां याद हैं?" कुमार गाने लगा—

"जल रही है शमा, जल चुका है पतंग।
हँस रहा क्रूर जग, बज रहा है मृदंग॥"

"हाँ, हाँ, याद है। बस रहने दो।" कुमार के मुँह पर हाथ रखकर अमिता हँस पड़ी। तब दोनों खाने की तैयारी करने लगे।

खाते समय कुमार को माँ की याद हो आई, और वह एक खामोशी में डूब गया। अमिता इस अवसर पर अपने वह क्षण याद करने लगी थी, जब वह एक ही मेज पर बैठकर भाइयों और पिता के साथ संध्या का भोजन करती थी। कुमार ने उसका भाव जान लिया। "क्या घर की याद आ रही है?"

"हाँ।"

"मुझे भी माँ का खयाल हो आया है। अमी, यह स्थिति जल्दी ही खत्म हो तो अच्छा है। पर इस पर अपना वश नहीं है। हम अपनी जीवन-नौका को

स्वयं खेने के लिए स्वतंत्र हैं। फिर भी आने वाले कुछ महीनों में बाबूजी हमारी नौका के ध्रुव रहेंगे।"

"बाबूजी तो अब यहाँ नहीं आएँगे न कुमार? इस जगह का चुनाव ठीक नहीं रहा। बाबूजी जानते ही ह और सुन्दर बाबू और हरिया भी जान गए हैं। फिर किसी भी सयय जमना का आना भी हो सकता है। और किसी दिन वह बेतकल्लुफ आदमी अपनी घरवाली के साथ आ गये तो।"

"अभी! मैं सोचता हूँ, एक-दो दिन में ही हम अब यह जगह बदल लें और बाबूजी को भी उसका पता न चले। केवल इतना ही कह दूँगा कि हम वहाँ चले गये हैं।"

"हाँ, यह ठीक रहेगा। चाहे मुझे अकेली कितने ही निर्जन में रहना पड़े कुमार, पर यहाँ आशंकित अवस्था में रहना ठीक नहीं।"

अभी थोड़ा ही खाया था अमिता ने कि जी मतलाने लगा उसका और थाली पर से उठकर वह लेट गई। कुमार ने तत्काल उसे दो लौंग दे दीं, ताकि जी न मतलाये। कुमार से भी तब भरपेट नहीं खाया गया।

× × ×

स्थान बदलने का निश्चय तब मन में लिये कुमार सुबह की चाय पीकर निकल गया। नौ बजे तक लौट आने का संकल्प अमिता पर प्रकट कर वह कहता गया, "इसी बस्ती में या आस-पास ही जगह देखूंगा, ताकि अकेले में भी यह थोड़ा सामान उठा ले जाने में अधिक असुविधा न हो। तुम भीतर से ही बन्द कर लो। अभी तो लौट ही आऊँगा।"

अमिता ने द्वार पर भीतर से संकल चढ़ा दी, पर न जाने उसका मन भीतर ही भीतर किस आशंका से भर उठा। पिता का आशीर्वाद पाकर भी वह यह सोचने लगती, दुनिया तो यही कहेगी कि अमिता ने शादी से पहले ही··· और मुँह छिपाकर कहीं चली गई है। निर्लज्ज है, कुल-कलंकिनी है···और फिर भावी प्रसव की पीड़ा की कल्पना कर भी वह सिहर उठी। आने वाले शिशु की कल्पना से विभोर हो जाने के क्षण उतने नहीं आते, जितने कि विषम अनिष्ट-पूर्ण कल्पनाओं की काली छाया में डूब जाने के क्षण आते हैं। ऐसे क्षणों में

काम करते-करते उसके हाथ रुक जाते हैं। हृदय का स्पन्दन तीव्र हो जाता है और बाहर चल रही आँधी का भी जैसे बन्द किवाड़ों की तेज घड़घड़ाहट से अनुमान हो जाता है वैसा ही कुछ अनुमान अमिता कर बैठती। सचमुच आने वाली आँधी से उसे बचाने के लिए ही पिता मानो चट्टान की तरह अकेले सामने खड़े हो गए हैं। पर यह क्या, यह किवाड़ों की खड़खड़ाहट कैसी? सोचते-सोचते अमिता चौंक उठी। सचमुच बाहर कोई किवाड़ खटखटा रहा था। एक असमंजस में पड़ गई अमिता। हृदय बहुत तेजी से धड़क उठा। "हाय राम! कौन आगया?"

सहसा अमिता को सुन पड़ा। "खोलना बीबीजी, मैं हूँ" स्वर हरिया का था, पर अभी तो शायद बाबूजी बँगले पर ही होंगे? यह इस समय कैसे आया? अमिता ने सोचा मैंने तो इसे आने के लिए मना किया था, संभव है बाबूजी का ही कोई संदेश लाया हो। काँपते पैरों से अमिता अपनी धोती सँभालते हुए ड्योढी तक आई और आहिस्ता से संकल खोल दी, इतनी आहिस्ता से कि बाहर खड़े व्यक्ति को साँकल का भान तक नहीं हुआ और अमिता स्तम्भित-सी पीछे हट आई, आँगन तक तो किवाड़ न खुले। फिर सहसा झटके से किवाड़ खुल गए जैसे बन्द होने के धोखे में ही अनायास धक्का देने पर एकदम खुले हों। सामने खड़ा था महेश—खाकी पेंट और कोट तथा खाकी साफा बाँधे हुए बगल में पिस्तौल लटकाए हुए। हाथ में एक फाइल-सी थी। अमिता की आँखों में एक क्षण अँधेरा छा गया। हृदय धक्-धक् करने लगा। तभी महेश ने पीठ के पीछे हाथ ले जाकर द्वार उढ़ार दिया और टेढ़ी भृकुटी व पैनी आँखों से अमिता को देखते हुए धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए वह आगे बढ़ गया अमिता से लगभग डेढ़ फुट की दूरी पर। अमिता भी भय से काँप उठी। उसके मुँह से चीख निकलते-निकलते रह गई। अमिता पर वैसी ही कुटिल दृष्टि डालते हुए महेश कुछ कहना ही चाहता था कि अमिता बोली, कुछ-कुछ हकलाती हुई-सी—"तुम···तुम यहाँ क्यों आये हो?"

महेश कृत्रिम हँसी हँसा—"यह भी बताना होगा?···जरा देख तो लूँ कि अब तुम्हारा लँगड़ापन किस हद तक बढ़ गया है?"

"देखो महेश, बिना बुलाए किसी के घर में घुस आना कहाँ की शराफत है?"

जैसे दुर्भाव, क्रोध, ईर्ष्या और प्रतिशोध से मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है, महेश की ऐसी ही स्थिति थी। वह अपने हाथ की फाइल पर दृष्टि डालते हुए कठोरता से बोला—'वह' तुम्हारे चहेते कहाँ हैं? उन्हें गिरफ्तार करने आया हूँ। ···इसी नाते मुझे किसी के घर में घुसने के लिए इजाजत नहीं लेनी पड़ती।"

"तो तुम यहाँ उन्हें पकड़ने आये हो? भला क्यों?"

"जो, एक शरीफ लड़की को भगाने और उस पर बलात्कार करने वाले का और क्या हो सकता है?"

"महेश!" अमिता का स्वाभिमान जैसे जाग उठा—"तुम्हारा स्वभाव कुत्ते जैसा मालूम पड़ता है, एक बार तुम्हें दुत्कार दिया था उसे भूलकर फिर यहाँ चले आये हो। याद रखो, यहाँ से सीधे मुँह लौट जाओ, वरना ठीक न होगा।"

"खामोश!" गरजकर महेश बोला—"अगर तुम सीधी तरह कुमार का पता नहीं बताओगी और मुझे मेरे कहने के मुताबिक बयान न दोगी तो तुम्हारी मिट्टी-पलीद कर दूँगा। समझीं?" महेश ने कहते-कहते फाइल को कटि में लगाकर आड़ा कर लिया।

अमिता का भय जाने कहाँ चला गया। बिल्ली जब अपने को किसी जाल में फँसते हुए और बेबस होते देखती है तो आँखें मूँदकर ऐसा तेज झपट्टा मारती है कि जाल टूट जाता है और वह मुक्त हो जाती है।

"जाओ, जाओ, जो मन में हो सो करो। तुमने क्या हमें कुम्हेड़ बतिया समझ रखा है? कुमार मेरे पति हैं, हमने सिविल मैरिज की है। किसी भुलावे में मत रहना महेश!" उत्तरोत्तर दृढ़ स्वर में अमिता बोली—"ऐसा न होवे कि चौबेजी छब्बे के दुबे ही बने रह जायें। अब ज्यादा जबान निकाली तो जबान ही खींच लूँगी। यह न समझना कि मैं यहाँ अकेली हूँ और जैसे चाहोगे मुझे धमका लोगे।"

महेश इतना सुनकर ठण्डा पड़ गया। फिर भी स्वर उसका ठण्डा न हुआ। "मुझे सब मालूम है। इस तरह की बातों से मुझे धोखा नहीं दे सकती हो अमिता। तुम्हारा सारा भेद मुझे मालूम है।" फाइल उसके मुँह के आगे ही हिलाते हुए कहा।

महेश ने—"पर याद रखना, कस्तूरी और हरिया के बयान मैं ले चुका हूँ। देखूंगा किस तरह तुम, कुमार और वकील साहब अपने मुँह से कालिख हटाओगे। यदि तुम मेरे मन के माफिक बयान दे सकती हो तो सब बच सकते हैं, सिर्फ कुमार को छोड़कर।"

"महेश, मैं इतनी नादान नहीं। तुम जरा से अपमान का इतना बड़ा बदला लेना चाहते हो। पर तुम सचमुच भोले हो, नहीं जानते कि किससे अटकने चले आये हो। सुन लो, मैं और कुमार पति-पत्नी हैं और यही नहीं, मैं कुमार के बालक की माँ बनने वाली हूँ। तुम चाहो तो इसका ढिंढोरा पीट सकते हो, और साथ-साथ नियादरा, कस्तूरी को भी हारमोनियम, तबला दिला दो। जाओ, अब यहाँ से!" इस कदर घृणा बिखेरते हुए कहा अमिता ने कि चोर के पाँवों की तरह महेश का दिल भी कच्चा हो गया। लेकिन रस्सी जलने पर भी उसके बट नहीं जाते। महेश ने कहा—"देखूंगा, फिर मत कहना कि महेश ने यह क्या किया?"

"अरे तुम करोगे क्या?" पढ़कर और इन्सपेक्टर होकर भी तुम मूर्खों की-सी बात कर रहे हो। आखिर तो नियादरा जैसे गुरु मिले हैं न! नीच! अमिता के स्वर में करारा व्यंग था।

"बहुत हो चुका अमिता! साँप से न खेलो!"

"जी नहीं, मैं तो गीदड़ से जी बहला रही हूँ···मूर्ख कहीं का! इतना नहीं समझता मेरी-तेरी राजी तो क्या करेगा काजी? इसलिए कस्तूरी, नियादरा के बयानों को और उन्हें सिरहाने लगाकर सोया कर।"

"अमिता!" क्रूरता से गरजा। आगे कुछ कहने ही वाला था कि कुमार लौट आया।

अमिता को जैसे बल मिल गया। "कुमार!"—उसने नेत्रों में व्यंग्य और उपेक्षा लिये महेश की ओर देखते हुए कहा—"यह तुम्हें बलात्कार के मामले में पकड़ने आये हैं इन्सपेक्टर साहब!"

"जी, कुमार आपका ही नाम है? दोपहर को आप कोतवाली में हाजिर हो जाइये, आपसे कुछ तफतीश करनी है।···"

कुमार ने अमिता का चेहरा देखा, उस पर किंचित् भय के चिन्ह न थे।

स्थिति को समझने की चेष्टा कर रहा था वह कि अमिता बोली—"यह वही महेश बाबू हैं, आपके···"

हल्की मुस्कान खेल गई कुमार के अधरों पर। अमिता बोली—"कस्तूरी, नियादरा और हरिया के बयान ले आये हैं और धमकाकर मेरा भी बयान लेना चाहते थे। कैसे बना रहे हैं इन्सपेक्टर साहब!" अमिता ने झपट्टा मारकर महेश के हाथ से ऐसी तेजी से फाइल छीन ली कि वह और कुमार देखते ही रह गए।

"अमिता!" एक पग आगे बढ़कर महेश गरजा कि अमिता ने फाइल के चिथड़े-चिथड़े कर दिए। और बेबस-सा पैर पटककर महेश बोला—"ठीक नहीं किया अमिता। अब मैं तुम्हें अदालत में खिचवाए बिना चैन न लूँगा!" कहा—तो महेश ने, पर उसके चेहरे पर पानी फिर गया।

कुमार बोला—"जा भाई जा, जो मर्जी हो सो कर। यहाँ से बिदा हो।" कुमार ने उसे सीने पर हाथ रख बाहर की ओर धकेलना शुरू किया, महेश एक खीझ के साथ स्वयं ही पीछे हट गया और 'देखूँगा' कहकर डण्डे खाये हुए कुत्ते की तरह ही लगभग भाग खड़ा हुआ। अमिता का आज वही स्वर फिर उसके कानों में गूँज उठा, "महेशजी, नमस्ते!" ओठ भींचकर वह मोटर साइकिल स्टार्ट कर फटाफट उड़ गया।

कुमार-अमिता इस घटना से हिल गए। अमिता ने कहा—"आज ही बाबूजी से यह बता देना। कहीं ऐसा न हो कि वह चमार सचमुच कुछ कर बैठे।"

"तुम्हें यह फाइल फाड़नी नहीं चाहिये थी।" कहते-कहते कुमार उन कागजों को सिमेटने लगा। "जोड़कर देखूँ तो कि क्या-क्या बयान लिए हैं।" पर कागज उलट पुलटकर देखने पर भी हरिया, नियादरा और कस्तूरी के अँगूठे के निशानों के सिवा उन पर लिखा कुछ नजर न आया। "तो कोरे कागज दिखाकर ही डरा रहा था गोदड़ कहीं का!" अमिता ने बड़बड़ाया। फिर भी तुम बाबूजी से मिल लेना दोपहर में ही। दोपहर को वह अदालत के बार रूम में मिल सकते हैं।"

"ठीक है, इसमें चिंता की कोई बात नहीं। महेश का उद्देश्य सिर्फ बदनामी उड़ाने का ही हो सकता है। इतना तो मैं भी समझता हूँ कि केस बनाने के लिए उसका कलेजा नहीं है। न बन ही सकता है। हाँ, मैंने ठीक यहाँ से दो गली

छोड़कर ही इससे अच्छी जगह देख ली है। उसके पास दूर-दूर तक कोई मकान नहीं है।"

"अच्छा तो कब बदलोगे?"

"शाम को ही।"

"जमना से नहीं मिलोगे?"

"नहीं, वह फिर कुछ पूछ बैठेगा। किराया उसके पास पहुँचा ही चुका था। आयेगा कभी इधर तो आप ही समझ लेगा कि छोड़ गए हैं। फिर कुछ दिन ठहरकर कभी बता दूंगा कि बाहर चला गया था।"

अमिता आश्वस्त होकर बोली—"नहीं, साफ ही कह आते कि भाई, दूसरी जगह शहर में ही ले ली है।"

"ऐसा सही," कुमार ने कहा—"आश्चर्य है कैसे कस्तूरी, नियादरा, हरिया को पता लगा?"

"आदमी जिस बात को छिपाना चाहता है वह किसी न किसी प्रकार प्रकट हो ही जाती है। हरिया ने देखो तो कैसा धोखा दिया। उसी ने आवाज देकर किवाड़ खुलवाये थे।"

"अच्छा! जरूर कुछ पैसा खाया होगा। यह धन आजकल अच्छे-अच्छों का धैर्य उखाड़ देता है।"

"मैं कल दस रुपये दे रही थी, मरे ने इसीलिए नहीं लिये। बाबूजी से कहकर इसका पत्ता गोल कराना है। मरा नमकहराम निकला एकदम!"

"सच।"

"आओ, खिचड़ी तैयार हो गई होगी? शाम को तुम वहीं खा आना, माताजी के साथ। उनको भी हुड़का आता होगा।" अमिता के स्वर में बिश्नोई के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी।

"अमी! ···सचमुच माँ तुम्हें पाकर बहुत खुश होंगी। उसके जीवन को साध पूरी हो जायेगी। ···अगर लड़का हुआ तो।" कुमार ने चौड़ी मुस्कान और हँसती आँखों से अमिता की ओर देखा तो उसकी पलकें लज्जा से नीचे झुक गईं।

: १७ :

जान-बूझकर उमा बाबू जल्दी क्लब चले गए थे। राजकिशोर माथुर भी प्रायः जल्दी आते थे। क्लब के सदस्यों की अच्छी-खासी मजलिस-सी जमती थी। उससे पहले तनिक सोफ्ते में ही उमा बाबू माथुर साहब से महेश की कुचेष्टाओं पर खुलकर बातचीत कर लेना चाहते थे। इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए ही उन्होंने शाम को बँगले पर न जाकर क्लब आकर ही चाय पी थी। उनके साथ-साथ ही एक और सदस्य वकील श्रीमोहन भी आ पहुँचे थे। इसी से दोनों रमी खेलने बैठ गए। दो-तीन राउण्ड होने पर टैनिस खेलकर लौटने वाले सदस्य भी 'इनडोर' खेलों में सम्मिलित होने के लिए आते रहे। देखते-देखते प्रायः हाल की सभी मेजों पर सदस्य बैठ चुके थे। पर उमा बाबू की आँखें अभी तक माथुर साहब को नहीं देख पाई थीं। इसीलिए वह आश्चर्य से भरे बार-बार हाल में निगाह डाल रहे थे। दो-तीन मेज छोड़कर ही पन्ना बाबू बैठे थे। वहाँ 'रबर' हारकर वह शतरंज खेलने के विचार से उमा बाबू के पास आ बैठे थे। बैठते-बैठते बोले—"हलो उमा बाबू, आज माथुर साहब कहाँ रह गए?"

इसी बीच बैरे को संकेत कर पास बुलाया पन्ना बाबू ने। और उसे शतरंज लाने के लिए कहा।

बैरे ने पूछा, "कहाँ मिलेगी बाबू?"

अब पहली बार उस बैरे पर निगाह डाली पन्ना बाबू ने। सचमुच वह नया था। लेकिन बर्दी पहने हुए जब वह दूर खड़ा था तो नया मालूम नहीं पड़ता था। पन्ना बाबू ने अपनी झुँझलाहट को दबाते हुए पूछा—"कमलसिंह कहाँ है आज?"

"बाबूजी, उसे पुलिस थाने ले गई है।"

"थाने! क्यों?"—आश्चर्य से उमा बाबू ने पूछा।

"साहब! उसने अपनी कोठरी में एक तवायफ को रख लिया था।"

"क्या क्लब की कोठरी में, जहाँ वह रहता था?"

"जी। वह बहुत चलतीपुर्जी औरत थी कोई, और पुलिस के एक सिपाही को चाकू लगवा चुकी थी वह। पुलिस उसके पीछे पड़ी थी। कमलसिंह ने

उसे अपने यहाँ रख छोड़ा था। कमरा तो अपना कानून के डर से छोड़ आई थी।"

"तो कमलसिंह ने उसे क्यों रखा?"

नया बैरा धीरे से बोला—"जब से उस बाजार में भगदड़ मची है, तब से वह यहीं पड़ी थी। कमलसिंह उसके यहाँ बहुत दिनों से आता-जाता था। मैं कल-परसों ही गाँव से आया हूँ सरकार। मुझे तो बाहर जो पानवाला बैठता है, उससे सारा किस्सा मालूम हुआ। जाते हुए वह जमांदार से कह गया था मुझे तो ड्यूटी पर रखने के लिए। सो सरकार मुझे तो अभी यहाँ का कोई काम नहीं आता है।"

पन्ना बाबू ने कहा—"अच्छा जाओ, जमांदार से ही पूछकर ले आओ।"

"क्या मँगाया था बाबूजी आपने, तरबूज?"

"नानसेंस!" श्रीमोहन चीख उठा—"बिलकुल जंगली है! अब ये मोसम तरबूज का है? शतरज ला, शतरंज। खेल होता है।"

वह बैरा सिटपिटाया-सा चला गया। उसके जाते ही श्रीमोहन ने कहा—"सरकार ने यह वेश्या-वृत्ति निषेध कानून क्या बनाया है, हर गली-मोहल्ले में जाकर यह वेश्याएँ छिप गई हैं और बड़ी गंदगी फैला रही हैं।"

पन्ना बाबू ने गंभीरता का वातावरण तोड़ते हुए कहा—"लेकिन सा'ब कमलसिंह अपना फार्वर्ड निकला। पट्ठा इसीलिए गाँव जाने का नाम नहीं लेता था।"

"बहुत हिम्मत की, क्लब में लाकर ही रख लिया!"

"वह समझता होगा कि उसके सभी सा'ब वकील हैं, उसे छुड़ा लेंगे।"

श्रीमोहन ने कहा—"सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का?"

पन्ना बाबू ने कहा—"उमा भैया, कुछ पता लगे तो उसको छुड़वाओ यार, बहुत पुराना आदमी है क्लब का।"

यहाँ से बात उठी तो क्लब में सभी सदस्यों तक कमलसिंह की साहसिकता का ढिंढोरा पिट गया। श्रीमोहन ने कहा—"सरकार पहले तो जनमत तैयार करती नहीं, कानून बना डालती है। ऐसा ही मामला कोड-बिल और बहु-विवाह का है। कानून बनाकर समाज-सुधार नहीं हो सकता, यह काम जनमत से और साहित्य से ही हो सकता है।"

पन्ना—"अरे बाबू, यह भौतिकवाद से तो अब देश में (Social disintigration) सामाजिक छिन्न-भिन्नता फैल रही है।"

श्रीमोहन—"हाँ, ऐसा नेहरूजी भी कह चुके हैं, पुराने आध्यात्मिक मूल्यों को हमें नहीं छोड़ना चाहिये।"

"पन्ना! आज कौन अध्यात्म की चिंता करता है। सब जगह मन-पसन्द शादियाँ हो रही हैं।" कुछ आहिस्ता से बोले पन्ना बाबू, उमा बाबू की ओर और झुककर—"आज और एक रहस्य पता लगा है उमा बाबू, पर माथुर साहब से न कहिये।"

उमा बाबू सावधान हो गए। पन्ना बाबू ने कहा—"यह जो महेश की शादी हुई है न, सो यह तो शादीशुदा लड़की की फिर शादी हुई है।"

"अच्छा यह कैसे।"

"आज हमारा भतीजा आया है, जबलपुर से।"

"वही क्या, जो मिलिट्री में कैप्टिन है?"

"हाँ, हाँ, उसी से पता लगा। इसका असली नाम रंजना है, पर इसकी शादी हुई थी चार साल पहले, कैप्टिन भाटिया के नाम से एक फौजी अफसर से। सो वह हजरत तो हर छठे महीने कभी कहीं बदल जायँ, कभी कहीं। इसे यह बार-बार का घर उठाना और जबलपुर छोड़ना पसन्द नहीं आया, क्योंकि वहाँ उसके कालेज के फ्रेन्ड्स भी हैं। इसलिए बस साल भर बाद ही से अलग-अलग रह रहे हैं। उस कैप्टिन ने तंग आकर इसे खत लिख दिया कि तुम चाहो तो अपनी मनपसन्द दूसरी शादी कर लो। सो यह यहाँ आकर अपनी चाची के पास रह रही थी। वह कैप्टिन भी अब दूसरी ढूँढ़ रहा है।"

श्रीमोहन ने सुनकर आश्चर्य प्रकट किया और उमा बाबू 'मनपसन्द शादियों' के बारे में सोचते हुए विचलित से हो आये। "गजब हो गया, लोग यहाँ तक धोखा देते हैं।"

पन्ना बाबू ने अपने स्वभाव के अनुसार बात को पुनः हल्के स्तर पर ला दिया। कहा—"हम अच्छे रहे उमा बाबू, हमने यह शादी-ब्याह का झगड़ा ही नहीं पाला। दोपाये से चौपाया होने पर जानवर बन ही जाना

पड़ता है और फिर तो सिलसिला फैलना शुरू होता है तो बुढ़ापे तक फैलता चला जाता है।"

शतरंज होती रही और पन्ना बाबू फुलझड़ियाँ छोड़ते रहे। श्रीमोहन उनकी बातों में शतरंज से ज्यादा दिलचस्पी ले रहे थे। उमा बाबू को एक सिगरेट आफर की और स्वयं भी एक सिगरेट सुलगाते हुए बोले—"शादी न करवाकर के आदमी ज्यादा जानवर के करीब रहता है। पन्ना बाबू अभी तुम्हारी उम्र तो शादी के लायक है, कहो तो मैं बन्दोबस्त करूँ?"

"अमाँ, छोड़ो यह किस्सा; उमा बाबू, लो यह घोड़े की राह बचो।"

"अच्छा यह लो।" उमा बाबू ने ऊँट से घोड़ा पीट दिया और पन्ना बाबू के पैदल से अपना ऊँट भी पिटवा लिया।

"अब तो किला टूट गया उमा बाबू आपका।" श्रीमोहन ने कश खेंचते हुए कहा, "कोई बात नहीं, ज्यादा से ज्यादा मात ही तो होगी।"

"अरे भाई, तुम बड़े तेज हो, यों ही ऊँट नहीं पिटवाया है! यह देखो, पैदल बढ़ते ही मेरे वजीर पर तितरफा मार होती है।"

श्रीमोहन ने जैसे गंभीरता से सिर हिलाया।

उमा बाबू ने कुछ देर बाद ही शह और मात कहकर दोनों को चकित कर दिया और तभी हाँफते हुए आ गए माथुर साहब।

"कहाँ लटक गए थे हजरत आज?"—पन्ना बाबू ने कहा।

"यार खामख्वाह पचास रुपये की चपत पड़ गई।"

"सो कैसे?" उमा बाबू ने पूछा।

माथुर साहब ने तीनों की ओर देखते हुए शुरू किया—"वह अपना कमल-सिंह मिल गया रास्ते में, पुलिस ले जा रही थी। सो उसको छुड़ाकर लाया हूँ। रास्ते में मुझे आते देख साला गिड़गिड़ाने लगा—'बाबूजी, आज छुड़वा दीजिये। आइन्दा के लिए कान पकड़े, जो किसी को भी लाया कोठरी में तो।' मैंने सोचा, पुलिस केस चला बैठी तो मुफ्त में क्लब का नाम और बदनाम होगा। इससे दरोगा को अलग ले जाकर समझाया, पचास की दक्षिणा चढ़ाई। वह तो रुपये थे जेब में वरना तुम जानों, रुपया भी ज्यादा खर्च होता। सब लोग क्लब की बदनामी से

लज्जित होते। अब साले को छुड़ा लाया हूँ, जमांदार से कहकर तनख्वाह में से रुपये कटवा लूंगा और कहूँगा साले को निकाल बाहर करो। कर लेगा कहीं और नौकरी।"

"अहः हः हः···" पन्ना बाबू हँस पड़े। "चलो सस्ता छुटा ले आये। हो परोपकारी जीव।"

"अजी वह तो मैंने भतीजे महेश का हवाला दिया, वरना ये पुलिस वाले अपने बाप की नहीं सुनते। फिर भी साले ने क्लब ले जाकर कहा—"अच्छा तो पचास रुपये लाइये प्राइममिनिस्टर नेशनल फण्ड में जायेंगे। बहुतेरा समझाया, नहीं माना। कहने लगा आप जमानत दीजिये, तब छोड़ेंगे, वरना तवायफ ने जो बयान दिया है, उससे क्लब की बदनामी हो सकती है। अभी तो बेटी बाप के है। बयान बदल जायेंगे।"

"सुसरे बड़े हथकण्डे जानते हैं, रुपया खेंचने के।" श्रीमोहन ने कहा।

तब माथुर साहब शतरंज की दूसरी बाजी जमाने लगे। पन्ना बाबू ने अपनी कुर्सी उन्हें दे दी। माथुर साहब और उमा बाबू के बीच जम गई। माथुर साहब बहुत सोच-सोचकर चलते थे। इसलिए वातावरण नीरस हो उठा और पन्ना बाबू व श्रीमोहन क्रमशः उठकर दूसरी मेज पर चले गये। बैरा माथुर साहब के लिए एक गरम कॉफी का कप ले आया, तो उन्होंने एक कप उमा बाबू के लिए भी लाने को कहा।

उमा बाबू ने चाल चलते हुए कहा—"तो महेश न होगा पुलिश स्टेशन पर।"

"नहीं, वह किसी तहकीकात में नजफगढ़ चला गया था।"

"जगह अच्छी मिल गई उसे।"

माथुर साहब ने तनिक खिन्नता से कहा—"बड़ी ट्रेजेडी (दुखद घटना) हो गई है उसके साथ।"

"सो क्या?" उमा बाबू के स्वर में आश्चर्य और सहानुभूति का सम्मिश्रण था।

"क्या बताएँ अब, तुम्हारे यहाँ शादी हो जाती तो अच्छा रहता। वह बेवकूफ नियादरा जहाँ बीच में पड़ता है, ऐसा ही सत्यानाश कराता है। पहले तो

उसको इतना ऊँचा चढ़ा दिया कि मैंने लड़की की माँ से हाँ कर ली है बस एक बार अमिता को देख आए। फिर जो हुआ तुम जानते ही हो। महेश जी ने सिर्फ यह दिखाने को कि हम भी कुछ हैं और हमें भी अच्छी लड़की मिल सकती है, झट रोजी के लिए हाँ कर दी।"

"लड़की की तो मैंने भी प्रशंसा सुनी है।" पर एकदम गंभीर और मंद-स्वर में बोले उमा बाबू—"सुना है उसकी एक शादी पहले हो चुकी है। क्या यह सच है?"

"तुमने किससे सुना?" माथुर साहब को असीम आश्चर्य हुआ।

"सुन लिया कहीं से। भाई, बुराई की कोई भी बात हो, आग की तरह फैलती है।"

"मैंने कुछ अमिता के बारे में भी सुना है, वही नियादरा कुछ कह रहा था।"

"अजी, वह तो पक्का हरामजादा है। यह छोटे आदमी आशाएँ लेकर दूसरों के पास जाते हैं और जब निराशा मिलती है तो आग बिखेरते हैं। भाई माथुर साहब, अमिता की तो मैं सिविल मैरिज कर चुका। इस बार बम्बई गया तो मालूम हुआ, उसका कुमार से प्रेम इतना अधिक बढ़ चुका था कि शादी के सिवा कोई चारा न था। संयोग से वह भी बम्बई में मिल गया। रेडियो पर गया था, मैंने वहीं मैरिज करा दी। यहाँ तो पार्वती बहुत झंझट करती। पुराने खयालात की हैं हम लोगों की औरतें, तुम जानते ही हो। इसलिए वहीं किस्सा निबटा दिया। यहाँ आकर लड़का भी पीठ दिखा जाता, तो कई दिक्कतें होतीं।"

"चलो ठीक किया, असल में यह लड़कियों की कालेज की आजादी, उमा बाबू, मेरी समझ में नहीं आती।"

"यही तो! बेशरमाई बहुत बढ़ रही है। पढ़ाना पड़ता ही है। लड़के पढ़ी-लिखी लड़की भी नखरों से लेते हैं। फिर मुसीबत में पढ़ी-लिखी लड़की खुद अपना पेट भी भर सकती है।"

"यह तो तुम्हारा कहना ठीक है। पर भाई कुछ रास्ता भी निकालना चाहिये कि यह नाजायज काम रुक सकें। तो तुमने ऐसे चुपचाप काम कर डाला कि कोई फंक्शन (समारोह) भी नहीं किया!"

"भई, माथुर साहब, तुम तो घर के आदमी हो, तुम से क्या छुपाव। असल में अभी पार्वती को भी इसका पता नहीं है और मैं जानता हूँ कि वह इस रिश्ते को अब मंजूर तो करेगी ही, पर राजी से नहीं। वह अपने भाई के यहाँ से लौट आवे तो फिर एक दिन दावत कर देंगे।"

माथुर साहब पर उमा बाबू की बातों का कुछ ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्होंने एक-एक शब्द सत्य मान लिया। और कहने लगे—"तुमने ठीक सोचा है। मेरा खयाल है, शायद इसीलिए अमिता ने महेश को लँगड़ी चलकर चिढ़ाया था।"

"हो सकता है। पर माथुर साहब, महेश को समझाना। अब वह कुछ फिजूल की बातें उठा रहा है। आपसदारी और जात-बिरादरी में ऐसा न करे।" इतना कहकर उमा बाबू ने माथुर साहब को वह घटना सुना दी।

माथुर साहब बोले—"मैं समझा दूँगा। उसके जीवन में एकदम गहरी निराशा (frustration) आ गई है। वह तो ऐसा हुआ उमा बाबू, कि रोजी को सन्दूक में पिछली शादी की एक फोटो निकल आई और वह उसे फाड़ने जा रही थी। महेश अब घर में भी कम हो जाता है। मुझे लगता है, राजी जल्दी ही अपने घर जबलपुर जाने वाली है और उसने जेवर सारा पहले ही अपनी भाभी के यहाँ पहुँचा दिया। ऐसा जमाना आ गया है भैया, केस चलाएँ तो उसमें भी 'अपना मरण जगत की हाँसी' वाली बात है।"

"मैं तो खुद कई बार परेशान हो जाता हूँ। ये जो पश्चिम का सम्पर्क बढ़ता जा रहा है, इससे निश्चय ही हमारे सामाजिक ढाँचे में बड़ी मनहूस तब्दीली आ रही है और इस तेजी से कि जैसे आँधी हो, जिसे रोकने की ताकत ही नहीं है।"

"अजी, रोकने की कोशिश ही नहीं है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान के नाम पर आजकल सब हो रहा है।"

"बाबूजी, आपका टेलीफोन है।"—बीच ही में बैरा ने आकर कहा।

"किसका?" माथुर साहब ने पूछा—"क्या मेरा है?"

"जी नहीं, उमा बाबू का।"

"अच्छा, कहाँ से आ गया फोन? सुन आता हूँ।" माथुर साहब ने तटस्थ

भाव से बिसात पर बिछे मोहरों पर आँखें गढ़ा दीं?

फोन सुनकर लौटे उमा बाबू तो मुद्रा पर परेशानी की रेखाएँ खिंच गई थीं। उनके कुछ कहने के पहले ही माथुर साहब ने पूछा—"किसका है?"

"दिनेश का था। वाइफ (पत्नी) आ गई हैं।" उमा बाबू बैठ गए।

"जा नहीं रहे?"

"यह बाजी पूरी कर लो।"

लेकिन शतरंज की वह बाजी डेढ़ घण्टे और जमी। इस बीच आधा पैकेट सिगरेट पी गए उमा बाबू। कोठी के लिए लौटे तो नौ बज चुके थे। पार्वती का बिना कोई सूचना दिए अचानक यहाँ आ जाना उन्हें अच्छा न लगा। कुछ दिन और ठहरकर आती तो ही क्या बिगड़ जाता। विचार-मग्न ही कोठी में वह गए तो सुधेश-दिनेश सो चुके थे। कुँवर ने उन्हें प्रणाम किया।

पार्वती ने, जो लगभग कुपित थी, उनके कोठी में घुसते ही कुत्ते की तरह टाँग खींची—"फोन करने पर भी इतनी देर कर ली। दोनों थके हुए पापा की राह देखते सो गए।"

"आने से पहले खत तो दिया होता। सुनाओ जी कुँवर, राधिका बाबू मजे में हैं। खाना खाया?"

"हाँ, फूफाजी, बुआ ने आते ही हरिया से बनवा लिया था। मैं तो कहता रहा कि फूफाजी आयेंगे तो साथ ही खायेंगे। पर बुआ नहीं मानीं।

"अच्छा।"

"चलिये, आप भी खा लीजिये।"

घर का वातावरण तूफान से पहले ही शान्त जैसा था। कुँवर से वह छिपा न था। इसलिए वह अपनी ओर से अपने फूफाजी व बुआजी से कोई बात नहीं कर रहा था।

"कुँवर को वहीं बैठा छोड़ दोनों पति-पत्नी रसोई के समीप वाले कक्ष में में आ गए। हरिया ने खाने की थालियाँ लगा दीं। हरिया के बाहर जाते ही पार्वती बोली—"इतने दिनों बाद तो भाई के गई और वहाँ भी दस दिन चैन नहीं मिला।"

"क्यों, वहाँ क्या बाधा आ गई?"

"ये क्या है?"—पार्वती ने होस्टल से वापस लौटा हुआ पत्र अपनी कुर्ती की जेब से निकालकर उनके आगे पटक दिया, "कहाँ रखा है लड़की को? आपके दिमाग को क्या हो गया है?"

उमा बाबू ने लिफाफा उठाकर पता पढ़ा, डाकखाने के रिमार्क पढ़े और तत्काल अपनी भूल समझ में आते ही वह खामोश हो गए। सिटपिटा गए, क्या जवाब दें? वास्तव में वह बात को अपने ढंग से प्रगट करना चाहते थे और पार्वती से किसी भी सीधे प्रश्न की आशा नहीं रखते थे। एक ग्रास मुँह में डालकर वह धीरे-धीरे उसे चबाते रहे और सोचते रहे। पार्वती उन्हें एकटक देख रही थी पर ग्रास सटककर उमा बाबू ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"देखो, बातें बहुत-सी हैं यदि तुम तेजी करोगी तो लड़की की जान पर बन आयेगी और अपनी नाक कटेगी सो अलग?"

इतना सुनते ही पार्वती तो जैसे पत्थर की हो गई। "तो क्या कुछ कर बैठी है? मैं तो पहले ही कह रही थी कि तुम लड़की को बिगाड़कर छोड़ोगे!"

"अरे तुम सुनती भी हो। बिगड़ा-बिगड़ाया कुछ भी नहीं। आखिर कहीं तो शादी करतीं ही न तुम उसकी। सो यह काम कुछ जल्दी हो गया है।"

"हाय! हाय!! क्या कह रहे हो?" पार्वती के हृदय की धड़कन तेज हो गई—"तो क्या महाराजजी सच कह रहे थे कि वह अपना पति अपने आप चुन लेगी? वह है कहाँ चुड़ैल अब? तुमने कहाँ रखा है उसे मुझे कुछ खबर तक नहीं और तुम यहाँ न जाने क्या-क्या कर बैठे हो!"

तब उमा बाबू ने बहुत ही संयत स्वर में और विस्तार से पार्वती पर सब कुछ प्रगट कर दिया। 'लड़की माँ बनने वाली है!' यह सुनते ही तो पार्वती चक्कर खाकर ऐसी गिरी कि थाली का किनारा उसकी कनपटी में घुसते-घुसते बचा। वह तो उमा बाबू ने तुरंत थाली अपनी ओर खींच ली। लगभग दो मिनट पार्वती वैसी ही पड़ी रही। फिर सँभलकर बोली—"मेरा मत्था तो वहीं से ठनक गया था। उस कलंकिनी को

विष नहीं दे दिया तुमने घर की नाक काटकर रख दी? मैं किसी को मुँह दिखाने लायक रह गई हूँ अब? बीस बार कहती थी कि देखो इसे कुमार से न मिलने दो ज्यादा; पर तुम क्यों सुनते? इतना उसे सिर पर चढ़ाया कि घर की इज्जत पर हमला कर बैठा। मरे को पकड़कर पुलिस के हवाले नहीं कर दिया।"

"सुधेश की माँ, तुम नहीं समझोगी। बिगड़ी बात को बनाने में जो मजा है, वह उसे और भी बिगाड़ने में नहीं है। यदि लड़का तैयार न होता और दोनों में दिली मुहब्बत न होती तो जरूर नाक कट जाती! लेकिन ऐसी सूरत में अपनी बेटी की उम्मीदों पर पानी फेरकर या तुम जैसा कह रही हो, वैसा कोई गलत कदम उठाकर उसकी जिन्दगी बरबाद कर डालना मेरे लिए मुनासिब नहीं था।"

"तो तुम्हें इतनी जल्दी भी क्या पड़ी थी? मुझसे तो पूछा होता। मैं किसी नर्स को साठ-सत्तर रुपये देकर सब ठीक करा देती, और फौरन शादी कर डालती। मैं वहाँ बात चला ही आई थी, मुकुटलालजी के यहाँ..."

"नहीं, अमी की माँ, यह रास्ता अपनाना बड़ी भारी गलती होती। जिन्दगी भर लड़की एक कुण्ठा से, एक पछतावे से घुटी रहती। वह कभी इस भय से मुक्त न होती कि पाप किया था। अब तो सब बिगड़ी बात सँभल जायेगी।"

"धन्य हो तुम!"—एकदम खीझकर पार्वती ने कहा—"तुम्हारे जैसे ही सारे पिता हो जायँ तो दुनिया पाताल को चली जाय।" सहसा कठोर होकर बोली पार्वती, "मैं कहे देती हूँ, बच्चा अस्पताल में होने के बाद फिकवा देना वह घर में नहीं आयेगा और यह शादी हरगिज न होगी, हरगिज न होगी। और तुम अपनी जिद पर अड़े रहोगे तो मैं संखिया खा लूँगी। वरना मुझे अभी बताओ, उसे कहाँ रखा है तुमने? मैं अभी सारा किस्सा—कोता किये देती हूँ।"

"पार्वती! तुम मेरी बात को समझो।"—उमा बाबू ने भी कुछ दृढ़ता से कहा—"मैं तुम्हें लड़की की या किसी की भी जिन्दगी से नहीं खेलने दूँगा। जो फैसला मैंने किया है ठीक किया है। मैं लड़की को उसके पति को सौंप चुका हूँ। समाज के मिथ्या भय के आगे अब तुम लड़की की दूसरी शादी रचोगी और ऐसा करते हुए तुम्हारी नाक बची रहेगी? अगर तुम इतनी सख्त हो सकती

हो, अपनी लड़की के लिए कि उसकी जान लेना चाह रही हो, तो पहले मुझे संखिया दे दो।" गुस्से से थाली आगे सरकाकर उमा बाबू पार्वती को घूरते हुए उठ खड़े हुए।

पार्वती ने जोर से मेज पर अपना सिर दे मारा और रुआँसे कण्ठ से बोली—"मुझे मालूम होता कि मेरी कोख से जन्म लेकर यह सर्पिणी मुझे यूँ डसेगी, तो पैदा होते ही गला घोंट देती उसका। मत बताओ वह कहाँ है, मैं उस कुलटा का मुँह भी नहीं देखना चाहती।" और फिर सिर उठाकर सजल नेत्रों को आँचल से पोंछते हुए पार्वती ने उमा बाबू को पैनी निगाहों से देखा और कहा—"जैसा मन चाहे तुम्हारा वैसा करो। मैं अब इस घर में कौन हूँ। मैं भी कहीं जाकर डूब मरूँगी? तुमने इस घर में पाप को घुसाया है, पाप को—!" उठकर पार्वती आँसू पोंछते-पोंछते अपने कक्ष की ओर जाने लगी।

"दिनेश की माँ!"—गम्भीर होकर कहा उमा बाबू ने—"मेरी बात को समझने की चेष्टा करो और लड़की के लिए हृदय में क्षमा धारण करो! ऐसी स्थिति में धैर्य और क्षमा ही सबसे बड़ा बल है।"

"लड़की माँ-बाप को जहर दे दे, और माँ-बाप उसे क्षमा कर दें। मुझसे उसके बारे में कोई बात न करो। मैं उसका नाम भी नहीं सुनना चाहती। मैं यहाँ रहना भी नहीं चाहती···तुम जानो, तुम्हारे बच्चे जानें।"

पार्वती अपने पलँग पर आ लेटी। उमा बाबू भी चिंताग्रस्त हुए उसके पीछे-पीछे आये और पलँग के समीप आकर अत्यन्त गंभीर और संयत वाणी से बोले—"अपने दिन याद हैं तुम्हें? तुम्हारी बात मानकर मैं तब नादानी कर बैठता तो तुम भी उसी स्थिति में न होतीं जिसमें आज अमिता है?"

"पर तुम गैरजात के तो नहीं थे और सगाई भी हो ही चुकी थी।

पार्वती का यह बोदा तर्क सुनकर उमा बाबू को उस विकट स्थिति में भी थोड़ी हँसी आ गई।

पार्वती फिर तिक्त हो गई—"तुम हँसकर मेरी छाती मत जलाओ। मैं कहे देती हूँ सारी आफत की जड़ तुम खुद हो। चले थे लड़की का मानसिक विकास करने। डूब मरने को जगह है?" मुट्ठियाँ-सी भिंच गई पार्वती की और क्रोध व

घृणा से वह बोली—"मरा कुमार मेरे सामने आये तो गोली मार दूँ!"

"लड़की चाहे विधवा हो जाय!"

"मेरी तरफ से तो मर गई, उसका जिक्र मत करो।" कहकर पार्वती ने लेटे-लेटे ही उछलकर पीठ मोड़ ली। उमा बाबू ने कहा—"वक्त आने पर आप समझ जाओगी।" और वह भी सोने के लिए अपने कमरे में आ गए। पर नींद कहाँ से आती। इसी उलझन में दिमाग बहुत परेशान हो गया और उस क्षण भीतर से कोई कह उठा—'सचमुच वकील साहब तुमने जल्दी की।'

"नहीं, नहीं! मैंने एकदम सही कदम उठाया है।" एक खीझ से भरे वह टेबिल लैम्प बुझाकर आँखें मूँदकर नींद बुलाने लगे।

इसी तरह पार्वती को भी नींद नहीं आई। अमिता का मुँह न देखने की बात यद्यपि उसने बार-बार कही थी, फिर भी भीतर से वह अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए उतनी ही बेचैन हो उठी थी। एक छटपटाहट उत्पन्न हो गई थी उसके भीतर कि अमिता का पता पा जाय कि वह वहाँ है तो एक बार उसका सिर जी भरकर पीट डालूँ और हमेशा के लिए उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लूँ। उमा बाबू ने जो कुछ जिस ढंग से कहा था, उसके फलस्वरूप वह पति और पुत्री दोनों के प्रति गहरी प्रतिहिंसा से भर आई। कुछ कर डालने के लिए उसकी रग-रग में बेचैनी थी। किससे पता लगे कि अमिता को कहाँ रखा गया है। हरिया से? नियादरा से? नहीं, नहीं, उन्हें किसी को पता न होगा। सामने बिश्नोई से? नहीं··· वह बेटे का पता क्यों देगी? उल्टी प्रसन्न होगी कि एक बड़े वकील की बेटी को उसके बेटे ने ठग लिया है···तो? तो?···कौन बतायेगा? सोचते-सोचते वह बार-बार उठती, करवटें बदलती, फिर लेट जाती, पर नींद न आती। काँपते बदन से वह उठी और उठकर उमा बाबू के कमरे में आकर लगभग चुनौती के स्वर में फिर बोली—"मैं कहे देती हूँ, बच्चे को फेंक देना होगा··· और यह शादी हरगिज न करने दूँगी, नहीं करने दूँगी...." उसका रोम-रोम जैसे विकसित था और वह बिना उमा बाबू का उत्तर सुने वापस आ गई और अपने पलँग पर उसी प्रकार बेचैन आ लेटी।

उमा बाबू फिर अत्यधिक अशांत हो गए। दोनों पति-पत्नी लगभग रात

भर ही आँखें फाड़े पड़े रहे, निश्चेष्ट, किंकर्त्तव्यविमूढ़, निर्विकल्प जैसे भारी भूकम्प आने की पूर्व-सूचना पाने से असंख्य लोग सहम जाते हैं।

सुबह की चाय के समय भी सन्नाटा छाया हुआ था। सुधेश और दिनेश दोनों ने ही जागने पर 'अमिता दीदी कहाँ हैं ममी' की लगभग रट लगा दी। पार्वती ने दो-एक बार तो झल्लाकर कह दिया—'अपने पापाजी से ही पूछो।' पर तिस पर भी जब सुधेश ने बार-बार वही सवाल किया तो पार्वती ने उसे पीट दिया। यह सब कुछ कुँवर की जानकारी में ही हो रहा था। इसीलिए एक-एक क्षण उसे अपना वहाँ ठहरना भारी हो रहा था। सुधेश रोते हुए भी उमा बाबू के पास नहीं जा सका, क्योंकि वह सुबह से ही 'स्टैडी' में बैठे हुए केस देख रहे थे और ऐसे समय में उनके पास घर का प्रायः कोई व्यक्ति नहीं जाता था, जब तक कि वह स्वयं ही न बुलाएँ। उन्होंने जब सुधेश का रोना सुना तो हरिया को बुलाया और उससे पूछा—"क्यों रो रहा है, सुधेश?"

उसका कारण जानते ही सुधेश को अपने पास बुलाकर थपथपाया उमा बाबू ने। "बेटा! दीदी के पास चलोगे? हमारे साथ चलना। हम चलेंगे। अभी तुम खेलो-कूदो।"

"ममो··· ने ···मार दिया।"—रुआँसे स्वर में सुधेश बोला।

"अच्छा, अच्छा, हम ममी से लड़ेंगे। तुम खेलो।"

सुधेश को तो उन्होंने चुप कर दिया और खेल में लगा दिया। पर अपने भीतर उठे द्वन्द्व को वह शांत न कर सके। रह-रहकर पार्वती की दृढ़ वाणी उनके हृदय को जैसे हिला देती, 'बच्चे को फिंकवा देना होगा। मैं यह शादी हरगिज न होने दूँगी, न होने दूँगी, नहीं तो मुझे बताओ वह कहाँ है? मैं अभी सब किस्सा-कोता किये देती हूँ।' उमा बाबू की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। पार्वती ने अनबोला-सा लिया था और ऐसा व्यवहार कर रही थी, जैसे किसी से उसका कोई सम्बन्ध न हो। कुँवर पर इस वातावरण का ऐसा कुप्रभाव हुआ कि वह बुआ से विदा लेकर 'जनता से' ही चला गया। भतीजे को विदा करते हुए बुआ ने गीले कण्ठ से इतना ही कहा—"कुछ ऊटपटाँग मत कहियो वहाँ जाकर, तुझे मेरी कसम

है।" कुँवर बुआ के पैर छूकर विदा हो गया। जाते समय उमा बाबू से उसकी भेंट न हो पाई, क्योंकि वह कचहरी गए हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में पार्वती ने हरिया को एकान्त में बुलाकर पूछा—"तुझे कुछ पता है रे, अभी कब गई थी यहाँ से? कहाँ गई है वह?"

"माँजी!"···हरिया ने अत्यधिक विनम्र भाव से कहा—"आने के बाद एक दिन यहाँ रही थीं, फिर बाबूजी···के साथ···टैक्सी में···चली गई रात पड़े।"

"हूँ, ये तेरे बाबूजी ने ही सारी आग लगाई है। तुझे पता है कहाँ गई है वह?"

"माँजी, सुन्दर बाबू एक दिन आये रहे। तब बाबूजी उन्हें कुछ बताए रहे···पर···"

"पर···पर क्या···तुझे मालूम है तो चल मेरे साथ। बता मुझे, मैं उस चाण्डालिनी को जरा देखूँ तो!"

एकदम अनजान बनकर कहा हरिया ने—"माँजी, क्या बात हो गई है?"

"कुछ नहीं, तू चल अभी मेरे साथ। फिर सुधेश-दिनेश के स्कूल से लौटने का वक्त हो जायेगा।"

पार्वती के साथ हरिया चला तो, पर भीतर से वह डरा हुआ था; क्योंकि महेश को भी वह दस रुपये लेकर वह स्थान एक बार बता चुका था और अधिक डर इस बात का था कि अँगूठे का निशान भी वह दे चुका था। मन बोल उठा—'दस रुपये के लिए तूने मालिक की गद्दारी की है। बड़े आदमियों के मामले हैं। वकील साहब कहीं तुझे ही उल्टा न फँसवा दें। ज्यों-ज्यों वह बस्ती के निकट पहुँच रहा था उसका डर बढ़ता जा रहा था। सहसा पार्वती की सहानुभूति पाने के लिए उसने सब कुछ उगल दिया। पार्वती उस पर बहुत बिगड़ी पर इससे भी ज्यादा वह मन ही मन पति की समझ पर झुँझला उठी। सोचने लगी—'यही सब आग लगानी थी इन्हें तो दोनों को यहाँ से कहीं बाहर ही क्यों न भेज दिया! ये परेशानी तो न होती। छोटे-बड़े सब आदमियों में हल्ला उड़ रहा है। कोई ऐसी बात छिपाए छिपती है? मरा, नियादरा तो कहाँ—कहाँ

न उड़ायेगा!' सोचते-सोचते पार्वती ने हरिया से कहा--"तुझे नियादरा की दूकान तो मालूम ही है, वहाँ चाह रहट में है न? यहाँ से लौटकर उसे बुलाकर लाइयो मेरे पास।"

"अच्छा माँजी।···लाऊँगा।···माँजी, महेश बाबू मेरा तो कुछ न करेंगे?"

"मरे, तूने अँगूठे का निशान दिया क्यों?" खैर, देखूँगी तू मुझे बता तो वह है कहाँ?" दाँत किचकिचाकर उसने कहा—"न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।"

सुनकर हरिया काँप उठा। उसे लगा जैसे वह पार्वती को वहाँ ले जाकर अपने जीवन में सबसे ज्यादा बुरा काम कर रहा है। सबसे बड़ा अनर्थ, माँ जी से डरकर कहा उसने—"आप करोगी क्या वहाँ जाकर?"

"कुछ भी करूँ। तू चुपचाप चलाचल।"

हरिया चुप हो गया। पर वहाँ पहुँचते-पहुँचते दूर से ही उसने उस मकान की ड्योढ़ी चौपट खुली देखी तो वह प्रसन्न हुआ—'कहीं चले गए क्या? चलो, अच्छा हुआ, मैं इनके झगड़े में न पड़ूंगा। ये जानें, इनकी बिटिया जानें।" ठीक दरवाजे पर आकर जब हरिया पार्वती के साथ ड्यौढ़ी की पहली सीढ़ी पर चढ़ रहा था तो भीतर से आता दिखाई दिया महेश। चौंककर उसने पार्वती से कहा—"आप! बहूजी, आप कैसे आईं?"

हरिया पहले ही बोल पड़ा—"अमिता बीबीजी को देखने आई थी।"

"अच्छा, अच्छा! वह तो यह मकान खाली कर गए दिखते हैं।" कहते-कहते महेश की वाणी एक पछतावे से भीग गई,—"मेरे कारण ही शायद ऐसा हुआ है, मैं तो उस बेचारी से माफी माँगने आया था? मुझसे उन्हें परेशानी हुई है। तुझे पता नहीं हरिया, वे अब कहाँ गए?"

सुनकर हरिया स्वयं चकित रह गया। 'अरे' उसने सोचा,—'महेश बाबू तो एक ही दिन में बदल गए जान पड़ते हैं? यह क्या बाबूजी का जादू है?' मन ही मन वह अब अँगूठे का निशान देने पर बड़ा पछताया और उससे भी ज्यादा वह इसलिए लज्जित था कि उसकी यह कमजोरी स्वयं उसके मुँह से ही

मालकिन पर प्रकट हो चुकी थी। पार्वती से कुछ तत्काल कहते न बना। उसके क्रोध के उबाल पर जैसे पानी का एक हल्का छींटा पड़ गया हो। कुढ़कर बोली—"मरे अब जगह-जगह भागते ही फिरेंगे!"

"ऐसा आप क्यों कह रही हैं बहूजी? बाबूजी उनकी 'सिविल मैरिज" करा चुके हैं।"

पार्वती ने उसके प्रश्न की उपेक्षा कर महेश से ही कहा—"बेटा, महेश, तू मुझे उसका पता लगाकर बता तो। मैं उससे एक बार मिल तो लूँ?"

"तो क्या वह आपके बिना मिले ही आ गई हैं?" महेश समझ गया कि जो कुछ हुआ है, उसमें संभवतः माँ की सहमति नहीं है। बड़ी हिम्मत की वकील साहब ने।

"आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ जो न करें सो थोड़ा ही है।"

"हाँ! बहूजी!" महेश ने एक ठण्डी साँस छोड़ दी।

तीनों वहाँ से लौटकर पक्की सड़क की ओर चल दिए। महेश ने तब पार्वती से पूछा—"बहूजी, क्या आपको अमिता के बारे में पता था पहले से?"

"बेटा, मुझे कैसे पता लगता, जब उसके बाप ही मुझसे सब कुछ छिपाते रहे। मैं तो उस कुल-कलंकिनी का मुँह तक देखना नहीं चाहती।"

आश्चर्य हुआ महेश को! यह एक ओर उसका पता लगाना चाहती हैं, दूसरी ओर उसका मुँह तक देखना नहीं चाहतीं? जरूर कोई अनहोनी बात होना चाहती है। उसके भीतर एक बिजली-सी कौंध गई। वह बोला—"बहूजी, जो हो गया सो हो गया, अब आगे की सोचनी चाहिये। अब तो आप बाबूजी की बात मानकर पार्टी बुला लें, ताकि सब को एक साथ ही उसकी शादी का पता लग जाय, इस तरह चुप-चुप वन की आग को तरह यह बात फैलती रहे सो ठीक नहीं। आखिर दोनों में प्रेम तो पुराना है।"

"महेश" तुम अभी बच्चे हो। तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं कि दुनिया में हो क्या रहा है?"

महेश को एक ठेस लगी और उसने फिर एक ठण्डा निःश्वास छोड़ दिया। "हाँ, बहूजी, यह भी आप ठीक कह रही हैं। पता होता तो मैं क्या रोजी

से यों ही ब्याह कर लेता ?"

"क्यों रोजी में क्या ऐब निकल आया ?"—दिलचस्पी से पूछा पार्वती ने।

महेश ने तब संक्षेप में अपने हृदय की व्यथा पार्वती पर व्यक्त करते हुए कह दिया—"वह कल ही शायद जबलपुर चली जायेगी और फिर कभी शायद हम नहीं मिलेंगे, बहूजी।"

"तो क्या दूसरी शादी करोगे ?"

"देखा जायेगा। अब तो शादी के नाम से चिढ़ हो गई है।"

पक्की सड़क आ गई थी। महेश पार्वती को प्रणाम कर अपनी मोटर-साइकिल पर चला गया और हरिया को साथ ले पार्वती भी उसी टैक्सी में बैठ लौट चलीं, जिसमें आई थीं। रास्ते में उसने हरिया को उतार दिया। रुपये का नोट देकर कहा—"नियादरा को लेकर आ जाना जल्दी।"

नियादरा आया तो, पर हरिया ने उसे जो कुछ बताया, उससे नियादरा की तबियत बड़ी खट्टी हुई। उसने हरिया से कहा—"चलता तो हूँ पर भैया, देख ले तू नतीजा! इन बड़े लोगों का कुछ भरोसा नहीं, कब किधर की करवट ले जाएँ। भैया, अपने को क्या पड़ा जो किसी की बुराई लें ?"

"यह मैं भी सोचता हूँ, नियादरे। मैंने तो तेरे कहने से ही महेश बाबू को वह जगह दिखाई थी। भैया, अब तो भीतर से ऐसी तबियत खराब हो गई है कि कहीं और नौकरी कर लूँ। अब वकील साहब के घर की हवा में घुटन हो गई है।"

"अबे, नौकरियों का क्या टोटा ? अब तो भरती के दफ्तर खुले हैं, अर्जी ले जा कहीं, और बढ़िया जगह चला जा फौज में।"

"देखूँगा नियादरे, चल तो देख तुझे माँजी क्यों बुला रही हैं ?"

वास्तव में पार्वती एकदम भोली ही नहीं थी। हरिया ने जो कुछ अपने करतब बताये थे, उससे वह सावधान हो गई थी। यहाँ तक कि उसने सोच लिया था कि इस बेईमान आदमी का कोई भरोसा नहीं, इसका तो हिसाब कर देने में ही कल्याण है। इसी भावना से वह अब जो कुछ करना चाहती थी,

उसकी गुप्तता को वह नियादरा तक ही सीमित रखना चाहती थी। इसलिए उसने हरिया की उपस्थिति में नियादरा से कोई बात नहीं की।

एकदम एकान्त कर उसने नियादरा से कहा--"मुझे पता है, जो हुआ है, पर तूने अब कहा किसी से तो तुझे बुढ़ापे में जेल में डलवा दूँगी, समझा?"

नियादरा काँप गया और बोला--"माँजी, मैं भला किसी से कुछ भी क्यों कहने लगा? मुझसे तो सामने वाली मिसरानी और हरिया ने ही कहा था, माँजी। भगवान् तुम्हारा भला करें, मैं तो तुम्हारे बच्चों की जूठन खाऊँ हूँ। उनकी आस करूँ हूँ।"

"देख, यह मरा हरिया तो गद्दार है। इसे तो मैं आज ही जवाब दे दूँगी।"

"हाँ, माँजी, ऐसे आदमी बड़े घरों में काम करने लायक नहीं हैं।"

"देखो एक तो उसी बस्ती में जाकर अमिता के मकान का पता लगाकर ला। मुझे ऐसा लगे है कि वह इतनी जल्दी दूर नहीं गए होंगे वहीं किसी और मकान में चले गए होंगे। समझा, और देख···" पार्वती ने उसके समीप मुँह ले जाकर इतनी धीरे से कहा कि नियादरा ही सुन पाया। सुनकर उसका मुँह और आँख फटी रह गई। काँपते हाथों से उसने पार्वती से नोट लेते हुए धीरे से कहा। "पर माँजी यह मँगाकर करोगी क्या?"

"मैं कुछ भी करूँ तू ले आ, किसी को क्या मालूम कि मेरी छाती पर कैसा साँप लोट रहा है जो अपने विष से मार रहा है मुझे नियादरे!"

"हाँ माँजी! जहर को जहर ही मारता है।" नियादरा ने गरदन हिलाकर ऐसे ही कहा जैसे वह पार्वती के हाथों का खिलौना बन गया हो—"पर यह रुपये तो बहुत हैं माँजी।"

"तू चिंता मत कर, ले जा और देख किसी परिन्दे को भी खबर न हो।"

"नहीं माँजी! आपने भला फिकर करा।"

नियादरा लगभग ऐसी ही तेजी से कोठी से बाहर हो गया जैसे कुछ उठाकर भागा हो।

: १८ :

कुमार को हृदय से क्षमा करके भी बिश्नोई का हृदय अपने आप से कोई पक्का समझौता नहीं कर पाया था। सुन्दर बाबू की उपस्थिति में जो कुछ जादू की तरह हो गया था उसका असर इतना भी स्थायी नहीं हो पाया कि वह उस रात रुचि से कुछ खा सकती। यह उस संध्या भी निराहार रह गयी जब कि कुमार को अपने सामने बैठाकर खिलाया। खाने के बाद ही तुरन्त कुमार इस ढंग से लौट गया कि उसका आना एक सीधी-सादी व्यावहारिक घटना बनकर रह गया, बिश्नोई को ऐसा अनुभव हुआ जैसे बेटा अपना होते हुए भी पराया हो गया है। क्यों और किस प्रकार 'पराया' हुआ है, यह सोच-कर ही वह अधिक व्यथित हो गई थी। लगता था, जैसे एक दोराहे पर आकर माँ और बेटा अलग-अलग दिशाओं में बढ़ गए हों! और यह दिशा बिश्नोई को इतनी अकस्मात मिली कि उसने इसे दैवी संयोग ही माना। सुबह वह उठी तो वह रात जितनी बेचैन न थी। धृति की बनाई हुई चाय उसने सीधे स्वभाव पी ली। दुखदायी घटना हुए ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों उसका फल रूप दुःख भी कम होता जाता है। रात भर कुमार का वहाँ न रहना जितना उसे रात को दुखद प्रतीत हो रहा था उतना सुबह न लगा। ऐसा भ्रम होता मानो कुमार गाड़ी से बैठकर कहीं दूर गया हो। आठ बजे तक बिश्नोई को यह भी पता न था कि वह स्वयं ही गाड़ी में बैठकर वहाँ से दूर जायेगी, लेकिन प्रातः की पहली डाक में जब अकस्मात देवर का पत्र मिला, तो वह सोचने लगी कि शायद उसे जाना पड़े। उसके देवर निरंजन की कन्या का विवाह आ गया था और वह उसे गाँव ले जाने के लिए उसी दिन दोपहर तक आने वाला था। प्रत्युत लगभग बारह वर्ष बाद निरंजन ने बड़े आदर-भाव से केवल पत्र ही नहीं लिखा था, लेने भी आ रहा था। यह दैवी संयोग ही बिश्नोई को कुमार से दूर ले जाकर राहत देने वाला था। जो अब तक अप्रिय और कटु-स्मृतियाँ को कुरेदने वाला था वही काल के प्रभाव से भला प्रतीत होने लगा, तथा जिससे भविष्य के लिए आशाएँ लगा रखीं थीं, और जिसे देखकर आँखें ठण्डी होती थीं वही

दिल में काँटा-सा चुभने लगा था।

जब से वे लोग कोठी में आकर रहे थे, यह शायद दूसरा ही पत्र था कुमार के नाम, जो यहाँ आया था। इसीलिए धृति को भी यह जान लेने की उत्सुकता थी कि आया कहाँ से है। यह जानकर कि कुमार के चाचा का पत्र आया है, धृति को आश्चर्य हुआ और यह जानकर कि आज दोपहर तक काकी गाँव चली जायँगी, धृति का आश्चर्य उदासी में बदल गया। इतने दिनों में बिश्नोई से ऐसी गहरी आत्मीयता हो गई थी धृति को उसे लगा मानो वह माँ से ही बिछुड़ने वाली हो। उसने तत्काल सुन्दर बाबू को सूचित किया और सुन्दर बाबू को भी सुनकर एक धक्का-सा लगा। वह स्वयं बिश्नोई से कुछ दिन ठहरकर जाने का आग्रह करने के लिए उठकर उसके कमरे तक आए।

उनके कथन में भी स्वजन की-सी आत्मीयता थी—"माना कि घूरे के दिन भी बारह साल बाद बदल जाते हैं। पर इतनी जल्दी भी क्या है? क्या कुमार के चाचा···क्या नाम है उनका···निरंजन बाबू एक दिन भी यहाँ नहीं ठहर सकेंगे?····"

"गाँव के आदमी को यह कोठी की हवा कैसे अच्छी लगेगी, जब कि यहाँ कुमार भी नहीं है? फिर आप जानते ही हैं कुमार के विषय में यदि उसने कुछ पूछ-ताछ की तो मैं क्या जवाब दूंगी? मैं नहीं चाहती कि कुमार के बारे में उसे कोई बात अभी से मालूम हो।"—कहते-कहते गम्भीर हो गई बिश्नोई। "फिर मैं भी यही अच्छा समझती हूँ कि ऐसे अवसर पर इस बहाने यहाँ से चली जाऊँगी, तो कुमार को अपने काम में, अपना घर बसाने में आसानी होगी। आ जाऊँगी छः-आठ महीने बाद, जब कुमार बुलायेगा।"

बीच में ही धृति ने विस्मय-विभोर हो टोक दिया,—"काकी, इतने लम्बे अरसे के लिए जायेंगी, तो मेरा मन कैसे लगेगा?"

"नहीं, नहीं, कुमार की माँजी! आपको शादी होते ही फौरन लौट आना चाहिये।" सुन्दर बाबू ने कहा।

"जाना अपने हाथ होता है, बाबूजी, आना दूसरे के हाथ।"

अब सुन्दर बाबू को भी लगा जैसे कोई हितैषी सहसा विलग हो रहा हो।

उन्हें कुमार का भी अस्थायी रूप से जाना भला नहीं लगा था, पर बिश्नोई की उपस्थिति से ही उन्होंने संतोष कर लिया था। भीतर से जबर्दस्त इच्छा होती थी कि वह कुमार से बार-बार मिलें, उससे बातें करें। पर इस समय और चारा ही क्या था। आखिर उन्होंने कहा—"कुमार की माँजी! मुझे धृति के कारण बड़ी असुविधा रहेगी, यह बेचारी अकेली रह जायेगी।"

किंचित् मुस्कराकर बिश्नोई ने धृति की ओर कनखियों से देखते हुए, कहा—"यह अपनी भी पास नहीं रहेगी।"

कहने को कह तो दिया बिश्नोई ने, पर अनजाने एक ऐसी चोट कर दी थी उसने कि सुन्दर बाबू और धृति दोनों खामोश रह गए। वह स्वयं भी व्यथित हो गई, और फिर कुछ कह न पायी। सुन्दर बाबू अपने कक्ष की ओर लौटते हुए कहने लगे, "भगवान् की इच्छा! काश आज इसकी भी माँ जीवित होती।"

बिश्नोई का मर्म छू गया। धृति को गले लगाकर बोली—"जल्दी ही लौटूंगी, मेरी बच्ची। तू फिकर मत करियो। जा, अब तेरा कालिज का समय हो रहा है।"

"तो क्या शाम तक भी न रुकोगी कुमार भैया के आने तक?"

"देखा जायेगा। कुमार के चाचा आ जायँ, तभी तो पता लगेगा।" यह कहकर भी बिश्नोई हृदय से चाह यही रही थी कि अभी देवर आ जाय, तो वह तुरन्त उसके साथ चली जाय।

यूनीवर्सिटी पहुँचकर धृति ने जान-बूझकर कुमार से भेंट की और उसे यह बताया कि काकी गाँव जा रही हैं। तुम्हारे चाचा आ गये हैं। शायद वहाँ शादी है।

कुमार को विश्वास न हुआ। "माँ जा रही है? चाचा के यहाँ जिन्हें दिन-रात कोसती थीं, जिन्हें अपनी सारी मुसीबतों का कारण मानती थीं? नहीं, नहीं, धृति, यह नहीं हो सकता! कोई और ही बात होगी।" इतना कहकर कुमार ने तत्काल भीतर से बोलने वाले की आवाज सुनी—शायद इसलिए तो नहीं जा रहीं कि अब तेरे साथ रहना नहीं चाहतीं?'

"नहीं, नहीं, ऐसा भी नहीं हो सकता।"

कुछ भी निर्णय न कर पाया कुमार, तो उसे एक ही रास्ता सूझा। वह 'पीरियड' छोड़कर तुरन्त सुन्दर बाबू की कोठी पर आया। लेकिन वहाँ तो दोपहर का सन्नाटा छाया था। प्लान में लेटा हुआ चन्दरी धूप सेंक रहा था। कुमार के आते ही उठा और लपककर पास आ गया। सलाम बजाकर बोला, "हुजूर! माँजी गाँव गईं और आपके चाचाजी यह चिट्ठी आपके लिए दे गए हैं।"

कुमार खड़ा का खड़ा रह गया। आँखों में आँसू आ गये। माँ आज इस तरह बिना मिले चली गई! अपने ऐसे किये पर तब उसे भारी पछतावा हुआ, जिसने उसे माँ की निगाहों में भी गिरा दिया था। सजल नेत्रों में चाचा का पत्र धुंधला-धुंधला चमक उठा। कुमार से खड़ा न रहा गया। वहीं लॉन में बैठकर उसने निरंजन की चिट्ठी पढ़ी—"बेटा, आज तुमसे भी मिलने की बड़ी इच्छा थी। भाभी से मालूम हुआ कि रात को देर से लौटोगे, इसीलिए नहीं मिल पाया। तुम्हारी बहन की शादी है बीस तारीख की। तुम भी कुछ दिन पहले आ जाना तो अच्छा रहेगा।···आज मुझे भाई साहब की याद बहुत आ रही है और तुम्हारे साथ जो ज्यादती हो गई, उसका भी मुझे पछतावा है। तुम गाँव आकर सारी जमीन सँभाल सकते हो। घर में अब तुम ही एक-मात्र लड़के हो। इसलिए मेरी बात कबूल करना।" इतना पढ़कर तो कुमार के अश्रु अविरल गति से बह चले—"तो क्या चाचा के दोनों जवान पुत्र जाते रहे?" सोचकर वह व्यथित हो गया। पत्र आगे न पढ़ सका वह। उसे जेब में रख लिया और चन्दरी से एक गिलास पानी लाने को कहा। चन्दरी ने उठते-उठते कहा—"ऐसी क्या बात है भैयाजी, इस चिट्ठी में? आप क्यों रोते हैं?"

"कुछ नहीं!" गीले कण्ठ से कहा कुमार ने और उसकी आँखों से दो अश्रु ढुलक गए।

जैसे ही चन्दरी पानी लेने अन्दर आया। टेलीफोन की घण्टी बजी, कुमार दौड़कर गैलरी में पहुँच गया और फोन उठा लिया। उधर से स्वर आया, "अरे चन्दरी।"

"मैं कुमार हूँ।"

"कुमार! तुम इस वक्त कैसे? क्या माँ के जाने की खबर हो गई थी?"

"हाँ, बाबूजी। धृति ने कहा था। पर माँ चली गई।" भारी कण्ठ था कुमार का।

"हाँ गई मैंने भी बहुत कहा उनसे, पर वह ठहरने को तैयार न थीं। कहने लगीं,कुमार घर-गिरस्ती ठीक से बसा लेगा तभी आऊँगी?"

"क्या? क्या?" कुमार स्तम्भित रह गया। "शादी के बाद भी नहीं आएँगी?"

"तुम बुलाओगे तो आएँगी, शादी पर जाना और साथ लेते आना। अच्छा देखो, मैं शाम को देरी से आऊँगा, धृति से कह देना। उमा बाबू का फोन आया था, मुझे क्लब बुलाया है। शायद धृति के विवाह के बारे में कोई बात करनी है।"

"समझा! मैंने जिक्र किया था उनसे।"

"ऐसा? तो तुम अपने फर्ज को खूब याद रखते हो।"

"अच्छा तो मैं धृति को सूचित कर दूँगा।"

"यही कि मैं देर से आऊँगा, और कुछ नहीं।"

दोनों ने हँसते हुए फोन काट दिया।

एहतियातन चन्दरी को सुन्दर बाबू का संदेश सुनाकर कुमार वहाँ से यूनीवर्सिटी लौट गया। वहाँ भी उसकी धृति से भेंट हो गई और उसने कह दिया उससे कि बाबूजी देरी से लौटेंगे।"

"काकी भी चली गई, तुम भी चले गए, मैं अकेली रह गई।"

"घबड़ाती क्यों है? बाबूजी तुझे दुकेला बनाने की ही फिक्र में तो हैं।"

"चलो, रहने दो।" लज्जा से धृति के कपोल आरक्त हो आये, और विषय बदलते हुए वह बोली, तुमने चुपचाप घर बसा लिया, बहन का मुँह मीठा भी नहीं कराया।"

"धत् पगली!" अभी मुँह मीठा कराने का अवसर ही कहाँ आया है?" हँसकर बात काट दी कुमार ने।

"मुझे जैसे मालूम नहीं है, अमिता भाभी आती क्यों नहीं यूनीवर्सिटी?"

"शी! ..." ओठों पर अँगुली रखकर कहा कुमार ने—"खबरदार, यहाँ किसी से कुछ न कहना। मुझसे भी कोई-कोई फ्रैण्ड पूछता है तो मैं भी आयँ, बायँ, शायँ कर जाता हूँ।"

गंभीर हो गई धृति और 'पीरियड' न होते हुए भी क्लास का बहाना कर वहाँ से चली गई।

जब से पार्वती आई थी, उमा बाबू की शाम क्लब में ज्यादा बीतती थी। वह अमिता के बारे में एक बार जो कह चुके थे, कह चुके थे। अब रोज-रोज पत्नी से कलह मोल लेकर वह अपने मस्तिष्क को खराब करना नहीं चाहते थे। पार्वती को उनकी ओर से उपेक्षापूर्ण व्यवहार मिलने लगा था। वह भी समझती थी कि यह अपनी जौमी पीट रहे हैं, इसीलिए वह भी अपने रास्ते पर पूरी जौमी पर उतर आई थी। क्लब से देरी से आएँ तो ... सुबह जल्दी-जल्दी तैयार हो मुवक्किलों में बैठ जायँ तो, पार्वती को भी जैसे उनकी परवाह न रह गई थी। उमा बाबू सोचते थे कि समय आने पर पार्वती भी स्वयं रास्ते पर आ जायेगी, जैसे बिश्नोई आ गई। पर भीतर ही भीतर दोनों के बीच एक खाई स्पष्ट ही चौड़ी होती जा रही थी, और जितनी चौड़ी यह खाई होती जा रही थी, उमा बाबू के घर से बाहर के व्यवहार में उतनी ही स्वाभाविकता आती जाती थी। भीतर वैषम्य था, बाहर साम्य था। इसी बीच क्लब में वह माथुर साहब से महेश के दूसरे विवाह की चर्चा चला बैठे थे। उन्होंने महेश का विवाह अब धृति से करने का प्रस्ताव रखा था और इसीलिए फोन पर सुन्दर बाबू को लड़के के विषय में सब कुछ बताकर उस दिन उन्होंने महेश और सुन्दर बाबू दोनों को ही क्लब में बुला लिया था। लेकिन महेश को आधा घण्टा देरी से आने का समय दिया था।

सुन्दर बाबू जब वहाँ पहुँचे तो दोनों पुराने खिलाड़ी घोड़े, ऊँट, हाथी, पैदल दौड़ा रहे थे, लड़ा रहे थे। सुन्दर बाबू का आगमन दोनों के मोहरों के लिए अशुभ हुआ। बाजी बीच में ही बन्द कर उमा बाबू ने उनका आपस में परिचय कराया और 'रमी' के पत्ते बाँटने लगे। माथुर साहब से परोक्ष में भी वह सुन्दर बाबू के विषय में कुछ बातें कर चुके थे। फलस्वरूप माथुर साहब ने बेरे को पास बुलाकर चुपचाप ह्विस्की और दो 'कोका-कोला' लाने को कहा। लेकिन जब

'ह्विस्की' आ गई, तो सुन्दर बाबू ने उमा बाबू को लक्ष्य कर संयत वाणी में कहा—"मैं तो छोड़ चुका हूँ।"

आश्चर्य से उमा बाबू बोले—"सच! कब से यार?"

"काफी दिन हो गए। यह तुम्हारे कुमार की मेहरबानी से ही छूटी है।"

"अच्छा!" कुमार की इस अप्रत्यक्ष प्रशंसा से मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए उमा बाबू।

पर माथुर साहब ने कहा, "भाई, यह लगी छूटती नहीं है। आओ, आज हमारे साथ एक पैग नहीं, तो आधा ही सही।"

पर सुन्दर बाबू ने साफ मना कर दिया। लिहाजा माथुर साहब ने बोतल नहीं खोली। तीनों जने कॉफी मँगाने के लिए राजी हो गए, और उमा बाबू ने 'रमी' के पूरे पत्ते बाँट दिए।

पत्ते बदलते रहे, बेकाम फेंके जाते रहे। सुन्दर बाबू ने पान की बेगम फेंकते हुए कहा—"लीजिये, उठाइये माथुर साहब, बेगम काम आयेगी।"

माथुर साहब दाहिनी ओर बैठे थे। पूर्ण वाणी में बोले, "अपने को बेगम नहीं चाहिये अब।"

"हाँ जी, जो खुद गुलाम हो उसे बेगम की क्या जरूरत?" उमा बाबू ने मंद-मंद मुस्कराकर कहा।

"ये बात है!" सुन्दर बाबू ने बात का मजा लिया।

"मियाँ, खुद गुलामी करते हो घर में जाकर, इसलिए सभी गुलाम नजर आते हैं।"

"बात असल में यह है माथुर साहब, माफ करें, आजकल तो सब अपनी छोटी बीबी के गुलाम हैं।" सुन्दर बाबू ने हँसकर कहा।

"अपनी-अपनी का गुलाम होने तक तो गनीमत है। यार आजकल के छोकरे तो कहो जितनियों के गुलाम हो जायँ।"

सुन्दर बाबू ठहाका मारकर हँस पड़े। पर उमा बाबू खुलकर नहीं हँसे। उन्होंने गंभीर हो कहा इसकी वजह है। हमारा यूथ (युवक) बरसों से यौनबुभुक्षित रहा है। अब उसे खुले वातावरण में

आने का अवसर मिला है। लड़कियों के साथ वह दोस्ती करता है, उनके साथ पढ़ता है, खेलता है और इसी सम्पर्क में उसे अवसर मिलता है तो वह उसका अनुचित लाभ भी उठाता है।"

"यह तो हवा का असर है। पहले हम दिल्ली में औरतों को बाहर निकलते ही नहीं देखते थे।" माथुर साहब बोले—"कोई कभी निकलती भी थीं तो बड़े पद और अदब के साथ और अब जब से आजादी आई है, तब से तो औरतों ने कमाल ही कर दिया है!"

अब तक पन्ना बाबू भी आ गए थे। माथुर साहब की बात पूरी होते न होते पत्ते फेंटते हुए बोल पड़े—"माथुर साहब आपको क्या बताएँ, हमारे एक दोस्त के साथ कालेज की एक स्टूडेंट आई और उससे जब हमारा परिचय कराया गया तो वह पूछती है, "मेरे साथ दोस्ती बढ़ाने में आपकी धर्मपत्नी को तो कोई एतराज न होगा।" मैं सकते में रह गया और कहा जब आपके पेरेन्ट्स (माता-पिता) को आपके ऐसे फ्रैण्ड्स बनाने में आपत्ति नहीं है तो मैं तो छड़ा हूँ।"

"बस इसी तरह तो एक को देखकर दूसरा बिगड़ता है।" उमा बाबू ने कहा।

"भाई, उमा बाबू, इस चीज को अब कोई रोक नहीं सकता। पश्चिम के देशों में आज इसे इतना बुरा नहीं माना जाता। फिर भी वे अपने देश की स्त्रियों को विदेशियों के साथ देखने में खुश नहीं हैं। पर हमारे यहाँ तो जरा-सी दोस्ती में 'सैक्स' का बवाल खड़ा हो जाता है। सो अभी कुछ बरसों में हमारे युवक रास्ते पर आएँगे। एक बात और है, माथुर साहब, आज के युवकों को न तो कालेज में अनुशासन की शिक्षा मिलती है न घरों पर। इसलिए भी इनमें यह बे सिर-पैर की आजादी फैल गई है जिससे यह अन्तर्जातीय विवाह और अनुचित सम्बन्ध के मामले बढ़ गए हैं।"

सुन्दर बाबू इस पर चुप न रह सके, "पर आप यह क्यों भूल जाते हैं कि यह सब खुराफात पहले भी थीं, लेकिन मालूम नहीं पड़ती थीं। आज आबादी बढ़ जाने से यह सब चीजें ज्यादा सामने आ रही हैं। समाज में पहले भी कोई

विश्रृंखलता नहीं आई। अब कैसे आ जायेंगी।"

"मैं यह स्वीकार नहीं करता, सुन्दर बाबू।" उमा बाबू ने कहा—"आज यह सब इस हद तक बढ़ गया है कि सामाजिक विश्रृंखलता ही नहीं, राष्ट्रीय विश्रृंखलता आने का डर भी पैदा हो रहा है—और जानते हैं, इसका एक कारण यह भी है कि हमारे युवक-युवती ठीक से यह नहीं जानते हैं कि पश्चिम में क्या होता है? हॉलीवुड की विदेशी फिल्मों को देखकर पश्चिम का अन्धानुकरण करने लग जाते हैं। नारी संपर्क में आती है तो उन्हें चट से प्रेम करने की सूझती है। या कोई-सी लड़की का विवाह के लिए प्रस्ताव है तो उसे झट स्वीकार कर लिया जाता है। बाद में वह चाहे मृग-मरीचिका ही साबित हो।"

"मैं यहाँ आपसे सहमत हूँ।" माथुर साहब ने कहा, "यह तो हमारे महेश की मिसाल से ही जाहिर है।"

नाम लेते ही सामने से महेश आता दिखाई दिया और उमा बाबू ने कहा, "उम्र बड़ी है, लड़के की।"

महेश के आते ही बातचीत का सिलासिला रुक गया। कॉफी एक बार फिर मँगाई गई। सुन्दर बाबू से उमा बाबू ने महेश का भी परिचय कराया। तब 'रमी' फिर जम गई। और खेलते-खेलते सुन्दर बाबू ने महेश से उसके पुलिस जीवन के विषय में दो-चार औपचारिक प्रश्न कर फिर खेल में ही ध्यान लगा लिया।

घड़ी ने जब नौ बजाये तो माथुर साहब उठ खड़े हुए। उनके साथ ही महेश को भी वहीं बैठा छोड़ उमा बाबू और सुन्दर बाबू भी उठे और एक कोने में जाकर तीनों आपस में बातचीत करने लगे। पाँच मिनट बाद माथुर साहब का इशारा पाकर महेश उनके साथ हो लिया। दोनों के जाने के कुछ समय बाद ही उमा बाबू भी सुन्दर बाबू की कार में बैठकर लौट चले।

रास्ते में दोनों में कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। सुन्दर बाबू ने केवल इतना ही कहा—"कुमार की माँ अपने देवर की लड़की की शादी में चली गई हैं। और तो वैसे सब ठीक है न?"

"हूँ, ठीक ही है। पार्वती को समझाना ही टेढ़ी खीर है। अपनी जिद्द पर अड़ी है।"

औरतों की जिद्द तो मशहूर है उमा बाबू। यार तुम उनकी हाँ में हाँ मिला दो, कह दो अच्छा बच्चा फिंकवा देंगे। तब तक उन्हें और सोचने का मौका मिल जायगा। कुछ दिन शांति से कट जायेंगे। आखिर कौन माँ अपनी बेटी का बुरा चाहती है। फारिग होकर अमिता उन्हें खुद मना लेगी। इस बीच तुम भी ज्यादा बहस में न पड़ो।"

"मैं तो बहस में नहीं पड़ता। पर सुन्दर बाबू अमिता की माँ है बहुत जिद्दी, तुम समझ नहीं सकते हो। घर में शान्ति बनी रहे, इसलिए मैं ऐसा मौका नहीं देता कि मेरा उसका ज्यादा सामना हो। क्लब से भी नौ बजे के बाद लौटता हूँ। कुछ दिनों में मेरा खयाल है समझ ही जायेगी।"

"हाँ भाई, आखिर लड़की की जिन्दगी बरबाद थोड़ी करनी है।"

"और क्या ?" वह तो पुराने खयालात की है। पास ही पास देखना जानती हैं, दूर तक क्या सोचेंगी ? मैं कहता हूँ, भाई साहब, जिस लड़की की शादी यों न कर किसी दूसरे से जबर्दस्ती शादी कर दी जाती है, वह कभी जीवन भर संतुष्ट नहीं रह सकती है।"

"बिल्कुल सही बात है, उमा बाबू।"

"कभी न कभी उसका पिछला किस्सा फूटता ही है और फिर दोस्त विष दोनों जीवन में ऐसा बढ़ता है कि उतरे, न उतरे। अब महेश के साथ यही हुआ नहीं, एक प्रकार से ?"

"खैर, उसके साथ तो सचमुच धोखा हुआ। मुझे तो उससे सहानुभूति हुई।"

"मेरा खयाल है माथुर साहब, उससे हाँ करा लेंगे। फोटो भी दे दिया है, तुमने धृति का।"

"पर ऐसी कोई अड़चन तो नहीं आयेगी कानूनी कि पहली बीवी जीवित होते हुए दूसरी शादी क्यों करें ?"

"नहीं भाई, इसका मेरा जिम्मा रहा। वह तो उल्टी फंस जायेगी कि

पहला पति जीवित रहते धोखा देकर दूसरी शादी कर ली। और बताऊँ सुन्दर बाबू, जेवर भी उड़ा ले गई पहले ही अपनी चाची के यहाँ।"

"अच्छा, बड़ी चलतीपुर्जा रही!"

"पूछो मत। आजकल तो प्राइमरी पास करते ही सब चलतेपुर्जे हो जाते हैं।"

मेन रोड से कोठी की ओर मुड़ते हुए सुन्दर बाबू ने उमा बाबू का ध्यान फुट पाथ पर एक पेड़ के नीचे जल रही आग की ओर आकर्षित किया और कहा, "देखो उमा बाबू, इस सर्दी की रात में यह अधनंगा भिखारी रोज यही पड़ा रहता है। मैंने आते-जाते इसे कई बार देखा है। जब आग ठण्डी होती है तो थोड़ा-सा कूड़ा-कचरा उसमें और डाल देता है। वह देखो पास ही कूड़े का ढेर पड़ा है।"

उमा बाबू ने कहा, "इस देश में अभी समाजवादी ढाँचा आते-आते बरसों लग जायेंगे।"

"पता भी क्या वह आयेगा भी? मुझे तो कोई आशा नहीं आती।"

"आशा कभी नही छोड़नी चाहिये सुन्दर बाबू।" उमा बाबू के कहते-कहते कोठी के आगे ब्रेक लगा दिए सुन्दर बाबू ने।

: १६ :

मुसद्दी की रिक्शा में बैठकर नियादरा और कस्तूरी ने हरिया के बताए अनुसार तीन दिन उस नयी बस्ती के चक्कर काटे, पर अमिता का नया मकान उन्हें न मिला। कस्तूरी तो निराशा से खीझ उठी, और बोली—"मैं अब इस झगड़े में नहीं पड़ती। मेरी तरफ से कुछ भी हुआ करे। तेरी पारो बीबीजी मुझे का दे देंगी?"

नियादरा अकड़ गया, "तो ला, दस का नोट वापस पकड़ा मेरा।" कस्तूरी विवश हो गई और बोली, "अच्छा कल मैं सुन्दर बाबू के बँगले पर जाऊँगी।"

"नहीं, नहीं, वहाँ जाने से काम नहीं बनेगा।"

"अरे मरे, मैं अन्दर थोड़ी जाऊँगी, रिक्शा पर पर्दा डाल लूंगी और कुमार जब वहाँ से निकलेगा शाम पड़े तो उसके पीछे-पीछे जाकर पता लगा लूंगी।"

"वाह, मिसरानी, वाह! अरी तीन दिन से तेरे खोपड़े में यह बात क्यों नहीं आई थी?"

"तूने रुपये भी तो आज ही पूरे किए हैं। मिसरानी को क्या किसी वकील से कम समझा है तूने? बिना पैसे के किसी का कोई काम नहीं करती मैं?"

"ये तो तू ठीक कहे है, मिसरानी। पर म्हारा काम तो तूने पैसे लेकर भी नहीं किया!"

"चल आज हो जायेगा।"

कस्तूरी ने रात को चौड़ी मुस्कान के साथ नियादरा का स्वागत किया। वह पता लगाने में सफल हो गई थी। लेकिन नियादरा ने यह सफलता का समाचार पाकर भी कोई प्रसन्नता प्रकट न की, उल्टा स्याह पड़ गया वह और चुप रह गया।

कस्तूरी ने कहा—"क्यों चुप रह गया रे नियादरे? ला पाँच रुपये और दे मुझे।" दोनों हाथों में घुटने बाँधे बैठा था नियादरा। कस्तूरी ने यह कहते-कहते उसका एक हाथ खेंचकर उसे रुपये निकालने के लिए जैसे प्रेरित किया।

"पाँच तो तू ले ले, पर ...."

"पर क्या?"

"कुछ नहीं।" नियादरा ने ठण्डा निश्वास छोड़ा और उसे पसीना आ गया। लगभग वैसा ही जैसा उसे पार्वती की फरमाइश की चीज खरीदते समय आ गया था। पर उसे अब तक देने वह नहीं आया था। क्योंकि मकान का पता-ठिकाना लेकर ही वह पार्वती के पास जाना चाहता था।

पता लेकर गया वहाँ तो पार्वती ने उसे विवश किया कि वह मेरे साथ चले। बड़ा संकोच अनुभव किया नियादरा ने, फिर भी वह उस मुसद्दी की रिक्शा पर पर्दा डलवाकर पार्वती के साथ बैठ गया। संध्या हो गई और दीये जले थे। नियादरा ने कहा, "माँजी, मैं आपके साथ अन्दर नहीं जाऊँगा। मेरा जाना ठीक न होगा।

"मत जाइयो, पर इस रिक्शावाले से कह दो, मुझे वापस भी घर छोड़ दे टैक्सी स्टैण्ड तक। क्योंकि मैं तेरे बाबूजी के क्लब से लौटने से पूर्व ही घर वापस पहुँचना चाहूँ हूँ।"

"हाँ, हाँ, माँजी, जरूर, कहो तो कोठी तक छोड़ आयेगा। यह तो अपना ही आदमी है।"

"नहीं, टैक्सी स्टैण्ड तक ही जाऊँगी?"

"अमिता के नये मकान के पक्के दरवाजे के आगे जो बाँस की खपच्चियों का एक और दरवाजा लगा था, उसी की ओर संकेत कर नियादरा ने कहा—"माँजी, बस यहीं है। बाहर से शायद ताला लगा होगा, आप भी पीछे के दरवाजे से जाना, वह शायद खुला हो।"

पार्वती को इस प्रकार मकान बता तो दिया नियादरे ने। पर उसके दिल में बड़ी भारी उथल-पुथल मच गई। उसी की सहायता से पार्वती ने जो कुछ कर गुजरने का रास्ता पा लिया था, उसके भयंकर परिणाम को सोचकर वह भय से काँप उठा। साहस न हुआ कि अपने घर वापस लौट जाये। वह पार्वती को रिक्शा से उतारकर उसी रिक्शा में आ बैठा और मुसद्दी से बोला—"अब मुसद्दी, जल्दी चल। वहाँ विक्टोरिया बाग के पास वकीलों का क्लब है न साले वहीं चल। जल्दी उड़ चल नहीं गजब हो जायेगा।"

मुसद्दी ने पैडल घुमाते हुए कहा—"क्या वह माँजी नहीं लौटेंगी?"

"लौटेंगी, देर से। अभी तो तू फौरन चल। साले मेरे से बड़ी गलती लग गई। मुसद्दी के बच्चे! और भी तेज चल।"

पार्वती ने देखा बाहर सचमुच ताला लगा था, नियादरा के कहे अनुसार पीछे से जाकर उसने किवाड़ खटखटाया तो चटखनी लगी थी। उसने एक-दो

बार और झटके दिए कि चटखनी गिर पड़ी, शायद ठीक नहीं लगी थी। फिर तो वह दाँत पीसती हुई भारी बदन रखती हुई आ गई। अमिता रसोई बना रही थी। कुछ समय बाद ही तो कुमार ट्यूशन से आ जाने वाला था। उसे गरम खाना मिलता था और दोनों साथ ही खाते थे। स्टोव की तेज सूँ सूँ में अमिता को पता न लगा कि पीछे के किवाड़ खुल गए हैं और कोई अन्दर आ रहा है। एक बार उसने साधारण खटका अवश्य सुना था। पर वह यह अनुमान कैसे लगा सकती थी कि पीछे से भी कोई आ सकता है। पर जीवन में विपतियाँ अधिकांशतः पीछे से ही आती हैं, चुपचाप, खामोशी से।

रसोई की चौखट पर आकर पार्वती की कन्नी नीचे पैर में उलझ गई और वह ठोकर खाकर गिरते-गिरते बच गई। तब अमिता ने डरकर पीछे देखा। भय-विकम्पित स्वर में वह चिल्ला उठी और धोती के आँचल से कुछ छिपाने की असफल चेष्टा करते हुए लगभग दौड़कर माँ के पैरों में गिर गई। "माँ! मुझे क्षमा कर दो! माँ! मुझे क्षमा कर दो!" गलित वाणी में एकदम उसके मुँह से निकलते ही वह रो पड़ी।

दाँत किचकिचाते हुए पार्वती पीछे हट गई और कर्कश वाणी में बोली—"मुझे माँ कहकर मत पुकार चाण्डालिनी! बेशर्म बेहया! तू यहाँ आकर छिपी है मुरदार! कहीं डूबकर क्यों न मर गई? कुल को ही लांछन लगाना था तो मेरी कोख से क्यों जन्म लिया था?" पार्वती का कण्ठ भी अब गीला हो आया। "मुझे ये पता होता तो तेरा गला तभी घोंट देती। भगवान् ऐसी लड़की से तो मुझे बाँझ ही रखता!"

सुनते-सुनते अमिता को लगा जैसे सचमुच उसके लिए प्राणांत करना ही ठीक होता, वह यहाँ क्यों आ गई? इस बेशरमाई की जिन्दगी से तो मरना ही अच्छा था। और आत्म-ग्लानि से भरे स्वर में वह बोली—"तुम ठीक कहती हो माँ, मैंने कुल को कलंकित किया है। मैं मर जाऊँगी! मैं मर जाऊँगी! किसी को अब मेरा मुँह देखने को न मिलेगा? फर्श पर ही घुटनों में सिर आँचल से मुँह को भली प्रकार ढाँपकर वह बैठ गई और उसका रुदन तीव्र हृदय-स्पन्दन के साथ-साथ तीव्र हो उठा।"

पार्वती बोली—"कहाँ है वह मरा कुमार? जी चाहता है उसे गोली से उड़ा दूँ। मरे शरीफ घरों में घुसकर यह गुल खिलाते फिरते हैं! मरजानी, यों रोने से जिन्दगी नहीं कटेगी! इस मरे पाप के पुतले को बाहर निकाल फेंक। मुझे पता होता ऐसी आग तुझे लग रही है तो तेरा जल्दी ही ब्याह न कर देती! मुझ से रोयी तो होती! कुलच्छिनी! कुमार से ब्याह रचाकर मुझे बिरादरी में नाक नहीं कटवानी!" अब भी कुछ नही बिगड़ा है उठ गरम पानी चढ़ा! इस पर से शाक उतार दे। मैं दवा लाई हूँ, उसे पी! दो दिन में सब साफ हो जायगा। हे भगवान्! कैसा जमाना आ गया है?"

अमिता का कलेजा धक् से रह गया। हृदय को जैसे माँ के कथन पर विश्वास न हुआ। फिर भी न जाने क्या हुआ वह सिलौटा-सी बैठी रोती रही, और पार्वती ने शाक उतारकर स्वयं स्टोव गुनगुना होने के लिए चढ़ा दिया। बोली "थोड़ी चाय की पत्ती बता कहाँ है चाय के साथ यह पुड़िया खा लेना।"

अमिता अब रोती हुई ही आँचल से मुँह ढाँपे उठी और चाय की पत्ती वाला डिब्बा उसने स्टोव के पास रख दिया। पार्वती ने अपनी शाल किवाड़ पर टाँग दी, और जल्दी काँपते हाथों से चाय बनाती हुई बोली—"हरामखोर कहीं की तुझे ऐसे ही लच्छन दिखाने थे तो पहले मुझे ही संखिया क्यों न दे दी?"

अमिता बहुत सुन चुकी और हर क्षण उसे ऐसा लग रहा था कि धरती फट जाय तो वह उसमें समा जाय। रुआँसे कण्ठ से बोली—माँ, तुम मुझे संखिया दे दो, मैं किसी से कुछ नही कहूँगी। मै मर जाऊँगा माँ, मुझे रत्ती भर कष्ट न होगा। हाय, मैंने तुम्हें कभी कोई सुख नहीं दिया।"

"सुख देगी तू! मुझे तेरे ढंग पहले से ही दिख रहे थे। पर करूँ क्या तेरे बाबू ने ही तो मुझे यहाँ तक हिम्मत दी है। कुँवारेपन में ही घरुआ बस-बसाकर बैठती है! बेटी···भगवान, तू तो मुझे उठा ले।"

"माँ, तुम दुखी मत हो! मैं अभी जाकर जमना में डूब मरूँगी। मुझे यह नहीं चाहिये तुम्हारी पुड़िया! ऐसी जिन्दगी से मेरा मरना ही अच्छा। दवा खाकर ही कलंक गिर जायगा···मैं अभी मर जाऊँगी माँ···और सचमुच अमिता उठकर पीछे के उसी द्वार की ओर तेजी से बढ़ी जिधर से

पार्वती आई थी !—झपटकर पार्वती ने उसे बाँह से पकड़ लिया—"मैं तुझे अपनी आँखों से ओझल न होने दूँगी, चाण्डालिनी ! मेरे सामने यह पुड़िया खा।"

"पार्वती।" लगभग आँधी के वेग से उसी द्वार से घुसते हुए उमा बाबू चीख पड़े। वह पसीने से लथपथ थे। पार्वती एक दम मंद पड़ गई। "अमिता यह पुड़िया नहीं खायेगी।—यह संखिया मैं खाऊँगा।" उमा बाबू ने पार्वती के हाथ से पुड़िया छीनते हुए दाँतों से ओठ भींचते हुए कहा, "तुम लड़की की जान लेना चाहती हो तो पहले मेरी जान लो···"वह क्रोध से पीले पड़ गए थे फिर भी अमिता को हृदय से लगा उन्होंने उसकी कमर पर थपकी भरा हाथ रख लिया।

पार्वती ने झपटकर उमा बाबू से वह पुड़िया छीन लेनी चाही, और इस छीना-झपटी में पुड़िया आँगन में बिखर गई। लालटेन के मंद प्रकाश में आँगन की पिछली दीवार पर पड़ती हुई बड़ी-बड़ी परछाइयाँ अमिता को भूतों की तरह डरा रहीं थीं। "हे भगवान ! अब क्या होगा ?" अमिता माँ की लाई हुई पुड़िया की वास्तविकता को समझकर अब और भी पीली पड़ गई थी। पार्वती तो तनिक दबी हुई वाणी में बोली, "मैं किसी की जान क्यों लेने लगी ? मैं ही अपनी जान दे दूँगी।"

"देखो पार्वती, मैं कह चुका हूँ, मैं किसी की जान नहीं जाने दूँगा। तुम जो कुछ हठवश करना चाहती थीं उससे कोई सही नतीजा हाथ नहीं लगता।" गंभीरता से अपने कथन में सत्यता भरने की चेष्टा करते हुए उमा बाबू नेकहा—"तुम तो कहती थीं कि बच्चा फिकवा दो, मैं यह शादी न होने दूँगी। सो यह बात मैं तुम्हारी मानता हूँ।"

इसी क्षण कुमार तख्ता खोलकर भीतर आया और उन दोनों को देखकर भी ठिठका-सा खड़ा रह गया। उसने सुना, उमा बाबू कह रहे थे—बच्चे को फेंक दिए जाने के बाद तुम चाहे जो करना अपनी बेटी का, पर यूँ उसकी जान नहीं लेने दूँगा तुम्हें।

कुमार के आगमन से लगभग बेखबर अमिता माँ से बाँह को छुड़ा कर आँचल से बच्चे के मुँह को लिए लगभग किवाड़ में घँसकर रो पड़ी और कातर वाणी में कहा—

उसने—बाबू जी ···मैं अपने प्राण दे दूंगी। मुझे अब यह जीवन नहीं चाहिये ···जब तक मैं जिन्दा रहूँगो माँ मुझे देखकर कभी खुश नहीं होंगी ··उनकी प्रसन्नता के लिए मैं अपनी हत्या कर डालूंगी।" मुट्ठियाँ भिच आईं अमिता की और उसी क्षण दाँत भींचकर कठोरता से अपने ही हाथों अपना गला घोंटने लगी।

"अमी!" कुमार अब दौड़कर उसके पास पहुंच गया। सख्ती से उसके हाथों को गरदन से हटाकर उसने कहा—"मैं तुम्हें यूँ न मरने दूंगा ···माता जी, आप हमें क्षमा करें, आशीर्वाद दें।"

"आ गया मरा!" फुसफुसाहट के स्वर में पार्वती ने घृणा के-से स्वर में कहा, "अरे, सत्यानासी, तू कहीं डूब क्यों न मरा था?"

"पारो!" उमा बाबू ने कठोर वाणी में कहा, "तुम क्यों फिजूल की बातें कर रही हो? चलो मेरे साथ।" उन्होंने आगे बढ़कर पार्वती का हाथ पकड़कर ड्योढी की ओर उपक्रम करते हुए कहा, "कुमार, अमिता का खयाल रखना। यह अपनी जान से खेलने की कोशिश न करे।"

पार्वती ने उमा बाबू का हाथ झिटक दिया और स्वयं बाहर जाते हुए कहने लगी—"भगवान् मेरी मिट्टी समेट ले। ऐसी बेटी से तो मैं खुद ही मर जाऊँगी'। नही पता था कि मुझे यह दिन भी दिखायेगी।"

"चलो, चलो, पागलपने की बात मत करो।"

उमा बाबू पार्वती को लेकर चले गए। कुमार उस क्षण सुबकियाँ लेती हुई अमिता को कंधे से पकड़े मौन सहमा हुआ खड़ा रह गया।

: २० :

अगले पाँच महीनों में कोई विशेष घटना न हुई सिवा इसके कि पार्वती ने हरिया को निकाल देना चाहा पर उमा बाबू ने उसे क्षमा कर दिया। कुमार के

लिए कई पत्र आये, लेकिन वह बहन की शादी में गाँव न जा सका। धृति का महेश के साथ फेरे फिरकर विवाह हो गया और कुमार परीक्षा में उत्तीर्ण हो सुन्दर बाबू के आफिस में 'असिस्टेंट' लग गया था। अमिता इन दिनों में अपने घर में कुशल गृहिणी की भाँति जीवन यापन करने लगी। उमा बाबू उससे दो बार सुधेश, दिनेश को भी मिला ले गए। पार्वती यह आश्वासन पा चुकी थी कि बच्चा अस्पताल में डाल दिया जायगा, पर उमा बाबू से पूर्ववत् व्यवहार न कर सकी। बहुत ही खिची हुई रही, यहाँ तक कि उसके स्वास्थ्य पर भी इसका असर पड़े बिना न रह सका और वह पीली पड़ती गई।

कुमार बाबू ने जब एक दिन उससे कहा कि अमिता के लड़की हो चुकी है और उसे अस्पताल के हवाले कर दिया गया है तो पार्वती ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा "अब उसे यहा ले आओ और तुम ही खुद जाओ बेटा" मुकुटलालजी के लड़के से शादी की बात पक्की करके आओ न ···।"

"ठीक है।" कहने के अतिरिक्त उमा बाबू ने कुछ न कहा।

"प्रसव के तीन दिवस पश्चात् अमिता घर आ गई पर पार्वती ने उससे सीधे मुँह बात न की। उल्टे उसका स्वास्थ्य और गिरता गया। उसने एक बार फिर कहा उमा बाबू से—"अब देरी करने में खराबी होगी। कहो तो वहीं चलकर हाथ पीले कर दिए जाएँ।"

"अमिता की माँ! अभी इतनी जल्दी करने की जरूरत नहीं है। मुझे खुद फिकर है।" उमा बाबू ने टाल दिया। पर एक सप्ताह पश्चात् ही कोठी में रंग-रोगन करने वाले आ गए। फर्नीचर पालिश की जाने लगी। बाहर के लकड़ी के द्वार पर रंग करा दिया गया। 'पोर्च' में दोनों कोनों पर दो नए कण्डील लटकाए गए जिन पर नृत्य करती हुई तस्वीरें बनी थीं, जिनकी छाया बत्ती जलते ही दीवार पर पड़ती थी और यह सब तैयारियाँ देख-देखकर पार्वती जैसे घुनती गई। उसने कहा—"क्या हो रहा है यह सब?"

"लड़की की शादी।"

पार्वती लगभग रो चली—"तो तुम अपने मन की ही करके रहोगे?"

"पारो, तुम अब तक भी न समझ सकीं। क्या तुम पति की इतनी-सी बात

भी न मान सकोगी ?"

तर्क से जो बात भली प्रकार न समझ में आ सकती हो संसार उसे कई बार स्वीकार करने नहीं देता। पार्वती कुछ न बोली। इतना ही कहा, "तो करो, जो तुम्हें अच्छा लगे।"

और जिस दिन शामियाना खड़ा हुआ लान पर, उसी दिन उमा बाबू निरंजन के गाँव जा पहुँचे। बिश्नोई के पैर छूकर कहा, "चलो, शादी है। आपकी इज्जत मेरे हाथ है। आपको अपने देवर के साथ ही चलना होगा।" उमा बाबू ने निरंजन से भी हाथ जोड़कर प्रार्थना की और वह उन्हें अपने साथ ही दिल्ली ले आये। अपनी ही कोठी में ठहराया। पर पार्वती तो जैसे भूगर्भ-समाधि में चली गई थी। अमिता इन दिनो सबसे पृथक्, सबसे बेखबर, शरमाई हुई अपने कक्ष में ही रही। उधर पार्वती भी आवश्यक पत्र-व्यवहार के लिए अपने कमरे से बाहर आ जाती। सुधेश, दिनेश ने इस बीच उसे कई बार रोते हुए अवश्य देखा था, लेकिन बिश्नोई-निरंजन के सामने तक भी न आई, बोलना तो दूर रहा।

कुमार ने यह सारी स्थिति समझते हुए पहले ही कहा था, "माताजी को स्वीकार नही है तो अभी थोड़े दिन ठहर जाइये ···"

"नहीं कुमार, पार्वती के लिए दो ही रास्ते हैं। या तो वह मुझसे समझौता कर ले, या फिर अपने भाई के यहाँ चली जाय। या फिर जैसे रह रही है रहे जाए।"

कुमार का गला भर आया। छाती पर पत्थर रखकर वह बोला— "कुछ समय बाद उन्हें सब स्वीकार हो जायगा ···और यदि स्वीकार न हो तो मैं अकेला ही उस बच्ची को लाकर पाल लूंगा।" कहते-कहते उसके नेत्र सजल हो आये।

"नहीं कुमार, मैं लड़की को तुम्हें सौंप चुका हूँ। दी हुई वस्तु वापस नहीं ली जाती।"

माथुर साहब और महेश को जब उस दिन अमिता-कुमार की सिविल मैरिज और दावत का निमंत्रण मिला तो वे चकित रह गए। वस्तुतः अभी तक

सिविल मैरिज न हुई थी। फिर भी उनकी सहानुभूति उमा बाबू के प्रति बनी रही। वकील साहब की कोठी पर बड़ी रौनक थी। उनके एक मित्र मजिस्ट्रेट कोठी पर आकर ही सिविल मैरिज करा गए थे और संध्या आते-आते बिश्नोई और निरंजन के साथ कुमार शामियाने में पड़े सोफे पर आ गया था। अतिथि आ रहे थे और उमा बाबू उनका स्वागत कर रहे थे। मंद-मंद फिल्मी धुनें बज रही थीं और सहस्रों लट्टुओं के प्रकाश में जैसे अमिता कलंक धोये सोफे पर नयी दुलहिन की क्रीडा से संकुचित बैठी थी। हृदय में एक कील-सी चुभती जा रही थी, क्योंकि पार्वती ज्वर का बहाना किये चादर लपेटे घर में पड़ी थी। उमा बाबू भी अतिथियों का स्वागत करते-करते एक अन्तर्कन्द से घिर चले थे, पर उन्हें उस उलझन को जीत लेने में कोई कठिनाई न हुई। उस अवसर पर माथुर साहब और महेश के परिवारों को छोड़कर वहाँ उमा बाबू की जाति-बिरादरी का कोई व्यक्ति न आया था यद्यपि निरादरा सभी जगह निमंत्रण देकर आया था। उमा बाबू का अपने ही क्षेत्र में बड़ा संपर्क था। उनकी कोठी के बाहर अतिथियों की पचासों तो मोटरें जमा हो गई थीं और नागरिक जीवन के प्रतिष्ठित व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। इसलिए उमा बाबू अपने को हीन हुआ समझ भी कुछ हल्का अनुभव करने लगे थे, पर कभी-कभी उन्हें ऐसा लगता था कि अतिथियों के मुँह से निकला 'बधाई' का शब्द जैसे हृदय पर हथौड़ी की-सी चोट कर रहा हो। शायद इसका कारण यही था कि पार्वती ज्वरग्रस्त पड़ी थी और वह इस जश्न में सम्मिलित नहीं हुई थी।

दस बजे जब अतिथि प्रायः जा चुके थे और उमा बाबू, महेश, माथुर साहब सुन्दर बाबू व अमिता-कुमार और निरंजन के साथ डिनर लेने की तैयारी कर रहे थे, उनके जी में आया कि एक बार पार्वती को भी देख आएँ। व्यस्तता के कारण वह उसका हाल ही नहीं पूछ सके थे। हरिया-चन्दरी से उन्होंने खाना परोसने और मुंशीजी से कुछ बड़ी-बड़ी लाइट बुझाने के लिए कहा और आप पार्वती के कक्ष की ओर बढ़ गए। पर यह क्या अन्दर से चटखनी बन्द। चौंककर उमा बाबू ने धीरे से पुकारा—"पारो!"

कोई उत्तर नहीं।

"अमी की माँ ! दिनेश की माँ !" कोई उत्तर नहीं। घबड़ाकर उमा बाबू ने जोर से किवाड़ में धक्का मारा, पर वे न खुले। तब उसी व्यग्रता में वह उसी गैलरी में से होकर पीछे आये। खिड़की खुली थी, पर कमरे में अँधेरा था। "पारो!" पर कोई उत्तर नहीं। वह खिड़की में चढ़कर कमरे में कूद गए, और बत्ती जला दी। पार्वती पर दृष्टि गई तो घबड़ाहट से चिल्लाकर वह उसके समीप गए। उसके मुँह से झाग बाहर आ रहे थे, चेहरा नीला होगया था और आँखें फट गई थीं। तो तुम समझौता न कर सकीं !·· उमा बाबू के मुँह से फुसफुसाहट के-से स्वर में निकला और उन्होंने चादर से पार्वती का मुँह भी ढक दिया। शेष रहे अतिथियों का भोजन न हो सका और हृदय-आघात से पार्वती के देहावसान का समाचार फैलते ही उमा बाबू के बँगले में एक हाहाकार मच गया। अमिता 'माँ ! माँ ! माँ ! कहकर सिर फोड़कर ऐसे रोने लगी जैसे वह भी अपनी जान देने पर तुल आई हो। उमा बाबू ने उसे सँभाला। कुमार की मनःस्थिति लगभग वैसी ही हो उठी जैसे कि उसने किसी की हत्या की हो।

उमा बाबू उसे भी जितना धैर्य बँधाते वह उतना ही रो पड़ता। बिश्नोई और निरंजन जैसे एक आत्म-ग्लानि से भर उठे। पर उमा बाबू विचलित न हुए। उन्होंने उन्हें वैसा ही चाहा था जैसा कि उन्होंने बेटी की खुशी के लिए जो मूल्य चुकाया था।

इसके बाद उमा बाबू ने कुमार को वहीं रख लिया और बात-बात में अमिता-कुमार से कह उठते—"पार्वती के इस प्रकार जाने पर मुझे दुख तो है कुमार, पर दुख को भूल जाना ही बुद्धिमानी है। पिछले दुखों को बार-बार जितना याद किया जाता है उतना ही वे सताते हैं। उन्हें भूलकर आगे की सुधि लेना ही बुद्धिमानी है कुमार ! तुम्हें और अमिता को या किसी को भी हमारा पछतावा नहीं होना चाहिये।"

पर कहते-कहते भी वह भीतर से पछताते—'काश ! पार्वती समझ पाती।'

कुछ दिन बीत जाने पर बिश्नोई पुनः गाँव लौट गई। निरंजन तो पहले

ही लौट गया था। उमा बाबू ने तब एक दिन कहा कुमार से "अब लड़की को अस्पताल लाया जा सकता है।"

कुमार कुछ न बोला। अमिता को लगा जैसे उसके माथे पर लगी लाल बिन्दी फिर काली होने जा रही है, यद्यपि ममता ने उसका यह पौने दो महीने का समय करुणा से रो-रोकर ही बीता था। वह अपनी बच्ची के लिए तड़फ-तड़फ उठती थी और कुमार उसे समझाता था कि अमी, अब ज्यादा दिन नहीं लगेंगे।

अमिता कहती—"तुम्हारी माँ भी तो हमसे कहीं रुष्ट न रहेंगी?"

"नहीं अमी! वह रुष्ट होती तो विवाह में ही नहीं आती।"

तब सहसा उसके कानों में पार्वती के शब्द गूँजने लगते कि जिस प्रकार माँ-बाप सन्तान के हित-चिंतन की बात सोच सकते हैं, स्वयं सन्तान वह नहीं सोच सकती। "हित की ही सोची अमी, इसीलिए तो वह यह सब कर सके।"

बिश्नोई के गाँव पहुँचने के बाद ही निरंजन का एक पत्र आया कुमार के नाम जिसमें लिखा था कि वह अमिता और बच्ची को लेकर कुछ दिनों के लिए घर आये। यहाँ भी कुछ रस्में पूरी करना चाहती हैं भाभी।

इस पत्र ने उमा बाबू को सबसे अधिक प्रसन्नता दी। अमिता के हृदय का सारा कलुष जैसे धुल गया। माँ की मृत्यु भी एक बार उसे भूल गई और वह आन्तरिक आह्लाद भरे स्वर में बोली कुमार से—"तो वीणा को कब लाओगे?"

"बाबूजी दो-तीन बार अस्पताल जाकर देख आये हैं।"

"सच?"

"हाँ अमी! मैंने सुबह ही कहा था बाबूजी से, तो बोले वहाँ की डाक्टर इत्तफाक से मेरे एक मित्र की पत्नी है। बड़ी सार-सँभाल से उसको रखा है। लड़की को जब लाना चाहो, जाकर ले आना, मेरा नाम भर ले देना।"

"तो, शाम को ही ले आओ न?"

"बाबूजी को आ जाने दो।"

उमा बाबू की प्रतीक्षा करते हुए अगले दिन दोनों प्रातः ही गाँव जाने की

तैयारी करने लगे। सुधेश-दिनेश को भी साथ ले जाने का कार्यक्रम बना लिया था।

शाम की चाय पीने का वक्त हो गया था और एक घण्टे बाद ही उमा बाबू आने वाले थे इसलिए अमिता का हृदय-स्पन्दन हर क्षण तीव्र होता जा रहा था। चाय खत्म भी न हुई थी कि सुन्दर बाबू की कार ने कोठी में प्रवेश कर कुमार-अमिता को आश्चर्य में डुबो दिया। और यह देखकर कि उससे सुन्दर बाबू के साथ ही उमा बाबू भी उतर रहे हैं अपने हाथों में शिशु को लिये हुए तो अमिता हर्ष-विभोर हो गई और कुमार का हृदय खुशी से धड़कने लगा। साथ ही दोनों के चेहरे लज्जा से आरक्त हो आये। सुन्दर बाबू मुस्कराते हुए आगे-आगे आ रहे थे और उमा बाबू तेज कदम रखते हुए ठीक उनके पीछे थे। उनके अधरों पर भी एक प्रसन्नता खिल रही थी और बार-बार अमिता और गोदी के शिशु की ओर देख रहे थे। अमिता के ठीक पास आकर जब उन्होंने बेबी ब्लैंकेट से लिपटी बच्ची को उसकी ओर बढ़ाया तो उनके नेत्र सजल हो आये। आर्द्र कण्ठ से कहा, "लो, ईश्वर तुम्हारी गोदी को सदा हरी रखे।"

"बाबू जी!"--कुमार ने हर्षोन्मत्त हो उनके पैर छू लिए।

"अमिता के काँपते हाथों में उसकी 'वाणी' आ गई, ओठ फड़कते-फड़कते रह गए। मोती से अश्रु ढुलके और ओठों को छू 'वाणी' के गाल पर लुढ़क गए।

चोली में दूध की बूंदें टपकने लगीं और अमिता ने उसे अपने कलेजे में छिपा लिया।